UNIVERSAL LIBRARY
OU_182526
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83.1 B57C Accession No. H 3032

Author भारती धर्मवीर

Title चाँद और टूटे हुए लोग

This book should be returned on or before the date last marked below.

भारती
की
कहानियाँ

चाँद और टूटे हुए लोग

दादा

(पं० माखनलाल चतुर्वेदी)

को

सादर

चाँद और टूटे हुए लोग

धर्मवीर भारती

किताब महल

इलाहाबाद

प्रथम संस्करण, १९५५

किताब महल, ५६ ए, जीरो रोड, इलाहाबाद
द्वारा प्रकाशित
अनुपम प्रेस, १७ जीरो रोड, इलाहाबाद में मुद्रित

●

उस समय मैं एम० ए० में पढ़ रहा था। इसी तरह दुबला पतला। संकोची और कल्पनाप्रिय तब अधिक था। मन पर इतनी पर्तें नहीं थीं न! सो जरा से झोंके में पीपल-पात की तरह काँप उठता था, और ज़रा से इशारे पर यह उड़ा और वह गया। और प्रिय लेखक भी कौन-कौन से थे? शेले, आस्करवाइल्ड, टामस हार्डी, प्रसाद और शरत। और उम्र वह जब मन अपने चारों ओर कहानियाँ बुनने ही लगता है।

गर्मियों की एक रात थी। नींद उचट गई थी। गहरी नीली रात में एक तारा, शायद शुक्र था, एक दम मन पर छा गया! दो दिन मैं कुछ नहीं कर पाया। तीसरे दिन एक कहानी तैयार हो गई—'तारा और किरण'—मेरी ज़िन्दगी की पहली कथा-कृति। दिखाता किसे! कोई था ही नहीं। सो किसी को नहीं दिखाया। छुपा के रख ली। फिर वैसी ही रूप-कथाएँ कई लिखीं। उन्हें आज पढ़ कर आश्चर्य होता है। मैंने कहाँ से यात्रा शुरू की थी?

पर उसके साथ ही साथ एक और पीड़ा मन को कचोट रही थी। वह थी सन् ४२ के आन्दोलन की निष्फलता और बंगाल का अकाल। मन में एक तीखा गुस्सा था—और वह अकस्मात व्यक्त हुआ एक नई तरह की कहानियों में जो उतनी ही यथार्थ थीं जितनी दूसरे प्रकार की कहानियाँ कल्पनापरक थीं। अब उन्हें छापे कौन? एक पत्रिका निकलती थीं 'तरुण'; साफ-सुथरी, सुरुचिपूर्ण। उस प्रागैतिहासिक काल में मेरे एक मात्र साहित्यिक सलाहकार थे अग्रज गोपेश। उन्होंने 'तरुण' का नाम सुझाया। सम्पादक जी ने दो कहानियाँ सुनीं—चुन लीं। पर जब छपी तो उनमें कुछ वाक्यों में काट-छाँट थी। शायद ब्रिटिश विरोध उनमें अधिक हो गया था। भला भारती जी यह क्यों बर्दाश्त करते। तब तक सम्पादक की सीमाओं का ज्ञान तो था ही नहीं, और शेले के वक्तव्यों में पढ़ रक्खा था कि कलाकार धरती का नियामक होता है, आदि आदि। कैसे उनकी

कहानी की पंक्तियाँ कटीं ! आव देखा न ताव। सम्पादक से लड़ ही तो बैठे।

भाई श्रीकृष्णदास किताब-महल से सम्बद्ध थे। उन्होंने सलाह दी कि मैं संग्रह छपाऊँ वहाँ से। अन्त में मैं वहाँ गया। वह दिन आज भी मुझे याद है। प्रकाशक ने पूरे एडीशन की एडवांस रायल्टी उसी समय दे दी। बारह आने की किताब। १००) के आसपास रायल्टी। मैं बाहर निकला तो मेरा गला सूख रहा था और सचमुच लेखक हो गया और वह भी इस पैराये का कि पूरी रायल्टी एडवांस ! वह मेरी पहली किताब थी।

आज ठीक ९ वर्ष बाद किताब-महल से ही फिर यह संग्रह आ रहा है। ईमान की बात यह है कि श्रीनिवास जी अगर इतना उत्साह न दिखाते इस बारे में, तो जाने कब तक ये कहानियाँ फाइलों में दबी पड़ी रहतीं। इस संग्रह में प्रथम कहानी से लेकर नवीनतम कहानी तक संगृहीत है। प्रथम खण्ड में वे सभी कहानियाँ हैं जो अभी तक किसी संग्रह में नहीं आईं। द्वितीय खण्ड में वे कहानियाँ हैं जो 'मुर्दों का गाँव' में संकलित हुई थी। उन्हीं के साथ 'भूखा ईश्वर' कहानी भी जोड़ दी गई है। द्वितीय खण्ड में आरम्भिक कहानियाँ और कल्पनापरक कथाएँ है। लगभग ८ कहानियाँ ऐसी हैं जो एक पिछले संग्रह में आई थीं किन्तु उन्हें स्तर की दृष्टि से इस संग्रह में देना उचित नहीं प्रतीत हुआ।

वैसे इधर कई किताबें प्रेस में दीं, पर कहानी संग्रह देते समय आज से ९ वर्ष पूर्व की वह घटना याद आ गई और मन अजब तरह से छू सा गया। इसलिये इतना लिखना ही पड़ा। सोचता हूँ कहानियाँ लिखने से इस तरह हाथ नहीं खींच लेना चाहिये जैसा पिछले ४ वर्षों में मैंने कर रक्खा था। लिक्खूँगा !

२१ मई, ५५. धर्मवीर भारती

अनुक्रम

१

हरिनाकुस और उसका बेटा ... ११
कुलटा ... २२
मरीज़ नम्बर सात ... ३२
धुआँ ... ३८
युवराज ... ४७
अगला अवतार ... ५२
चाँद और टूटे हुए लोग ... ५७

२

भूखा ईश्वर ... ७७
मुर्दों का गाँव ... ८७
एक बच्ची की कीमत ... ९३
आदमी का गोश्त ... ९९
बीमारियाँ ... १०५
कफ़न-चोर ... ११२
एक पत्र ... ११७
हिन्दू या मुसलमान ... १२४
कमल और मुर्दे ... १३१

पूजा	...	१४१
स्वप्नश्री और श्रीरेखा	...	१४८
शिंजिनी	...	१६४
कला : एक मृत्युचिह्न	...	२१२
नारी और निर्वाण	...	२२३
तारा और किरण	...	२३१
कुबेर	...	२४१
मंज़िल	...	२५२
कलंकित उपासना	...	२५८

प्रथम खण्ड

चाँद और टूटे हुए लोग

हरिनाकुस और उसका बेटा

उसने मिर्ज़ई उतार कर बाँस पर लटका दी, रस्सी एक ओर फेंक दी, फिर चारों ओर देखा और फटी-सी कर्कश आवाज में पुकारा—'बिसुआ ! ओ बे बिसुआ ! जाने कहाँ मर गया कम्बख्त। अच्छा वहीं होगा। राजा के पास। ठहर अभी तेरी हड्डी तोड़ता हूँ।'

उसकी आवाज ताड़ी के नशे में काँपने लगी, बदन पर अन्धेरा फिसलने लगा और आँखों में लाल रोशनी सुलग उठी। वह जात से डोम था, पेशे से जल्लाद। खान्दान उसका बहुत ऊँचा और नामी था। उसके दादा ने ताँतियाभील को फाँसी दी थी। उसके नाना ने अपनी जवानी में चौदह खून किये थे और जब उसे फाँसी का हुक्म हुआ था तो उसी के बाप ने उसके नाना को फाँसी लगायी थी और लौट कर नौ बोतल दारू पी थी, एक सूअर की गर्दन मरोड़ दी थी और अपनी बीमार औरत का हाथ गरम करछुली से दाग दिया था। इन्हीं सब वजहों से उसके खानदान का बड़ा नाम था और वह बिरादरी का चौधरी माना जाता था।

एक दिन जब वह जेलर साहब के बँगले में हाजिरी बजाकर लौट रहा था तो उसे राह में धनिया मिली, उसकी बीबी की बहन, और उसने बताया कि उसकी बहिन के लड़का हुआ है, बच्चा जिन्दा है मगर जच्चा के प्राण निकल गये। वह क्षण भर रुका, फिर बहुत अनासक्त भाव से हँसा, बिरहा गुनगुनाता हुआ घर आया और

औरत की लाश के सिरहाने खड़े होकर बोला—'मर गई, चलो अच्छा हुआ। पेट क्या था कम्बख़्त का भाड़ था। जब देखो तब खाँव-खाँव! एक से तो फुरसत मिली।'

फिर बच्चे को उठा कर बोला—'ओह यह पिल्ला छोड़ गयी है कुतिया!' और फिर कुत्तों की तरह उसके नाखून गिन कर बोला—'बीस हैं! बाप रे बाप! बिसहा है बिसहा! जभी तो पैदा होते ही खा गया माँ को!'

उसके बाद धनिया से बोला—'ले जा इस पिल्ले को अपने यहाँ! मैं नहीं रखता जङ्गली जानवर को अपने पास!'

और तब से बिसहा अपनी मौसी के पास रहता था। मौसी ने उसके नाम का परिष्कार कर दिया था और गाँव भर उसे बिस्सू कहकर पुकारता था।

।

बिस्सू गाँव का सबसे शरारती लड़का था और उसका सबसे प्यारा खेल था चूहे मारना। पास ही में एक सेठ का गेहूँ का गोदाम था जहाँ रोज़ चूहेदानी रखी जाती थी। उसका दरबान रोज़ चूहे लाकर डोमों की बस्ती में छोड़ जाता था। सब लड़के चूहे मारने को दौड़ पड़ते, पर बिसुआ का निशाना अचूक था। वह एक ढेले से तीन चूहे मारता था और दो ढेलों से सात। उसके बाद उन्हें लटका कर नदी पर ले जाता था। रास्ते में कोई मिलता तो कहता—'गुलदस्ता लोगे, गुलदस्ता सेठ जी। आज तो ठाकुर जी का जनम है न?' और नरकुल की नाव बना कर उस पर चूहे रख कर बहा देता और कहता—'आहा! चूहे राजा की बारात जा रही है।' अगर कोई पूछता कि दुल्हन कहाँ है, तो कहता—'अरे वह क्या है वही मोटे सेठ की लड़की; वही छमाछम!'

एक दिन जब वह चूहे ले जा रहा था तो बाप मिला उसका।

उसने पूछा—'क्यों बे बिसई ? सालन बना कर खायेगा क्या इन्हें ?'

उसने जवाब दिया—'इन्हें ! ये तो बड़े छोटे हैं। उसे खाऊँगा, तोंद वाले चूहे को !'

चौधरी खुश हो गया, मन में बोला—'शाबाश ! है न आखिर इसमें ख़ानदान का खून !'

धीरे-धीरे वह बिसहे को काफी चाहने लगा था और वह उसे अपने हुनर में होशियार बना देना चाहता था। इसीलिये एक दिन वह बिसहे को फाँसी दिखाने ले गया। लेकिन जब बिसहा लौटा तो बहुत सहमा हुआ था। आदमी का खून चूहे के खून से गाढ़ा होता है। वह धनिया की गोद में मुँह छिपा कर बहुत रोया, रात को सोते-सोते चीख पड़ा और बाप के पास जाने में डरने लगा। चूहे मारने की कौन कहे वह उनकी ओर देखता भी नहीं था। दिन भर या तो नदी किनारे नरकुल के झाड़ में लेट कर बाँसुरी बजाता था या चौधरी के बाड़े में सुअरों के पास पड़ा सोता रहता था। चौधरी ने उसके ये रंग-ढंग देखे तो बहुत बिगड़ा और बोला—'कम्बख्त दोगला निकल गया। मेरा लड़का होता तो डोम होता। यह तो बाभन है बाभन। हरजाई की सन्तान बाभन। छि: !'

और एक दिन उसकी सुअरी ने बच्चा दिया। चितकबरा जिसके माथे पर सफेद टीका था। चौधरी ने उसे उठा कर प्यार करते हुए कहा—'अरे यह राजा होगा। मेरा राजा बेटा...' उसे झुलाते हुए बोला।

धनिया बोली—'वाहरे चौधरी ! तुम्हारा तो दिमाग खराब हो गया, कही सुअर भी राजा होते हैं ?'

चौधरी बिगड़ गये—'देख औरत जात होकर जबान मत लड़ाया कर। अक्किल न सऊर, चली है सास्तारथ करने। अरे राजा लोग सुअर होते हैं तो सुअर क्यों राजा नहीं हो सकते! मेरा तो राजा बेटा है!'

उसके बाद क़ैदी को तम्बाकू पहुँचाने के एवज़ में उसे बारह आने पैसे मिले थे जिसमें वह एक घुँघरू वाला पट्टा ले आया और उसे पहना कर बोला—'देख री! अपने पिल्ले से मना कर दे मेरे राजा बेटा के साथ न रहा करे नहीं तो इसे भी बिगाड़ देगा।'

लेकिन बिसुआ मौका पाने पर बाड़े में घुस आता था और घण्टों राजा को खिलाता रहता था।

आज जब चौधरी ने आवाज दी तो वह वहीं था। उसने दरार से झाँक कर देखा और बोला—'आज खैर नहीं है!' काका ताड़ी के नशे में चूर था।

चौधरी डगमगाते कदमों से झोपड़ी की ओर बढ़ा। मगर जग्गू ने अपने चबूतरे से आवाज दी—'कहो चौधरी!'

चौधरी उधर मुड़ गया और कली लेकर पीने लगा।

'कहो आज बहुत गंगाजल पिया है क्या? ताड़ीघर से सीधे आ रहे हो?'

'ताड़ी, अरे आज खून पिया है भइया, खून!'

'खून! क्यों सावन-भादों लग गया क्या चौधरी?'

'हाँ और क्या भइया, झूला डाल के आया हूँ आज!'

'आखिर किसे झुलाया?'

'सो न पूछो जग्गू भइया! इतने दिन हुए मुझे जेल में, इन्हीं हाथों से बड़ी-बड़ी गर्दनों पर जाल डाला है मगर आज तो दिल काँप गया।'

'अच्छा, कौन था आखिर ?'

'एक लड़का अठारह बरस का, अभी दूध के दाँत भी नहीं टूटे थे।'

'क्या औरत का गला घोंट दिया था ?'

'अरे राम कहो। कभी जान-बूझ कर फूल भी नहीं मसला होगा उसने। कैसा भोला-भाला था ? चौड़ा मत्था, दुबला चेहरा, बड़े-बड़े बाल। आँखें छोटी थी मगर बड़ी तीखी, उजली-सी । बेले की साँवर कली समझो उसे।'

'तो किया क्या था उसने ?'

'अरे ऐसा हुआ जग्गू भइया कि उसने तार काटे थे; बस फौज चढ़ गयी उसके गाँव पर, और लगा दी आग। आदमी आम की गुठली की तरह भुनने लगे। उसने जाकर कप्तान की गर्दन थाम ली। बस, पकड़ लिया उसे और लिख दिया सरकार को कि इसने छावनी में आग लगा दी। बस हो गयी फाँसी।'

'अरे, इतने ही पर ?'

'और क्या सरकार से लड़ना कोई हँसी खेल है। जब चाहें फाँसी दे दे, जब चाहे जागीर दे दे। लेकिन भइया गजब का निडर था वह लड़का। जब फाँसी चढ़ने आया तो कलट्टर को देख कर बोला—'इस छावनी में तो आग नहीं लगायी अब वहाँ की छावनी में आग लगाने जा रहा हूँ, उसकी छावनी में जो हिन्दुस्तान में घास-फूस पैदा करता है।' सुपरन्डन्ट साहब ने पूछा, 'तेरी आखिरी ख्वाहिश क्या है,' तो हँस कर बोला—'अगले जनम में तुम्हारा सगा भाई बनूँ तब तुम फाँसी दो!' साहब ने मुँह फेर कर रूमाल निकाल लया। फिर मेरी ओर देख कर बोला, 'देर क्यों करते हो पुरोहित जी, जल्दी कंगन बाँधो, लगन टल गयी तो ?' बस मेरा हाथ काँप गया। पहले तो लगा जैसे आँख में आँसू आने वाले हैं, फिर मैंने

दिल कड़ा कर के सोचा, अरे आँसू-वासू तो सब बड़े आदमियों के चोचले होते हैं। जिसके पेट में दाना हो, तन पर कपड़ा हो उसके दीदे में आँसू भी सोहता है। बस मैंने फन्दा डाल कर खींच ही तो दिया रस्सा। लटक गया फूल एक ही झटके में ! लेकिन कैसी कच्ची गर्दन थी उसकी। बस, उसके बाद भागा मैं वहाँ से और जन्तू की दूकान पर आधी घड़िया ताड़ी पी। कैसा ऊजर फेन था, जैसे उसकी आँख।' और सहसा उन निरीह आँखों की याद कर वह सहम गया—'अच्छा चलूँ अब।'

चौधरी के हाथ से कली (हुक्का) लेते हुए जग्गू ने मुँह फेर कर, हँस कर कहा—'जब चौधरी पर नशा चढ़ता है तो सबको यही किस्सा सुनाते हैं। पिछले छ साल में कम से कम दर्जन बार तो कहा होगा और रोज यही कहते हैं कि आज उसे लटकाया है। राम जाने कोई भूत-परेत है कि रोज जी उठता है और रोज चौधरी उसे लटकाते हैं।'

चौधरी मुड़ पड़ा। उसने आग्नेय दृष्टि से जग्गू की ओर देखा और बोला—'मामा के बेटवा हो, खून का रिश्ता है नहीं तो...... हम क्या झूठ बोलते हैं ? हाँ छः साल पहले फाँसी पर लटकाया था, पर आज देखा तो जिस कप्तान ने उसे फाँसी पर लटकाया था, वो वर्दी तमगा साजे सुपरंडन्ट बन के आया है। उसके साथ कोई गाँधी टोपी वाला भी था, उसका रिश्तेदार ! बस भइया ! मैंने सलाम के लिये हाथ उठाया तो लगा कि जैसे फिर उसकी लास उठा लाया हूँ और फिर लास के गले में फन्दा छोड़ रहा हूँ ! बताओ ईमान, धरम से बताओ, हमने झूठ कहा था कि आज उसे लटकाया है। हम नशे में हैं...ठहर बे बिसुआ ! ओ बिसुआ......'

इतने में उसने देखा कि बिसुआ चुप्पे से बाड़े में से निकल कर जा रहा था।

'ठहर तो बे !'—उसने पुकार कर कहा।

बिसुआ रुक गया। चौधरी लड़खड़ाता हुआ उसके पास पहुँचा और भरपूर तमाचा जमा कर कहा—'क्यों बे ? फिर बैठा राजा के पास ! उसे भी बिगाड़ेगा। फिर जायेगा उसके पास ? बोल ! बोल !'

बिसुआ का सर घूम गया। वह क्षण भर चुप रहा, फिर तन कर बोला—'हाँ फिर जाऊँगा, सौ बार जाऊँगा, बेईमान, कमीना, जल्लाद काका !'

अब तो गुस्से में घी पड़ गया। वह नशे में था पर गालियाँ पहचानता था। बेईमान, कमीना तक तो गनीमत थी, यह विशेषण बड़े-बड़े आदमियों पर लगता था मगर जल्लाद; वह जल्लाद था ? उसने उठायी रस्सी और सड़ासड़ कई निशान बिसुआ की पीठ पर बन गये।

धनिया भागती हुई आई और बिसुआ को अपनी कोख में दुबका कर बोली—'मार डाल हत्यारे। मुफ्त का है न। अपने पाप की कुढ़न उस पर निकाल रहा है। खबरदार जो हाथ चलाया अबकी दफे !'

चौधरी का हाथ रुक गया। वह ताड़ी के नशे में मदहोश था। उसका सर घूम रहा था और उसके सामने महज वे दोनों उजली आँखें चमक रही थीं। वह उन्हें देख कर डर रहा था, उन्हें वह कोड़े मार कर भगाना चाहता था, मगर वह कोड़े क्या बिस्सू पर पड़ गये थे ?

वह क्षण भर चुप रहा, फिर बोला—'लेकिन वह मुझे जल्लाद कहता है ! मेरा ही लड़का मुझे जल्लाद कहे !'

'और है नहीं तू जल्लाद, निपूते, तू तो राक्षस है राक्षस !

'जबान सम्भाल कर बोल रे ! मैं जल्लाद हूँ ? कोई रस्सी में गाँठ लगाने से जल्लाद हो जाता है ? जिसने आग लगायी वह कप्तान, जिसने फाँसी चढ़ायी वह जेलर और मैंने गाँठ लगा दी तो मैं जल्लाद हो गया। जो बचे वो अफसर हो गये, जो कप्तान था वो सुपरंडन्ट हो गया और मैं जल्लाद हो गया ! और राम जानता है मैंने ऐसे आहिस्ते से झटका दिया था कि एक नस भी नहीं चिटकी होगी और परान तो ऐसे आहिस्ते से रेंग कर निकले होंगे......और उस पर यह मुझे जल्लाद कहता है ! दिन भर यही सोचता है पड़े पड़े !'

'सोचेगा नहीं पड़े-पड़े ! तेरे काम में इसकी तबियत नहीं लगती तो क्यों नहीं भेजता स्कूल ?' बस्ती में हरिजनसेवा वालों ने एक पाठशाला खोल रखी थी ।

'हूँ, स्कूल भेज दूँ इसे और खानदान की नाक कटा दूँ ! क्या सीखेगा यह गाँधी वालों से ? देख आया हूँ आज उनकी करतूतें। जब फाँसी लग रही थी तो सैकड़ों खड़े थे बाहर झण्डे ले लेकर। जेलर ने कहा लाश नहीं मिलेगी । बस वे बोले, 'लाश नहीं मिलेगी भाइयों—शान्ति से घर लौट चलिये। बोलो भारत माता की जय !' और जब उस अभागे के गले में भीतर फन्दा लग रहा था तो वे गला फाड़ कर जय बोल रहे थे। तोड़ देते फाटक, घुस जाते और छीन ले जाते उसे, तब जानता। यों जय चिल्लाना कौन बड़ी बात है। और फिर उसी कप्तान को सुपरन्डन्ट बना दिया ! छिः ! हमारे पास इलम है। हम कमाते-खाते हैं। उनकी बिद्या उन्हीं को मुबारक हो !'

बिसहा अब तक चुप खड़ा था; गुमसुम। धनिया उसे ले गयी। रोटी दी। मगर रोटी उसने फेंक दी और चुपचाप एक ओर चल दिया।

'बाप से बेटा कोई कम थोड़े ही है। मुझ पर गुस्सा उतार रहा है कम्बख्त !' धनिया रुँधे गले से बोली।

बिसहा नदी के किनारे गया और एक झाऊ की शाख से टिक कर खड़ा हो गया। अब उसकी आँख से आँसू निकले और वह चीख-चीख कर रोने लगा। धीरे-धीरे वह चुप हुआ। उसने अपनी बाँह और पीठ पर नीले निशान देखे और दाँत पीसते हुए मुट्ठी बाँध कर कहा—'अच्छा देख लूँगा !' फिर जाने कौन-सा दृढ़ निश्चय कर वह चल दिया। झोपड़ी में झाँक कर देखा, कोई नहीं था। फिर वह बाड़े में घुस गया और उसे गोद में उठा लिया। सुअरी ने उसकी ओर देखा तो बोला—'क्या करूँ ? काका मुझे जल्लाद बना कर छोड़ेगा। देख न तेरे राजा की वजह से कितनी मार पड़ी है।'

और वह राजा को झोपड़ी में लाकर बोला—'अब झूलो बेटा !' उसने रस्सी में फन्दा डाला, बाँस में अटकाया, राजा को नीचे रख कर उसके गले का पट्टा उतारा और फन्दा उसके गले में डाल दिया। रस्सी खीचने ही वाला था कि बेबस जानवर बुरी तरह चीख उठा। बिसुआ ने रस्सी छोड़ दी और बहुत प्यार से चुमकार कर बोला—'काहे राजा भइया ? भूख लगी है क्या ? अच्छा चल तुझे दूध पिला लावें। मेरा राजा भइया कोई आदमी थोड़े ही है कि भूखो पेट मरे।'

और उसने राजा को गोद में उठाया और थपथपा कर ले चला।

चौधरी मारपीट कर सामने वाले पीपल के पेड़ के नीचे जाकर लेट रहा था। उसे बिल्कुल ध्यान नहीं था कि अभी क्या हुआ है। वह अब बिल्कुल चूर था। महज अन्धेरे में बेले की पाँखुरी जैसी दो आँखें मुस्कुरा उठती थीं। थोड़ी देर बाद उसने देखा उन आँखों

में नीले डोरे उतर आये हैं, ठीक जैसे बिसुआ की पीठ पर थे। बस वह काँप उठा। उसका नशा उतर गया और सीने में पसली के नीचे उसे जाने कैसा-सा लगा, कुछ खाली-खाली सा—शायद ताड़ी बासी थी—उसने सोचा—चिलम पीने से ठीक हो जायेगी। वह झोपड़ी की ओर चला।

झोपड़ी खोल कर उसी वक्त बिसुआ निकला, बिसुआ को देख कर चौधरी का मन जाने क्यों भर आया।

'बिस्सू बेटा!' बड़े दुलार से उसने कहा—'एक चिलम तो भर दो!'

बिस्सू का चेहरा डर के मारे नीला पड़ गया और राजा उसके हाथ से छूट कर नीचे गिर गया।

'ओह! तू इसे खिला रहा है!' (बिस्सू ने उम्मीद की थी कि अब एक हाथ भरपूर कनपटी पर पड़ेगा)—'कोई बात नहीं उसे खिला ले बेटा!'

बिस्सू स्तब्ध! आज काका को क्या हो गया?

'अरे इसका पट्टा क्या हो गया?' चौधरी ने कहा।

'मैंने खोल डाला।' बिस्सू तन गया और उसने मुट्ठी कस ली।

'क्यों?'

'मैं इसे लटकाने जा रहा था, रस्सी से!'

चौधरी नहीं समझा—'क्यों?'

'क्यों? अब जल्लाद बनूँगा तेरी तरह और क्यों?'

चौधरी जल गया सर से पैर तक। वह बढ़ा बिस्सू की ओर मगर दूसरे ही क्षण वही दोनों बेले के पाँखुरी जैसी आँखें मुस्कुरा उठीं और उसका गुस्सा घुल गया।

'नहीं बेटे! तू क्यों जल्लाद बनेगा? मेरा बेटा बड़ा आदमी

बनेगा। हरिनाकुस का बेटा पहलाद था, मेरा बेटा बिसुआ है।' और पास खींच कर प्यार से बोला—'कल से तू स्कूल जाना, अच्छा !'

बिस्सू पहले चुप रहा फिर जाने क्यों फूट-फूट कर रो पड़ा। चौधरी का गला रुँध आया लेकिन वह बोला—'बस, बस यह मुझे नहीं अच्छा लगता। क्या तेरी माँ मर गयी जो रोता है। जा जेलर से कह आ कल से काका नौकरी नहीं करेगा—जा जल्दी !'

बिसुआ आँसू पोंछता हुआ चल दिया।

चौधरी क्षण भर उसे जाते हुए देखता रहा, फिर न जाने किसे ऊपर देख कर बोला—'देखो मेरा पाप मेरे बच्चे को न लगे नहीं तो समझ लेना, हरिनाकुस से पाला पड़ा है !'

और गमछे से खुरदरे गालों पर बहता हुआ आँसू पोंछ कर बरोसी की आग कुरेदने लगा।

कुलटा

कहानी है मेरी पड़ोसिन की। पड़ोसिनें अच्छी भी होती हैं और बुरी भी, कर्कशा भी होती हैं और सीधी भी, लड़ाकू भी होती हैं और मिलनसार भी, लेकिन मैं तो कुछ इस किस्म का आदमी हूँ कि जिन्हें यही नहीं कि भले-बुरे की तमीज नहीं होती वरन् यह कि भले और बुरे के बीच की अन्तर्रेखा का कोई महत्व ही वे नहीं समझ पाते। फलाँ आदमी शराब पीता है, इसलिए वह बुरा है, फलाँ आदमी खद्दर पहनता है, इसलिए अच्छा है, फलाँ यह करता है, इसलिए दुश्चरित्र है, फलाँ वह करता है, इसलिए सच्चरित्र है, इस तरह के बँधे-बँधाए फैसले कभी भी मेरा मन स्वीकार ही नहीं कर पाता। मेरे लिए फलाँ व्यक्ति 'है', फलानी चीज 'है', फलानी बात 'है', बस इतना ही सच है। विशेषणों को समझने और महत्व देने की बुद्धि जैसे मुझे मिली ही नहीं। इसलिए कभी-कभी जब मुझसे कहा जाता है कि उससे दूर रहो, यह बात अच्छी नहीं, तो मैं इसकी अहमियत नहीं समझ पाता।

इसी अच्छे और बुरे की बात को लेकर अक्सर मुझमें और भइया में तनातनी रहती है। भले और बुरे की पहचान की, उन्हें कुछ ऐसी ईश्वरदत्त प्रतिभा है कि वह उड़ती चिड़िया पहचान लेते हैं। किसी का चेहरा देख कर बता दें कि उस आदमी में कितने महान् दुर्गुण भरे हुए हैं। यह बात नहीं कि दुनिया को देखने, समझने और अभ्यास करने से उनमें यह अद्भुत शक्ति आई है, यह

तो ईश्वरीय देन है, वरना इस विश्लेषण में मैं 'जड़मति' इतने अभ्यास के बाद 'सुजान' बन ही गया होता।

अब इन्हीं नन्दराम घड़ीसाज को ले लीजिए। इन्हें मेरे पड़ोस में आये सिर्फ ३ ही महीने हुए लेकिन भइया ने पहले ही दिन बता दिया था कि इनकी बीबी के रंग-ढंग अच्छे नहीं हैं। यूं उसकी उम्र काफी थी। कम से कम २८, ३० के करीब; गोद में एक चार महीने का बच्चा था, देखने-सुनने में बहुत मलीन और गन्दी, नाम भी कोई अच्छा नहीं, सिर्फ 'लाली', लेकिन वाहरे भइया कि उनसे लाली की दुश्चरित्रता भी नहीं छिप सकी। भइया रोज उसके बारे में नई-नई बातें बताते। और मुझसे भइया से इसलिए बहस हो गई। यूँ तो मुझे इस तरह की बातों पर अक्सर यकीन नहीं होता और फिर लाली जैसी औरत को कोई भला निगाह उठा कर देखना भी पसंद नहीं करता लेकिन भइया का कहना है कि मैं औरतों को समझता ही नहीं। यूँ कभी वह आग लेने, कभी लड़के की घुट्टी लेने और कभी तुलसी की पत्ती लेने मेरे यहाँ आती थी। मगर भइया के फैसले ने इतना डरा दिया था कि कभी उसके सामने भी नहीं जाता था। मुझे ऐसी बातों पर जरा कम यकीन होता था। मगर मेरे यकीन करने न करने से क्या, जब सभी जानते हैं कि मुझे भले-बुरे की तमीज नहीं। लेकिन एक घटना ऐसी हुई कि मेरा ध्यान उसकी ओर बुरी तरह खिंच गया।

उस दिन इतवार था और मैं दालान में बैठा साइकिल साफ कर रहा था। 'भइया, आपके पास कोई डाक का लिफाफा होगा ?' मैंने सर उठा कर देखा तो लाली। मेरी तो जुबान तालू में चिपक गई। 'नहीं', मैंने किसी तरह कहा। मगर सच बताऊँ आपसे, अगर

भइया का डर न होता तो उससे कुछ बातें करना चाहता था।

'टिकट है ?' उसने फिर पूछा।

'नहीं, लेकिन सुनिये...' सहसा मैंने देखा दरवाजे पर भइया—और बड़ी सफाई से स्वर बदल कर मैं बोला—'क्या मैं कोई डाकखाना खोले हूँ क्या ?'

'जी नहीं, भइयाजी'—उसके स्वर में बेहद दीनता थी—'आज इतवार है। एक जरूरी खत लिखना था। सोचा शायद आपके पास हो। आप नाराज न हों'—और जैसे लगा वह अभी रो पड़ेगी। उसके बाद वह मुड़ी और चली गई।

अब भइया आये और पहले उन्होंने बड़ी विश्लेषणात्मक निगाह से मुझे सर से पैर तक देखा और बोले—'क्या कह रही थी ?'

'लिफाफा टिकट माँग रही थी।'

'हूँ', भइया बहुत गम्भीर थे, 'तो यह ढङ्ग निकाला है ! कमीनी ! बदज़ात !'

'नहीं भइया, मगर...मगर उसने और कोई बात नहीं की। मैंने उसे डाँट दिया तो बेचारी रुआँसी हो गई !'

'बेचारी रुआँसी हो गई !' बेचारी पर खास जोर देते हुए भइया ने कहा, 'तुम अभी इन लोगों के ढङ्ग नहीं जानते ! पूरी कुलटा है यह !'

'क्यों किसी पर तोहमत लगाते हो !'

'तोहमत ! जानते हो विधवा है यह। दूसरा ब्याह किया है। मैंने पहले ही दिन कह दिया था...।'

'लेकिन इतने से ही दुश्चरित्र कैसे हो गई ?'

'क्यों एक आदमी मर गया तो चैन नहीं पड़ा ? अरे मैं कहता हूँ कौन जाने इसने पहले आदमी को जहर न दे दिया हो। सौ बार ऐसी खबरें अखबार में निकलती हैं !'

मैं चुप रह गया। बात सही थी ! कौन जाने उसने जहर ही दे दिया हो। लेकिन भइया के स्वर में कुछ ऐसा था कि उसमें मुझे अपने प्रति अच्छा न लगा, और मैं बोला—'आप तो शक्की हैं !' भइया सुनते ही मुड़े और फिर मेरे बिलकुल नज़दीक आकर बोले—'और आप झक्की हैं ! तुम जानते हो जब तुम कालेज चले जाते हो तो रोज दोपहर में आकर मुझसे पूछती है—मेरा कोई खत तो डाकिया भूल से नहीं दे गया ? बताओ किसी का खत तो डाकिया मुझे नहीं दे जाता फिर उसका ही क्यों दे जायगा ? फिर तुम्हारे सामने पूछने क्यों नहीं आती ? अकेले में ही क्यों पूछने आती है ? मैं सब समझता हूँ।' प्रमाण अकाट्य था। मैं इस बार सचमुच निरुत्तर था। भइया फिर दरवाजे तक जाकर रुक गये और पैन्ट पर क्लिप चढ़ाते हुए बोले—'और फिर मान लिया कि वह किसी और मतलब से नहीं आती, लेकिन कौन है जिसके खत के लिए इतनी चिन्ता कि किसी दूसरे के हाथ न पड़ जाये। किसे खत भेजने की इतनी बेताबी है कि इतवार भी काटे नहीं कट रहा है ?' और भइया साइकिल उठा कर चल दिये।

उसी दिन से पता नहीं क्यों, मैं लाली के बारे में अनावश्यक रूप से सोचने लगा। उसका घर खपड़ैल का था, मेरी खिड़की से उसका आँगन दीखता था। सहसा मुझे इस बात का ख्याल हो आया कि आज तक मैंने न कभी खिड़की बंद करने की कोशिश की और न कभी उसने पर्दा करने की ! नंदराम से वह बहुत कम बोलती थी। नंदराम की उम्र ४५ की थी और उसके पहली पत्नी से दो बच्चे थे, जो लाली से नफरत करते थे। जब नंदराम खाना खाकर अपनी खिचड़ी मूछों को पोंछता हुआ और दाँत खोदता हुआ बाहर चबूतरे पर जा बैठता तो दोनों बच्चे लाली की शिकायत करते और कभी-

कभी नंदराम भी कह उठता—'कमीनी है बदजात!' और फिर आँगन में खड़े होकर गुर्राता हुआ कहता—'मैं कहे देता हूं कि घर में इन्हीं बच्चों के आराम के लिये लाया हूं! तुझे माँ बन कर रहना हो तो रहो वरना याद रख......भूखों मर रही थी, अब चर्बी चढ़ गई है न! हड्डी-हड्डी तोड़ डालूंगा।' इतने ही में नंदराम का बड़ा लड़का पुत्तन गोद के लड़के को धीरे से चुटकी काट लेता और वह चीख कर रो पड़ता। लाली जब तक उसे दौड़ कर चुप कराये, तब तक नंदराम कहता—'हरामजादी अपनी सन्तान को तो खाये जाती है, दूसरे के पेट की क्या ममता होगी? मुझे तो समाज के मन्त्री जी ने अच्छा फँसा दिया! कहाँ बुढ़ापे में यह पाप गले पड़ा मेरे!' और वह खड़ाऊँ चटकाता हुआ फिर चबूतरे पर चला जाता!

अगर मेरी जगह और कोई होता तो नंदराम का पक्ष लेता या लाली पर तरस खाता, मगर मैं तो बता चुका हूं कि मुझे भले-बुरे की तमीज ही नहीं और दुनिया की कोई चीज मेरे लिए अहमियत ही नहीं रखती। लेकिन आज की घटना के बाद यह सभी चीजें न जाने किस कोने से निकल कर मेरे मन की पर्तों में रेंगने लगीं। शाम को लेटा तो भी यही सोच रहा था। होली नजदीक थी और दूर पर कुछ बारी मिल कर ढोल पीट-पीट कर फगुआ उड़ा रहे थे। इतने में भइया भी आकर बैठ गए। सामने की खिड़की खुली थी और नंदराम आँगन में खड़ा रोज का कार्यक्रम पूरा कर रहा था। हाँ, आज ज़रा उसकी आवाज तेज़ थी। वह अपने दोनों बच्चों को सर्कस ले जाने वाला था और कपड़े पहने तैयार खड़ा था। गोद का बच्चा चीख-चीख कर रो रहा था, लेकिन लाली गुमसुम चौके में बैठी कुछ बना रही थी। घी और सूजी की महक यहाँ तक आ रही

थी जिससे अनुमान होता था कि वह होली का पकवान बना रही थी। नंदराम कभी पुत्तन की टोपी ठीक करता, कभी अपना कोट; और कह रहा था—'पकवान बना रही है हरामजादी! कहा था बच्चों को तैयार कर देना! लेकिन माँ का दिल हो तब न! अपनी गोद का बच्चा गला फाड़-फाड़ कर मरा जा रहा है। जाने किसे खिलायेगी पकवान! एक को तो खिला-खिलाकर मार डाला।'... और वह पैर पटकते हुए चला गया।

भइया बड़ी दिलचस्पी से सुन रहे थे। और उस कमीनी कुलटा पर डाँट पड़ने से उन्हें एक विचित्र प्रकार का मानसिक सन्तोष प्राप्त हो रहा था। सहसा वे मुझसे बोले—'इधर आओ, देखो जरा!' मैंने खिड़की से झुक कर देखा—लाली कढ़ाई के पास से उठ आई थी और सामने एक थाल में से चीजें उठा-उठा कर खा रही थी। बच्चा एक खटोले पर पड़ा रो रहा था। रोते-रोते गला बैठ रहा था उसका, मगर लाली थी कि उस ओर बिना ध्यान दिए एक-एक चीज बहुत स्वाद ले लेकर चख रही थी।

कुछ ऐसी वीतभसता थी इस दृश्य में कि मैं सिहर उठा। 'सच-मुच यह औरत दुश्चरित्र ही नहीं नीच है, जानवर है! बच्चा चीखते-चीखते मरा जा रहा है और इसे अपने पेट की पड़ी है। यह माँ है?

'यह माँ है!' भइया बोले, 'छिः! मैं कहता हूँ औरत में जो कुछ अच्छा है, ऊंचा है, बन्दनीय है, वह है उसका मातृत्व! जहाँ वह उससे गिरी कि फिर गोश्त के भूखे-प्यासे लोथड़े के सिवा रह क्या जाता है? कुछ भी तो नहीं! अब बताओ कोई भी इन्सानियत रह

गई है इस औरत में ? केवल लालसा, अन्धी तृष्णा, चाहे वह स्वाद की हो या भोग की, छिः।'

इस बीच में लाली उठी और एक पिटारी ले आई। बच्चा अन्त में रोते-रोते सो गया था। पिटारी में उसने बहुत-सा पकवान रखा और एक कपड़े से बाँध दिया। इतने में किसी ने बाहर से आवाज दी। वह बाहर गई और हम लोगों ने देखा कि उसके पीछे-पीछे कोई आदमी तनज़ेब का कुर्ता और धोती पहने आ रहा है। आदमी ने अन्दर आते ही चारों तरफ देखा। लाली बोली—'कोई नहीं है, घबड़ाओ मत !' उसने सशंकित निगाह से हमारी खिड़की की ओर देखा और कुछ लाली से कहा जो सुनाई नहीं पड़ा। लाली थोड़ी देर आँगन में खड़ी कुछ सोचती रही, फिर चुपचाप बरामदे में चली गई। वह आदमी भी अन्दर चला गया। मैं मारे ग्लानि के खिड़की के पास से उठ आया। भइया कमरे में टहलने लगे। 'देखा तुमने ?' थोड़ी देर बाद बोले, 'अब तो अपनी आँखों से देख लिया। मैं कल नंदराम से कहता हूँ कि वह अपना मकान बदल दे वरना अच्छा नहीं होगा। मुझे यह सब बहुत नापसन्द है। ऐसे आदमियों का पड़ोस कितना गलीज़ होता है।'

थोड़ी देर में आदमी जब गया तो हाथ में पकवानों की पिटारी थी।

मुझे कभी-कभी ताज्जुब होता था कि नंदराम क्यों इतना बेखबर है। क्या वह लाली के रङ्ग-ढङ्ग नहीं समझता ? क्यों नहीं वह ऐसी औरत का गला दबा देता ? एक तो विधवा, ऊपर से..............

लेकिन कुछ रोज बाद, शायद होली तब तक बीत चुकी थी, उस घर में एक घमासान कांड मचा। आँगन में कुछ नहीं दीख

पड़ता था, मगर बरामदे में अन्दर नन्दराम चीख रहा था—'मैं सब समझता हूँ, सब जानता हूँ। रोज मुहल्ले भर में जाकर उसकी चिट्ठी ढूँढती है। उसी के लिए यह पकवान बने थे—ले और ले।' घम, घम...मारपीट शायद हो रही थी, क्योंकि नन्दराम के दोनों बच्चे, पुत्तन खास तौर से, ताली बजाकर नाच रहे थे। बीच-बीच में सिसकियों की आवाज, बाद में फिर नन्दराम की आवाज। 'इतनी हिम्मत तेरी! उसे यहाँ बुलायेगी, जान ले लूँगा तेरी! कुतिया!' उसके बाद रोते-रोते कुछ लाली ने कहा जो सुन नहीं पड़ा और थोड़ी देर के लिए नन्दराम की आवाज आनी बन्द हो गई। मैंने भइया की ओर देखा। वे बहुत खुश नज़र आते थे—बोले, 'आज पता लगा है। उसी को लिख रही होगी खत! जो उस दिन आया था न!'

सहसा नन्दराम फिर चीख कर बोला—'मैंने एक दफे कह दिया न! खबरदार जो उसे खत लिखा। तेरी उँगलियाँ काटकर मिर्चा भर दूँगा।' लेकिन उससे भी ज्यादा जोर से चीखकर लाली बोली—'मैं लिखूँगी, लिखूँगी हत्यारे, कसाई, निपूते।' और सहसा वह बरामदे में से निकलकर बाहर भागी। नन्दराम उसके पीछे लपका, मगर यह ले, वह ले, और लाली मेरे आँगन में मौजूद और लगी चीखने—'माँ जी! बचाओ माँ जी! कसाई मारे डालता है मुझे!'

माँ अष्टमी पूजने गई थी। मेरे काटो तो खून नहीं। भइया कुछ कहने ही वाले थे कि इतने में नन्दराम चीखता-चिल्लाता हुआ आया और उसके बाल पकड़ कर घसीटता हुआ ले गया। भइया ने कहा—'जाओ दरवाजा बन्द कर आओ।' मैं नीचे उतरा कि आँगन में ही मेरी निगाह मुड़े हुए पोस्टकार्ड पर पड़ी जो लाली के आँचल

से गिर पड़ा था। शायद यही उसके प्रेमी का खत था जिस पर कुह-राम मचा हुआ था। उठाऊँ या न उठाऊँ? अन्त में मैंने उठा ही लिया। किसी बहुत कम पढ़े-लिखे की बहुत त्रुटिपूर्ण हस्तलिपि में था—(मैं इसको वैसे ही लिखे देता हूँ जैसा कि गलत-सलत लिखा हुआ था।)

श्रीमती माता जी,

आगे समाचार येह है कि आपके भेजे हुए पकवान मीलें। आपने जो की लिखा है कि एक बार ईलाहाबाद चले आना वह मैं इमतहान बाद आऊँगा एक दिन के लिए। पर मैं ठहरूँगा नहि क्योंकि आपने सादी कर लिया है और रहा हम तो उस कुल वालों की बात सुनने के लिए और पुत्तन की मार खाने को मैं उस बार इलाहाबाद गया। आपने कहा की मेरा लड़का नालेक है, इसकूल से भाग आता है और नन्दराम ने हजारों बातें सुनाईं। हमको नन्दराम की बात सुनने का बरदाशत नही है। बात सुनने की बर-दासत होता, तो मामा की खुसमत करता तो वो अपने पास रख लेते। जब मामा के पास से दादा के घर आये तो हमारे कुछ कपड़ा धोबी के यहाँ रह गया। उसे मामी नहीं भेजा। और बहुत बात है जो मैं आऊँगा तो बताऊँगा। पर आपने जो लिखा कि मैं १० रुपये का मास्टर रख दूँगी और दो आना रोज दूँगी, वह आप मुछको देना होता तो पहले देतीं। मैं आपका नन्दराम की कमाई नहीं खाना चाहता। मैंने तो सोचा है कि मुझको दादा नहीं रखेंगे तो किया जिस भगवान पैदा कीया वह जीन्दा रखेगा। आपने कहा था दादा से की मैं समछूँगी की इस कुल में सब मर गए तो समझ लीजेगा कि मर गया, या इससे आपको दुख हो तो समछ लीजेगा की मेरा लड़का मरा नहीं नालेक है, अब जो दूसरा हुआ है वह बड़ा होकर

कैहना मानेगा। होली के दिन मामा आपका पकवान दिया पर हम खाया नहीं की वह नन्दराम की कमाई का है। तो उसे मामी रख लिया। यहाँ सब ठीक है इन्दरा जल गई थी। छोटी बुवा को बिटिया हुई सो निमोनिया हो गया अब ठीक है। मैं इमतहान बाद आऊँगा पर ठहरूँगा नहीं कियोंकी आप सादी कर लीया है।

आपका पुत्र
श्याम मनोहर लाल

तो यह था जिसे हम प्रेम-पत्र समझ रहे थे।

मैंने चुपचाप खत भइया को दे दिया और कुर्सी पर बैठ गया। खिड़की से आवाज़ आ रही थी। लाली जिबह की जाती हुई गाय की तरह डकरा-डकरा कर चीख रही थी—मैं लिखूँगी, जरूर लिखूँगी, उसे यहीं बुलाऊँगी। तेरी छाती पर बिठाऊँगी!' और नन्दराम मारता हुआ चीख रहा था—'हरामजादी, कुतिया, कमीनी, बदजात, कुलटा!'

मरीज़ नम्बर सात

नर्सें झल्लाई हुई थीं, रोगी सहमे हुए थे, डाक्टर अपने फेरे में उस वार्ड को टाल जाने की कोशिश करता था, कमरे में एक अजब सा खामोश, भयावना मनहूस वातावरण छाया हुआ था, हवाओं में ख़ून जम गया था और खिड़कियों से रोशनी जैसे अन्दर आने में डरती थीं, यहाँ तक कि छत पर लगा पंखा भी दबे पाँव सहम-सहम कर चलता था। और यह सब केवल उस मरणासन्न अधेड़ औरत की वजह से जो तीन दिन से बार-बार मौत के मुँह तक जा-जाकर लौट आती थी। मंगल को रात के सवा दो बजे एकाएक दौड़-धूप हुई, स्ट्रेचर मँगाया गया, डाक्टर को खबर दी जाय या न दी जाय, इस पर नरसों में कानाफूसी हुई। वार्ड के दूसरे मरीजों ने सिहर कर करवटें बदलीं, मन ही मन ईश्वर का नाम लिया, किसी तरह पानी का घूँट गले के बीच उतारने की कोशिश की—

लेकिन चार बजे के लगभग उसे फिर चेत आ गया और वह उठ बैठी। नर्सों को यह बात काफी अपमानजनक मालूम पड़ी और उन्होंने झल्ला कर आपस में लड़ना शुरू किया। डाक्टर ने सोचा बला गले से उतरते-उतरते फिर उलझ गई। मरीजों के मुँह पर स्याही दौड़ गई। उन्होंने सोचा मौत ने दरवाजा तो देख लिया है, वह बच गई तो क्या, अब पता नहीं किसके सर उतरे।

दो बार फिर वही हालत हुई। बुध को शाम को पाँच बजे और

रात को एक बजे। उसके प्राण टँगे थे, किसी क्षण कुछ भी हो सकता था।

और यही चीज बरदाश्त के बाहर थी। उसकी मौत में जो अनावश्यक देर हो रही थी वह अन्दर ही अन्दर सब को मथ रही थी। सच तो यह है कि उन सबों के मन में वह औरत मर चुकी थी। लाश न सिर्फ उठाई जा रही थी वरन् बोल रही थी, दवा पी रही थी और इसी से सबों के मन में एक अजीब सी झल्लाहट, डर, गुस्सा और खीज थी। उनका दम घुट रहा था। कई मरीजों ने खाया नहीं था, खाने से उन्हें अरुचि होती थी, जो दर्द से आकुल थे वे भी कराह नहीं रहे थे, करवट बदलने में भी काँप रहे थे।

सब से ज़्यादह तकलीफ थी मरीज नम्बर सात को। उसके दोनों हाथों में फ्रैक्चर था, लकड़ी की पट्टियाँ बँधी थीं। करवट बदलने से लाचार था। बुखार था। अन्दर ही अन्दर बड़ी बेचैनी थी। नसों में अंगारे चलने लगते थे। कमरे में उमस थी। इलाहाबाद की मशहूर उमस। वार्ड भर में सिर्फ एक पंखा था, जिसके नीचे वह औरत पड़ी थी और वह तीन दिन से मर ही नहीं रही थी।

उसने नर्सों से कई बार कहा। नर्सों में एक थी बेन्सन। उसका विशेष ध्यान रखती थी। उसने मंगल को सुबह उस औरत के लिए एक मिक्सचर तैयार करते हुए कहा था—बहुत कड़ुए स्वर में, "हम सोचता था कि पेशेंट गुजरेगा तो वो बेड खाली होगा। तुम्हारे को उसमें डाल देंगे। लेकिन हमारी जान को आफत मारेंगा। पेशेंट मरेंगा काए को।"

बेन्सन सब से ज़्यादा हँसमुख, लापर्वाह, रूपवती और अल्हड़ थी। बेन्सन इस समय सबसे ज्यादा झल्लाई, चिन्तित, क्रुद्ध और रंजीदा थी। वह न मरने वाली औरत उसके मन पर भार बन कर

बैठ गई थी। पता नहीं क्यों बेन्सन उसके न मर पाने में किसी रहस्यमय ढङ्ग से अपने को अपराधिनी समझती थी।

मरीज नम्बर सात व्याकुल था। उमस और पसीना। हाथ भी प्लास्टर में जकड़े थे। पहले उसने दायाँ पैर बायें पर रक्खा, फिर बायाँ पैर दाएँ पर। फिर दोनों सिकोड़ लिये। फिर दोनों पैर फैला दिये। तकिए के छोर पर मुँह रगड़ कर पसीना पोंछा। फिर उसे रुलाई आने लगी। उसका स्वभाव कुछ तेज था। घरवाले उससे विशेष स्नेह नहीं रखते थे। कोई देखने भी नहीं आता था। नौकर कटोरदान में दोनों वक्त दूध और खाना लाता था। वही खिला भी जाता था। उसकी अँगुलियों से तम्बाकू की कड़ी महक आती थी। नाखूनों में बेहद मैल था। खाने के समय वह आँखें बन्द कर लेता था। उसे रुलाई फिर आने लगी, पर आँसू नहीं आये।

उसने पाँव समेट कर, गद्दे पर जमा कर, पीठ के बल ऊपर खिसकने की कोशिश की। पलँग के काले गर्म लोहे से सिर टिका कर उस औरत की ओर देखने लगा। उसके बिस्तरे पर ऊपर पंखा चल रहा था। पंखा सफ़ेद था। जैसे झरने का पानी। उसने सोचा कि उस पलँग पर सोने वाली को ऐसा लगता होगा जैसे कोई उमस भरे दिन में साफ ठंडे पानी से जी भरकर नहाए। वह नहाना चाहता था। फूट-फूट कर रो पड़ा।

उस औरत के सिरहाने दो बच्चे बैठे थे। नीचे चौकी पर घर की कोई दूसरी औरत। बड़ा बच्चा भय से सहमा हुआ चारों ओर देख रहा था, छोटा बच्चा ललचाई निगाहों से अनार की एक फाँक को, जो तश्तरी में रक्खी थी। रोगिणी हाँफ रही थी। वह औरत कह रही थी, "बच्चे तो मुझसे खूब हिल गये हैं। बिटिया तो आ ही नहीं रही थी। हमने अनार की लालच दी तो आई। तुम बच्चों

की तरफ से चिन्ता न करना। भैया दूसरा ब्याह करेंगे तो बच्चों को मैं रख लूँगी।" रोगिणी के हाथ-पाँव ऐंठने लगे। बच्चा सहम कर बुआ के पास सिमट कर बैठ गया।

मरीज नम्बर सात फिर लेट गया। उसके हाथ बँधे न होते तो वह बाल खींचता और कनपटियों पर घूँसा मारता। यह उसकी आदत थी। जब गुस्सा, दुख, झल्लाहट से वह कोई राह नहीं ढूँढ़ पाता था तो यही करता था। उसके बाल छोटे थे, कनपटियाँ सपाट।

उसे तकलीफ बढ़ रही थी। बुखार चढ़ रहा था। पलकें कड़ुवा रही थीं। उसने कराहना चाहा पर उस औरत का ख्याल करके चुप हो गया। बगल वाला मरीज किसी से कह रहा था—"अरे अब खात्मा ही है......कल तक या आज ही......फिर देखें पंखे वाली जगह किसे मिलती है।"

"मुझे, मुझे।" उसने कहना चाहा पर जबान सूख कर तालू से चिपक गई।

उसके आगे धुँधली छायाएँ नाचने लगी। स्ट्रेचर पर वह औरत उतरी जा रही है। डाक्टर आता है। इशारा करता है—सब समाप्त। हरे बाँस, कलावा, सुतलियाँ, सफेद कोरी चादर......फिर एक बड़ा सा सफेद पंखा दैत्यों के विशाल पंखों की तरह नाचने लगता है।

बच्चे चले गए थे। औरत हाँफ रही थी। बेन्सन आई, झल्लाती हुई चली गई। मरीज नम्बर सात ही नहीं वरन् सभी उसके जीते रहने पर नाराज थे—नर्सें, स्टाफ, डाक्टर, कमरे के दूसरे मरीज।

शाम और भी बेचैनी में कटी। बुखार तेज़ था। उसे लगता था औरत के चारों ओर एक लाल पर्त जम गई है। उसने छटपटाते

हुए सोचा यह सब कितना निरर्थक है। यह जीते जाना, यह नौकर के हाथों की कड़वी महक, यह हाथ का प्लास्टर।

रात को उमस बेहद बढ़ गई थी। वह संज्ञाहीन था। लगभग मूर्छित-सा। वह जिन्दगी से तटस्थ हो चुका था। जीवन और मौत एक सी है। उसका दर्द और औरत का दर्द एक है। किसी न किसी गहराई में उतर कर तमाम जिन्दगी एक है। अगर वह मर जाय तो औरत को और औरत मर जाय तो उसको अपने दर्द से छुटकारा मिल जाय।

फिर उसे लगा यह भी ग़लत है। जिन्दगी और गहरी परतों में उतर कर न एक है न अनेक। वह सबों से अलग एक तीसरी ही सत्ता है जिसे हम जीते नहीं जो हमारे आधार से जीती है। हम उससे निरन्तर संघर्ष करते हैं, लड़ते हैं, हारते हैं और खामोश हो जाते हैं। फिर वह खामोश हो गया। निश्चेष्ट।

रात ढलते-ढलते वह और भी बेखबर होने लगा। उसे लगा सब झूठ है। सब सपने का अभिनय है। वह औरत अगर मरेगी भी तो एक अभिनय होगा। जब इसका दम टूटेगा तो न नर्सें हिलेंगी, न डाक्टर आएगा, न कोई मरीज कुछ कहेगा......नीचे यह मरी आँखों से देखती रहेगी। ऊपर पंखा चलेगा।

कमरा खामोश था। सभी चुप थे। दो विराट काले पंख सब पर छाये थे।

रात को ढाई बजे एकाएक चिरप्रतीक्षित अभिनय का क्षण आया। औरत एक बार छटपटाई, कराही फिर उसका हाथ नीचे झूल गया।

क्षण भर स्तब्धता रही, फिर जैसे किसी ने हथौड़ा मार कर कमरे पर छाये हुए काले जादू को तोड़ दिया।

नर्सें चलने लगीं, मरीजों ने करवट बदली, दो-एक ने पानी माँगा। स्ट्रेचर आया, भंगी आया, डाक्टर आया, कमरे में ज़िन्दगी दौड़ गई।

मरीज नम्बर सात को कुछ भूख मालूम दी। तीन दिन बाद। बेन्सन से माँग कर सेब का एक टुकड़ा खाया। बेन्सन खुश थी जैसे महीनों की बारिश के बाद बादल छटे हों। सेब खिलाते वक्त हँसी।

मरीज नम्बर सात का मन हल्का था। कड़ुवाहट घुल रही थी। चित्त शांत हो गया था।

सुबह छः बजे पलँग हटा कर पंखे के नीचे कर दी गई। वह धीरे-धीरे गुनगुना रहा था। मन हल्का होने पर वह गाता था, उसकी आदत थी। पंखा चल रहा था, हवा झरने के पानी की तरह झर रही थी। उसे हवा की कल-कल ध्वनि तक सुनाई पड़ रही थी। बाहर कम्पाउंड में मौलसिरी का पेड़ था। उस पर गौरैया चहक रही थी। ऐंबुलेंस पर औरत का शव रक्खा जा रहा था। सर्टिफिकेट मिलने में कुछ देर हो गई थी।

उसको सब कुछ पूजा के क्षणों की तरह पवित्र लग रहा था। उसने ईश्वर को धन्यवाद दिया जिसने मौत बनाई।

बेन्सन अपने क्वार्टर से चाय बनाकर लाई थी उसके लिए। साथ में कुछ नमकीन बिस्कुट। उसने ईश्वर को धन्यवाद दिया जिसने नर्सें बनाई।

धुआँ

धुएँ पर अचानक मेरी नजर पड़ी। लगता था जैसे किसी प्रसुप्त दानवाकार ज्वालामुखी ने अपना मुँह खोल दिया है और कुछ-कुछ जमा हुआ गीला-गीला, काला कड़ुवा धुआँ, जाने कब का क़ैद धुआँ, बेताबी से निकल पड़ा है।

धीरे-धीरे धुआँ मुहल्ले के आकाश में दक्खिन ओर से घुसा और छतों, गलियों, चौराहों और पार्कों पर छा गया। जेठ की शाम का तपता सूरज भी धूमिल पड़ गया और छतों पर, गलियों में, दीवारों पर धुएँ की भद्दी भूरी छाँहें उड़ने लगीं। कहीं आग लगी थी। बहुत जोर की आग।

मैं दौड़ कर छत पर गया। मेज खींच लाया। उस पर चढ़ गया। आस-पास की छतों पर लोग बन्दरों की तरह चढ़े हुए, ध्यान लगाये, धुएँ को देख रहे थे। कुछ का अनुमान था, मुहल्ले में ही आग लगी है। कुछ का अनुमान था लोहट्टी में, कुछ का ख्याल था चौक में। नीचे गलियों में खड़े लोग छत वालों से सवाल पूछ रहे थे। बच्चे भाग-दौड़ कर रहे थे। औरतें रसोई छोड़कर पसीना पोंछते हुए छतों पर आ गई थीं। काफी हलचल थी।

आग और धुएँ में बच्चों के लिए एक अनोखा आकर्षण होता है। उन्हें आग और धुएं से बेहद उल्लास मिलता है। अपनी उम्र और ज्ञान-विज्ञान अनुभव वगैरह के बावजूद हम सभी कहीं न कहीं बच्चे होते हैं। आप भी हैं। मैं भी हूँ।

मैं नीचे आया। घर के कुछ बच्चे आपस में सलाह कर रहे थे, चल कर खुद आग देखने के लिए। मैंने उन्हें डाँटा—"खबरदार घर के बाहर गये तो!" और खुद चल पड़ा।

सड़क पर काफी लोग आ-जा रहे थे। कोई त्योहार था। शायद शुबेरात और बैशाखी पूर्णिमा साथ पड़ी थी। गर्मी भयानक थी। हवा रुक गई थी। धुआँ भी पर्त पर पर्त जमता जा रहा था। सड़कों पर लोगों का ध्यान आग की तरफ अपेक्षाकृत कम था। बेनीप्रसाद बारबर—जिन्हें हेयर-कटिंग-सैलून खुलने के पहले लोग "बेनिया बे! ओ नउआ!" सम्बोधित किया करते थे—वह बैठे सामने की कोयले वाली के अप्रतिम रूप की तुलना गुलबकावली से कर रहे थे और कोयले वाली जिसने गर्मी के मारे पल्ला खोल दिया था, पंखे की डण्डी से पीठ खुजाती हुई, आँख नचाती हुई कह रही थी—"तोरे मुँह में दियासलाई लगाय देी कौनों दिन हाँ!" सामने तरबूजे की फाँकें बेचने वाला खटिक, पास में बर्फ लेकर जाने वाले एक छोटे से धोबी के बच्चे को छेड़ता हुआ कह रहा था—"अबे बरफ लैके आग बुझउबे का! गदहा पै लाद के मसक लेत जा!" धोबी के बच्चे ने गालियों की शानदार परम्परा अपने माता-पिता से पाई थी और मुक्त कण्ठ से खटिक का अभिनन्दन करता हुआ कह रहा था—"अबही आगवाला अंजिन गवा है। घनन-घन! घनन-घन!" खटिक द्वारा अधिक छेड़े जाने पर वह बता रहा था कि इंजिन से खटिक के कुटुम्ब की महिलाओं के कितने निकट सम्बन्ध हैं।

धुआँ और बढ़ गया था। पत्ता भी नहीं खड़क रहा था। हवा गुमसुम थी। सड़कों पर भीड़ बढ़ रही थी। एक क्लर्क, जिसे शायद छुट्टी के दिन भी बड़े साहब ने दफ्तर बुलाया था, और जिसे अब

घर पहुँचने की जल्दी थी—मेरे पीछे देर से घण्टी बजा रहा था। अन्त में झुँझला कर मुझे पैर से ढकेलते हुए आगे निकल गया और बोला—"साले हिन्दुस्तानी! जरा सी आग क्या लगी कि मेला लग गया। जैसे रामदल निकल रहा हो। ये नहीं कि घर जाकर अपना काम देखें! पता नहीं आग को खायँगे कि पियेंगे!"

मालूम हुआ कि आग सराय में लगी है। सराय अकबर के जमाने की थी। ग़दर में जनरल नील के सिपाहियों ने उसे जला दिया था। अगल-बगल के मकान अब भी धुएँ से काले थे। भटयारिनें अब भी रहती थीं। छोटे-छोटे सहन और कोठरियाँ थीं। टाट के पर्दे थे। सस्ती बाँस की खाटें थीं। दिये थे। उनमें रहने वाली औरतों का दाम बारह आने, छः आने और आठ आने था। मैं अक्सर शाम को भारतीय स्थल सेना के बहादुर जवानों को पैसे गिन कर गली में जाते हुए और सीटी बजाते, डगमग चाल से लौटते और अपने अनुभवों का सव्याख्या विवरण देते हुए लौटते देखा था।

जाऊँ कि न जाऊँ? कभी उधर जाने की हिम्मत नहीं पड़ी थी। पर आज तो जनसमूह उधर जा रहा था। हिम्मत बँधी। जनसमूह पाप भी करे तो वह पाप नहीं रह जाता। पाप की स्थिति व्यक्ति मात्र में है।

मैं एक 'शार्टकट' जानता था। हम्माम वाली गली में से होकर। गली में मुड़ा। गली सूनी थी। खुलकर साँस ली। बाईं ओर की छोटी गली से मिरज़ा अपने छोटे बच्चे को थामे चले आ रहे थे। पूछ रहे थे—"अजी जाओ! तुमने क्या आग देखी होगी। हम तो गली तक में हो आये, कुछ देखने को नहीं मिला।' बच्चा चैतन्य था। कल्पना-

शील था। सिर चढ़ाकर रुक कर, अकड़ कर बोला—"अरे जाओ! हमने खुद देखा। मोटर पर घण्टा बोल रहा था।" मिर्जा पब्लिक-सर्विस-कमीशन के दफ्तर में क्लर्क थे पर बच्चों की पढ़ाई का बहुत ध्यान रखते थे। बोले—"अच्छा फायर के हिज्जे बताओ!"

यफ—आई—आर—ई और ई कहते ही बच्चा खुशी से उनके पाँवों में लिपट गया और उन्होंने गोद में उठा लिया। और तब उनकी नजर मुझ पर पड़ी। "कहो! आग देखने जा रहे हो!" "नहीं"—मैंने झेंप कर कहा—"जरा काम से जा रहा हूँ।" —उतनी जल्दी कोई दूसरा बहाना नहीं सूझा, और आगे बढ़ गया। बच्चे ने फिर दोहराया—यफ, आई, आर, ई। मुझे ख्याल आया मैंने फ्रेन्च राज्यक्रान्ति सम्बन्धी कोई चित्र देखा था जिसमें पर्दे पर धुआँ था और बार-बार कुछ अक्षर लिख जाते थे—"फायर!" "ब्लड!" "एनार्की!" और अन्त में काँपते हुए टेढ़े-मेढ़े हड्डी के आकार के अक्षर आते थे—"हंगर" (भूख)"।

बच्चों का एक गिरोह शोर करता, हंगामा मचाता चला आ रहा था। गली पतली थी, इसलिये उनकी कतार लम्बी थी और सभी एक दूसरे को ढकेल रहे थे। उन्होंने आग देखी थी। बेहद प्रसन्न थे सब और उनमें से दो-एक तो प्रसन्न होकर धुआँधार गालियाँ बक रहे थे।

आगे गली ठसाठस भरी थी। सिर्फ एक छोटा सा चबूतरा था जिस पर लोग चढ़े हुए देख रहे थे। चलना मुश्किल था। चबूतरे के सामने लम्बी गली थी जिसके दूसरे छोर पर दो-तीन मकान थे जिनमें आग लगी थी। मेरे एक रसिक दोस्त चबूतरे पर खड़े थे। उनसे मेरा परिचय चार साल पहले हुआ था जब वे पहली बार प्रेम में मुब्तिला थे, और सिनेमा के तर्ज़ की कविताएँ लिखते थे।

उसके बाद उसी प्रकार की दो घटनाएँ और हुईं। तीनों में उनका कहना है कि उन्हें चरम सफलता मिली थी। और मेरे पूछने पर कि चरम सफलता से क्या तात्पर्य ? वे बोले थे—"अरे हमसे बनो मत ! प्रेम की क्या दो-चार चरम सफलताएँ होती हैं।" मुझे पास बुला कर बोले—"हाय ! हाय ! अभी एक गई है। मुश्किल से १८ बरस की होगी। चम्पई रंग, झकाझक। दायाँ हाथ बिल्कुल झुलस गया था। अब तो सब बूढ़ी रह गई हैं !"

इतने में एक स्ट्रेचर पर एक औरत को लादे हुए चार सिपाही आये। वह चीख रही थी। उसके बाल, भौंहें, बरौनियाँ तक जल गई थीं। कपड़े जल गये थे। अन्दर केवल झुलसा शरीर मात्र था। वह चीख कर तड़पी तो कम्बल हट गया। भीड़ में से कुछ सिसकारियाँ, कुछ चटखारें सुनाई पड़ीं। छः-सात कदम पीछे उसकी माँ, या शायद बूढ़ी पेशेवर पड़ोसिन रोती हुई आ रही थी। सलीस उर्दू में लोगों से दरख़ास्त कर रही थी कि सिपाही उसे अस्पताल ले जा रहे हैं। अस्पताल में सुई भोंकी जाती है। अस्पताल में आँख फोड़ी जाती है। अस्पताल में हड्डी निकाली जाती है जिससे सरकार मिल में चीनी साफ करती है।

एक दूसरी औरत एक हाथ में एक देगची, जिसकी कलई उड़ गई थी ताँबा रह गया था, लेकर आ रही थी। बगल में दो-तीन अधजली दरियाँ और कपड़े थे। भाग-दौड़ में कुर्ते की पीठ पर एक खोंता लग गया था। कपड़ा नीचे झूल गया था। अन्हौरियाँ लदी पीठ झलक रही थी।

मेरे बगल में एक आदमी खड़ा था। गाड़ी पर जाड़े में मूँगफली, गर्मी में शर्बत बेंचता था। उसने कान से बीड़ी निकाल कर सुलगाई और एक जुमला कहा। औरत ने चुपचाप सर घुमा कर देखा। शर्बत वाला पीले दाँत निकालकर हँस दिया। औरत ने देगची और

कपड़े पटक, हाथ नचा कर गालियाँ दी। भीड़ में से बहुत से लोग हँस पड़े। दो-एक ने उधर चवन्नियाँ फेंकी। औरत ने दुगुनी गालियाँ दीं और चवन्नियाँ बटोर लीं। एक गणितज्ञ भीड़ में से बोले—"अरे इतनी तो ३० रातों में न मिली होंगी!" औरत दबंग थी। मुड़कर बोली—"एक रुपये से कम में तो बात नहीं करती!" उसने कपड़े उठाये और सर झटक कर चल दी।

दूसरी औरत के गोद में बच्चा था, बाल बिखरे थे, ओढ़नी नदारद थी, पाँव में छाले थे। लँगड़ा रही थी। नाली के किनारे बैठी। नाली धोने के पाइप से एक चुल्लू पानी लेकर बच्चे को पिलाने लगी। "कै बाप हैं इसके?" शर्बत वाले ने चिल्ला कर पूछा। और चारों ओर भीड़ में इस निगाह से देखा कि लोग उसके मज़ाक की दाद दें। कुछ लोग मुरव्वत में आकर हँस दिये। सहसा हंगामा मचा। पुलिस वाले औरतों के एक गिरोह को डंडों से हाँकते हुए चले आ रहे। उनमें से किसी की आरसी छूट गई थी, किसी का बर्तन, किसी की दरी, किसी का पिटारा, किसी की गठरी। भाग-दौड़ में कई गिर पड़ी, कुछ उनसे टकरा कर गिरी, बाकी उनको कुचलती हुई निकल गईं। वे कराह रही थी। बाकी एक स्वर में गालियां दे रही थी। वे फिर रुकी। जो गिर पड़ी थी वे चीख़-चीख़ कर रो पड़ी।

भीड़ में से ठहाके लगे।

उनमें से दो निकल आईं। वे आपस में बुरी तरह लड़ रही थी। एक के हाथ में एक पिटारा था, जो फायर बिग्रेड के पानी से भीग गया था। दूसरी उसे छीनना चाहती थी। दोनों में छीना-झपटी होती रही। कपड़े फट गये। बाल बिखर गये। नाखूनों की खरोचों से खून छलछला आया। अन्त में दूसरी हार कर जमीन पर बैठ गयी और गाली देने लगी। पिटारा उस औरत का था जो अस्पताल

*

चली गई थी। उसके बाद उस पर किसका हक था, इस पर युद्ध हो रहा था।

पहली औरत चुपचाप पिटारी छाती से दबाये बैठी थी। सहसा दूसरी ने नाली के पत्थर पर सर पटकना शुरू किया। उसके सर से लाल खून की एक धार माथे से नाक पर होती हुई होंठ पर टपकने लगी। पहली दौड़ी, उसने पिटारा खोला और बोली—"ले! ले!—इसमें है क्या? सूखी पावरोटी है।" पावरोटी पानी में भीग कर गल गई थी। दूसरी ने पल्ले के छोर से होंठ का खून पोंछा और ननींदी सी रोटी खाने लगी। पहली मुँह फेर कर बैठ गई—"तूहूँ खा ले ले!" दूसरी ने पहली के मुह में रोटी ठूँस दी! दोनों चुपचाप खाने लगीं।

भीड़ छँटने लगी थी। लोग जोर-जोर से बातें करते हुए लौट रहे थे। दो किस्म के लोग थे। एक जिन्हें इस बात की बहुत निराशा थी कि "कुछ मजा नहीं आया! क्या आग लगी? कोई आग में आग है।" कुछ लोग ऐसे थे जो नवागन्तुकों को लौटा रहे थे—"जाओ भाई अब क्या रक्खा है, यहाँ? क्यों भीड़ लगा रहे हो? जो होना था सो हो गया?" उनके स्वर से यह मालूम होता था कि वे कह रहे हों—"मूर्खो! अब सोकर उठे हो। जो मजा आग का देखना था वह देख लिया हम लोगों ने। अब यहाँ क्या है?" कुछ लोग आने-जाने वालों से आग का पूरा वर्णन उल्लास भरे शब्दों में कर रहे थे। वे परोपकारी थे। जो रस, जो आनन्द मिला था उसे मुक्तहस्त बाँट रहे थे। कुछ सवालों पर चुप रह जाते थे या टाल जाते थे। उनकी भावना थी—"हुँ! भीड़ में धक्के खाकर तो हम गये; सारा काम छोड़कर तो हम गये आग देखने; और ये घर बैठे सारा हाल जान लें!"

मेरे वापस घर पहुँचने पर लोग घिर आये। बड़े आग्रह से, बड़ी उत्सुकता से, बड़े उल्लास से विस्तृत हाल पूछने लगे। सभी के मन में एक अजब सा उल्लास था जैसे कोई विशेष आनन्द का पर्व आया हो, बरसों के बाद !

मैंने चारों ओर देखा। वही लोग थे जिनसे मैं रोज बोलता-बतलाता हूँ ! मेरे पड़ोसी, मेरे मुल्क के लोग ! मेरे अपने लोग। हिंस्र जानवरों का सा उल्लास ! आँखों की चमक ! निर्ममता और क्रूरता ! यह क्या हो गया है इन्हें ? किसने इन्हें ऐसा बना दिया है ? गुफाओं में रहने वाले आदिम पशु-मानव ने जीवन-विकास के लिए अग्नि का आविष्कार किया था। करोड़ों साल की सभ्यता के बाद आदमी आज उसी आग में कितना बर्बर उल्लास ढूँढ़ रहा है। क्या करोड़ों साल के विकास की सारी दिशा ही मूलतः गलत रही है ?

मैंने महसूस किया कि मैं एक ऐसी विशाल बस्ती में खड़ा हूँ जहाँ लोग सहसा पागल हो गये हैं, हिंसक पशुओं की तरह चीत्कार करते हुए आग लगाते हुए घूम रहे हैं, और धीरे-धीरे मेरे गले में, आँखों में, दिमाग़ में, नसों में, आत्मा में भयानक काला कड़ुआ धुआँ भर गया।

आग की वजह तीसरे दिन मालूम हुई।

सराय की उन औरतों में एक थी जिसकी आँखों में माड़ा पड़ गया था। कम दीखता था। उसकी पड़ोसिनें उसके खाने में कंकड़ियाँ डाल आती थी, उसके बिस्तर पर पानी फेंक आती थीं, वह गालियाँ देती थी। उसकी गालियों में बहुत स्वाद रहता था।

उन्हीं गालियों का उपभोग करने के लिए मण्डी के एक पुर-

मज़ाक़ बनिये ने उसे अठन्नी दी और अन्दर ले जाकर उसकी पोशाक में जलती छछूँदर छोड़ दी।

वह पहले तो समझी नहीं, फिर चीखने लगी, इधर-उधर भागी, गाय की तरह डकराने लगी। एक खम्भे से टकरा कर बेहोश होकर गिर गई। पड़ोसिनें ताली पीट-पीट कर हँसती रही।

अन्दर ही अन्दर आग फैलती रही!

बाद में मलवा हटाने पर उसकी लाश मिली। जलकर कोयला हो गई थी।

युवराज

अस्पताल के रजिस्टर में इस तरह दर्ज़ था—

तारीख २६ अगस्त; सुबह ८ बजकर ३५ मिनट; दाखिल हुआ—कृष्णवल्लभसिंह, उम्र ४२ साल, मर्ज—नामालूम (अभी जाँच होगी), ठिकाना—×, पेशा-कुँवर !

पेशे के खाने में कुँवर इसलिये लिखा गया था कि मरीज का कहना था कि वह रियासत नाहरगढ़ का युवराज था। जब वह २० बरस का था तभी सरदार और सौतेली राजमाता ने साजिश करके उसके भाई को गद्दी दिला दी थी। उसने अपील की। जब किसी ने कोई ध्यान नहीं दिया तो वह गांधी जी से मिला। जिस दिन उनसे मिला, उस दिन उनके मौन का दिन था, अतः उन्होंने कागज़ पर लिख दिया—ठीक इबारत याद नहीं—मतलब यह था कि राजगद्दी के पीछे मत दौड़ो; देश को तुम्हारे जैसे युवको की ज़रूरत है। आत्मनिग्रह करो।

उस दिन से उसने आत्मनिग्रह का व्रत ले लिया। राज की लालसा छोड़ कर देश की सेवा में लग गया।

इस कथा के प्रमाणस्वरूप वह अपनी कई जेबों में हाथ डालने के बाद मैली सदरी की अन्दरूनी जेब में तम्बाकू की छोटी डिबिया में तह करके रक्खा हुआ एक कागज़ दिखाता था जो बेहद मैला और तेल में डूबा था। उस पर क्या लिखा था, यह डाक्टर से लेकर दरबान तक नहीं पढ़ पाये।

मर्ज़ की ठीक-ठीक जाँच न हो पाने से उसे बरामदे में एक खाट दी गई थी, जहाँ पंखा नहीं था, मच्छड़ भी बहुत थे, कोने पर नाबदान था, वहाँ नर्सें आकर पुरानी दवाइयाँ फेंका करती थीं, भंगी कमरे में ही झाड़ू मार कर लौट जाता था, और शाम के वक्त धूप भी ऐसी तिरछी होकर पड़ती थी कि टाट का पर्दा गिरा दो तो घुटन से पसीना छूटने लगे और पर्दा उठा दो तो धूप से। उसने कई बार डाक्टर से कहा, पर डाक्टर ने परवाह नही की।

"कोई बात नहीं!" उसने कराहते हुए कहा—"लोग मद में अन्धे हैं। अहंकार में पागल हैं। मैं अखबारों में इसके विरुद्ध पत्र लिखवाऊँगा। तुम लोगों ने क्या समझा है?" और उसने किसी मरीज़ से माँग कर एक मैला पोस्टकार्ड हासिल किया और उसे एक स्थानीय सम्वाददाता के नाम भेज दिया—जिससे उसकी मुलाक़ात एक बार सेवा-ग्राम में हुई थी जहाँ वह कैमरा और बैग लिये मुर्गे की तरह पंख फुलाये घूम रहा था। उसने महान त्यागी युवराज का एक चित्र भी लिया था और उस पर लिखने का वायदा किया था। युवराज ने इस प्रकार की व्यक्ति-पूजा को गर्हित बताते हुए उससे प्रार्थना की थी कि वह उसे व्यर्थ की प्रसिद्धि न दे और अन्त में उसका पता भी नोट कर लिया था। बाद में उसे कई ख़त भी लिखे थे कि जिस अख़बार में उसका चित्र छपे वह उसे भिजवा दिया जाय, मगर न अख़बार आया न ख़त का जवाब!

तीसरे दिन वह सम्वाददाता आया। मरीज़ यानी युवराज ने उसे नहीं पहचाना, न उसने युवराज को, किन्तु दोनों ने यह नहीं ज़ाहिर होने दिया। बातों का सिलसिला वहीं शुरू हुआ जहाँ से ७ साल पहले टूटा था। "तो आपने अख़बार नहीं भेजा!" कह कर वह ऐसे हँसा जैसे अख़बार पाने का विशेष इच्छुक नहीं था, वह तो केवल वार्तालाप करने और मज़ाक़ करने का एक बहाना ढूँढ़ रहा

था। सम्वाददाता ने बरामदे की बदबू से ऊबते हुए और धूप से बचने के लिये भौंहों पर अखबार रखते हुए कहा—"अच्छा, अखबार आपके पास नहीं पहुँचा। उस लेख की तो बहुत चर्चा रही। अब तो वह अंक प्राप्य नहीं होगा!" उसने दूसरी ओर देखते हुए कहा क्योंकि वास्तव में उसने वह चित्र छपाया ही नहीं था।

ख़ैर, उसके बाद युवराज ने उसे बताया कि उसने किस-किस कान्फरेन्स में भाग लिया, उससे अमुक प्रान्त के मन्त्री ने क्या कहा, अमुक सरदार के गुट ने उसे किस तरह बदनाम करने की कोशिश की, और वह भ्रष्टाचार के कितना विरुद्ध है, वह चाहता तो कोठियाँ खड़ी करवा लेता, लेकिन उसे आत्मनिग्रह पर विश्वास है वगैरह-वगैरह! सम्वाददाता बार-बार बदबू से ऊब कर बेचैन हो रहा था। फिर युवराज ने बताया कि यह डाक्टर है जिसने उसे बरामदे में डाल रक्खा है क्योंकि उसके पास घूस देने को रुपया नहीं है और वह चाहता है कि इसका पूरा हाल अखबार में निकले—(यह शब्दावली तो लेखक की है) युवराज ने कहा था, "अस्पतालों का नंगा ख़ाका आम जनता के सामने रक्खा जाना चाहिये। यह जन-हित का प्रश्न है। सम्वाददाताओं का कर्तव्य है कि नगर की संस्थाओं की बदइन्तज़ामी का पर्दा फ़ाश करें।"

सम्वाददाता इस बात पर राज़ी हो गया क्योंकि उसके भतीजे को किसी सरकारी नौकरी के लिये झूठा मेडिकल सर्टीफ़िकेट देना था और डाक्टर ने उसके लिये इतनी रक़म माँगी थी कि उसके इमकान के बाहर थी।

तय यह हुआ कि दूसरे दिन शाम को वे लोग मिल कर ख़बर की इबारत लिखेंगे और इसी बीच में सम्वाददाता कांग्रेस के सेक्रेटरी और धारा सभा के स्थानीय सदस्यों को फ़ोन भी कर लेगा।

जब सम्वाददाता चलने लगा तो युवराज ने उसके सिगरेट केस

से दो-तीन सिगरेटें निकाल कर तकिये के नीचे छिपा ली और अपने पीले-पीले मैले दाँत निकाल कर हँसा, अपने बढ़े हुए नाखून वाले हाथ जोड़े, गन्दे मैले बालों को झटक कर गर्व से नर्सों की ओर देखा और लेट गया। थोड़ी सी आँख लगी तो उसने देखा कि नर्से चर्खा कात रही हैं, मेट्रन बीमार है और वह उसको गीली मिट्टी की पट्टी चढ़ा रहा है...कहाँ ? सहसा उसके कमर के पास के अंगों में भयानक चिलकन हुई और वह चीख़ कर उठ बैठा।

रात भर वह बेचैन रहा। बेहद परेशानी थी। गला बुरी तरह सूख रहा था लेकिन पानी पीने की हिम्मत नहीं थी। पानी पीते ही इतनी दर्दनाक चिलकन होती थी जैसे जलते लोहे की सलाख से चिपक कर गोश्त उचट आता हो।

सुबह डाक्टर आया। उसने स्ट्रेचर मँगवाया। दूसरे कमरे में बुलवा कर जाँच की। कहा—"आपको यह वार्ड छोड़ना पड़ेगा।"

"क्यों ?" दर्द के बावजूद उसने तन कर कहा—"आप मुझे बहुत परेशान करेंगे तो...तो..." मगर वह आगे नहीं बोल सका क्योंकि उसकी जबान तालू से चिपक गयी। किसी तरह थूक निगल कर बोला—"आप मर्ज़ क्यों नहीं बताते ?"

डाक्टर एक क्षण हिचका—फिर ज्योंही उसने मर्ज़ बताया युवराज का चेहरा पीला पड़ गया। मेल नर्स ने मुस्करा कर सिस्टर की ओर देखा। सिस्टर ने झेंप कर सर झुका लिया। दूसरे मेल नर्स ने साबुन से रगड़-रगड़ कर हाथ धोते हुए कहा—"नेता लोग हैं भाई, नेता। इन्हें सब शोभा देता है।"

मरीज़ ने दूसरे वार्ड में जाने से इन्कार कर दिया। अगर वहाँ कोई पढ़ालिखा समझदार आदमी होता तो वह समझाता कि वह आत्मनिग्रह, संयम और हृदय की शुद्धता पर दृढ़ विश्वास करता है

और डाक्टर उसे बदनाम करने के लिये यह मर्ज़ बता रहा है—पर वहाँ कौन उसकी बात समझता ?

इसीलिये उसने अपना सामान लिया और दर्द से कराहते, लँगड़ाते चल दिया। थोड़ी दूर जाकर फिर लौटा, तकिये के नीचे चुरा कर रक्खी तीन सिगरेटें निकाली। उन्हें सदरी की अन्दरूनी जेब में रख लिया, जहाँ डिबिया में वह कागज़ भी रक्खा था जिस पर उसे गान्धी जी ने आत्मनिग्रह, त्याग और देशसेवा करने का लिखित आदेश दिया था—फिर धीरे-धीरे लँगड़ाते हुए फाटक के बाहर निकल गया।

अगला अवतार

"अगली क्रान्ति ! मैं कहता हूँ मैं प्रतिक्रियावादी नहीं हूँ। मैं भी प्रगति में विश्वास करता हूँ, लेकिन मेरा दृढ़ विश्वास है कि भारत में जो क्रान्ति होगी वह अनोखी होगी। वह वर्ग की क्रान्ति नही होगी, न निम्न-वर्ग की, न मध्य-वर्ग की। वह क्रान्ति चेतना में होगी। मानव की आत्मा बदलेगी। हाँ, खैर तुम इसको मजाक समझो !"

"नही, नही, मैं इसको मजाक क्यों समझूँगा ?" मैंने गम्भीर होकर कहा—"सम्भव है तुम ही सच कह रहे हो। भविष्य में क्या होगा, कौन जानता है।"

"यह", मेरे साथी ने जोश में मेज़ पर हाथ पटक कर कहा—"अब कहा तुमने। भविष्य में क्या होगा यह कौन कह सकता है। न मार्क्स, न अरविन्द। दुनिया अपनी गति से चलती रहती है, बड़े-बड़े विचारक दर्शन में उलझे रहते हैं कि पता नहीं कहाँ से कौन शक्ति आकर सारी व्यवस्था में उलट-पलट कर देती है। उसी को अवतार कहते हैं। असल में अभी परसों गुरुजी से भेंट हुई। वह जो हैं न फतेहगंज में, पूरन स्वामी, बड़े सिद्ध योगी हैं। और अध्ययन की तो पूछो मत। पुराने ताड़पत्रों से लेकर फ्रेंच और जर्मन के साइकिक रिसर्च (प्रेत विद्या) तक के ग्रन्थ पढ़ डाले हैं। और माडर्न (आधुनिक) तो इतने हैं कि पूछो मत !"

"क्यों नहीं ? क्यों नहीं ? चाय तो पीते चलो; ठण्डी हो जायगी।"

"हाँ, हाँ, पी रहा हूँ। गुरु जी से भी मैंने यही सवाल पूछा था कि मान लीजिये व्यक्ति को पूर्णता मिल गई तो क्या हुआ। व्यक्ति का अस्तित्व समाज के बाहर तो है नहीं। समाज तो वैसे का वैसा रहा। तो वे बोले—इस बार योगी लोग इसी खोज में है कि कोई ऐसा मार्ग ढूँढ़ निकालें कि संसार की समस्त आत्माओं को एक साथ निर्वाण मिल जाय। एक साधक मृत्यु को जीते तो केवल अपनी मृत्यु नहीं सारी सृष्टि की मृत्यु को जीत ले, सारी सृष्टि के दुख को जीत ले। और कहते हैं उन लोगों को इस दिशा में काफी संकेत मिल भी गये हैं। इस बार तो उनका प्रयास बड़े संगठित ढंग से चल रहा है। हर प्रान्त में योगी साधना में तल्लीन हैं। कहीं किसी शक्ति का आभास मिले तो—और कौन जाने वह शक्ति कहीं अवतरित ही हो गई हो!"

मैं हँसी नहीं रोक पाया, खिलखिला कर हँस पड़ा, लेकिन यक़ीन मानिये अपने दोस्त की बातों पर नहीं। उसे नाराज़ करने का बिल्कुल दुस्साहस मुझमें नहीं था। हँसी मुझे दूसरी बात से आ रही थी। सिविललाइन्स के उस सजे-सजाये सुन्दर रेस्तराँ में एक अजब सा आदमी घुस आया था और इधर-उधर देखता हुआ अपने लिए एक कुर्सी ढूँढ़ रहा था। मकरसंक्रान्ति आ गई थी और माघ में तो प्रयागराज में ऐसी-ऐसी मूर्तियाँ देखने को मिलती हैं कि 'न भूतो न भविष्यति।' लेकिन इसने सारे रेकार्ड तोड़ दिये थे। मोटे खद्दर का लम्बा पीला चोग़ा, सर पर पीली मुरेड़दार पगड़ी, पीला पाज़ामा जो नीचे जाँघिये और ऊँचे पतलून के बीच की चीज़ थी, पैरों में मूँज की चप्पल, कमर में चोग़े के ऊपर लिपटा हुआ मृग-चर्म और कन्धे में लटकता हुआ, कमण्डल के बजाय

चमकदार नया अमरीकन थर्मस, चोग़े में लगा हुआ सस्ता पाँच-छः रुपये का फाउन्टेनपेन, आँखों पर पन्द्रह आने का काला ठण्ढा चश्मा और माथे पर पीला आर्यसमाजी ढंग का चन्दन। तमाम लोगों का ध्यान उधर खिंच गया था। कोई हँसी रोक रहा था, कोई धृष्टता से हँस रहा था, दो-एक दुस्साहसियों ने टिप्पणी भी कस दी थी लेकिन वह महापुरुष अटल धैर्य से अपने स्थान पर खड़ा था। और हाँ, यह तो मैंने देखा ही न था। कोने में उन्होंने एक लम्बा पीतल का त्रिशूल और एक बहुत बड़ा झण्डा टिका दिया था जिस पर जाने क्या-क्या लिखा था। मैंने अपने साथी की ओर देखा। वह भी बड़े कुतूहल से उधर देख रहा था।

सहसा मुझे कुछ सूझा और मैंने ब्वाय को बुलाकर कहा—"यहाँ एक कुर्सी खाली है। बाबाजी को यहीं भेज दो।" सारे रेस्तोराँ की निगाहें मेरी मेज़ की ओर घूम गईं।

वे आये और कुर्सी पर बैठने के पहले भाषण देने की मुद्रा में पूरे रेस्तराँ की ओर मुख़ातिब होकर बोले—"आ गया है—शमय आ गया है। जो हँसता है शो रोवेगा और जो चुप है शो बोलेगा; और जो बोलेगा शो उसके हाथ में तिरशूल होगा, शो उसके हाथ में केतु फहरायेगा। शामवेद में भगवान ने कहा है कि कलजुग में देवा वहन्ति केतवः शो जो सुनता है शो सुनता है, जो नहीं सुनता है शो पछतायेगा!"

सारे चायघर में सन्नाटा छा गया। वे बैठ गये। मेरे साथी ने बड़े आदर से प्रणाम किया। "चाय पियेंगे?" मैंने पूछा और उनकी स्वीकृति पाकर बैरे को दो काफ़ी और एक चाय लाने का आर्डर दिया।

"कहाँ से आना हुआ?" मेरे साथी ने पूछा।

"कहाँ जा रहे हैं महाप्रभु ?" मैंने पूछा।

"विश्व भ्रमण को ! हम लोग शाधक हैं। संदेश देते हैं। जो सोया है उसे जगाते हैं। संसार माया के वशीभूत होकर भोग-विलास करता है, पाप शंचय करता है, सन्धि विग्रह करता है, युद्ध करता है। पर संसार को यह नही मालूम कि भगवान का औतार हो गया।"

"हो गया !" मैंने ठण्ढी साँस लेकर कहा—"चलो बड़ी प्रतीक्षा थी। कहाँ हुआ महाराज ?"

मेरे साथी ने कड़ी निगाह से मेरी ओर देखा और बड़े विनय से पूछा—"किस स्थान पर अवतरण हुआ स्वामी जी ?"

"फैजाबाद से ईशान कोण में, १२ योजन दूर तलवरिया ग्राम में केशव धृत कल्कि शरीर, जय जगदीश हरे !"

"जय जगदीश हरे ! कब हुआ !"

"कब ? कहाँ ?—यह सब माया के वशीभूत होकर पूछते हो तुम लोग ! अवतार देश और काल से परे होता है। अब उसका चमत्कार देखना। सब पापी नष्ट होंगे—म्लेच्छ निवह निधने कलयसि करबालम—धनी, विलासी, पाखण्डी कोई नही बचेगा। और जैसे राम ने पहले अपना अंश परशुराम को दिया था वैसे ही कल्कि भगवान ने अपना अंश पहले से मारकेश मुनि को दे दिया है !"

"मुनि मारकेश ?"

"हाँ, हाँ, मुनि काल मारकेश। भविष्य पुराण में कहा है—उत्तराखण्डे तु काल मारकेश विराजते—उत्तराखण्ड में काल मारकेश मुनि राज करेंगे। सो रूस में कार्ल मार्क्स का छद्म नाम धारण करके राज करते हैं। पर हैं मारकेश। देखो क्या अमरीका

मारकेश मुनि कल्कि भगवान की स्तुति करेंगे और सारे संसार में फिर से सतजुग आयेगा, लेकिन उसके पहले फिर २१ बार पृथ्वी क्षत्रीविहीन होगी।"

"तो कल्कि भगवान माघमेले में आयेंगे न ?" मैंने पूछा।

"आयेंगे ? आ गये हैं। यह झण्डा उन्हीं के पक्ष का है। सो फिर भारत में वह होगा जो कहीं नहीं हुआ। फिर उनका चक्रवर्ती राज होगा।"

"तो प्रयाग में कहाँ विराज रहे हैं भगवान !"

"भगवान तेरे सामने विराजते हैं। माया का पर्दा हटा कर, ज्ञान की आँखें खोलकर देख, भगवान तेरे सामने हैं वत्स !" मैंने झुककर श्रद्धा से प्रणाम किया। और भगवान आत्म-प्रशंसा और वरदान भरे नेत्रों से हमारी ओर देखकर हम दोनों के हिस्से का दूध अपने प्याले में उड़ेलकर चम्मच से चीनी मिलाने लगे।

चाँद और टूटे हुए लोग

आसमानों की अथाह नीलिमा में बड़े से बेले के फूल की तरह तैरता हुआ चांद ऊपर; नीचे, दूर-दूर तक फैली हुई गंगा की ठंडी महीन सूखी बालू पर दो-तीन टूटे हुए लोग, चौदहवीं चाँद की छाया में, शहर के कोलाहल से दूर, इस किनारे पर निकल आये थे, पीपों के पुल पर से होकर। उनके आते समय पीपे पानी में कुछ दबे थे, पुल में हलकी सी हरकत हुई थी, दोनों बाजू की रेलिंग चरमराई थी, पानी की छोटी-छोटी लहरियाँ उनकी बांई ओर विलीन हो गई थी।

उनमें से दो से चांद का काफी पुराना परिचय था, यों कहना चाहिए कि मूक मैत्री ही थी। पिछले पांच-छः साल से अक्सर दोनों इसी तरह की जादू भरी चांदनी रातों में आते थे। घंटों बालू में निरुद्देश्य चलते रहते थे, थक कर बैठ जाते थे। अमूमन वही बातें करते थे जो चांदनी रातों में लोग सृष्टि के आदि से करते आए हैं। वास्तव में दोनों दोस्तों के बीच की कड़ी बन गया था चाँद। वैसे चाहे दोनों महीनों न मिलें, लेकिन जब कभी कोई असाधारण सी चांदनी रात आए, उनमें से एक दूसरे को बुला लाता और घंटों चाँद की छाया में बैठकर दोनों अपने मन की पर्तों में छिपे हुए फूल, आँसू, गीत, प्यार और दर्द बालू में बिखेर जाते थे।

उनसे पहले-पहल परिचय की बात चाँद को अच्छी तरह याद

है। कालेज की उम्र थी, रोज़ी और परिवार की चिन्ताओं से मुक्ति, भविष्य की अजब सी कल्पनाएँ, अपरिपक्व, कच्चे फूलों सा सुकुमार स्वभाव और जैसा उस उम्र के लिए स्वाभाविक है, प्यार के पहले रंगीन और पवित्र जादू में बँधने के लिए आतुर मन। दोनों बालू की परिधि में धँसते गए, दूर-दूर, यहाँ तक कि किनारा छिप गया। सिर्फ बालू, सफ़ेद धुआँ, धुआँ, संगमरमर सी बालू और हवाओं में उड़ती हुई झिलमिल दूधिया चाँदनी। दोनों वहीं बैठ गए, लगता था धरती चाँदनी में घुल गई है। दोनों चुप रहे। एक विह्वल स्वर में बोला—"कितना अच्छा लगता है। जैसे न नीचे धरती हो न ऊपर आकाश। हम लोग जैसे बादलों से घिरे हैं। बादलों में बैठे हैं। क्यों ?" दूसरे ने जवाब नहीं दिया। चुपचाप लेटा चाँद की ओर देखता रहा। चाँदनी उसके चौड़े माथे पर जम गई थी, उसकी लटों से खेल रही थी।

"क्या सोच रहे हो ? चुप क्यों हो राजे ?" उसने राजेश का शीतल माथा छुआ।

राजेश ने चाँद की ओर से निगाहें हटाई। क्षण भर अपने साथी की ओर देखा और अजब सी काँपती हुई नशीली आवाज में बोला—"एक बात बताओ कुँवर। कभी तुमने यह महसूस किया है कि जब कभी ऐसे अकेलेपन में आदमी आ जाय और उसके सामने सुन्दर फूल हो, या चाँद हो, या बादल हो, या पेड़ों की हरी-भरी छाँहें हों तो उस समय कोई चेहरा उसके सामने आ जाता है। आँसू घुला या मुस्काता हुआ......क्यों ?"

कुँवर कुछ नहीं बोला, सिर्फ एक फीकी मुसकान के साथ उसने राजे का हाथ हलके से दबाया और चाँदनी में सोई हुई तटरेखा की ओर देखने लगा। चाँद के चेहरे पर एक हल्की सी मुसकान आई और चाँदनी थोड़ी तेज़ हो गई।

राजे उठ कर बैठ गया। बोला—"कुँवर, तुमने कोई ऐसी लड़की देखी है जो सफ़ेद फूलों की तरह पवित्र हो, जो इसी चाँदनी की तरह सूक्ष्म हो। एथीरियल हो। बोलो।" कुँवर ने कुछ नहीं कहा। चुपचाप बैठा बालू पर लकीरें खीच-खींच कर मिटाता रहा। चाँद हँस कर बोला—"ठीक है लड़के, इस उम्र में सभी को कोई लड़की एथीरियल लगने लगती है। फूल सी पवित्र, चाँदनी सी सूक्ष्म; क्या उम्र है तुम्हारी?" लेकिन चाँद की आवाज राजे तक पहुँच भी नहीं पाई थी कि कुँवर ने पूछा—"कौन है यह लड़की बताओगे?':

"है एक! जानकर क्या करोगे?"

"उसे मालूम है?" कुँवर ने पूछा।

"क्या?"......राजे हँस कर बोला—"क्या?"

"यही"......

"नही जी," राजे खिलखिला कर हँस पड़ा—"तुम कुछ और न समझना। जानने की क्या बात है। तुम जानते हो, मैं दूसरे किस्म का आदमी हूँ। प्यार-व्यार मेरे वस का रोग नही। मेरी जिन्दगी का कुछ और ही मकसद है। वह लड़की फूल सी पवित्र है, मैं केवल इतना कह रहा हूँ, लेकिन मेरे लिए है, यह तो मैंने नही कहा। आदमी दूर से भी फूल को देख सकता है।"

चाँद खिलखिला कर हँस पड़ा। 'दूर से प्यार कर सकता है।' इस पीढ़ी के अधिकांश लोगों को इस उम्र में ऐसी बातें कहने की आदत पड़ गई थी। पता नही, चाँद ने सोचा, इसका मतलब भी वे लोग समझते हैं यह नहीं।

उसके बाद वे दोनों चुपचाप पड़े रहे। थोड़ी देर बाद राजे के हाथों पर एक गर्म आँसू चू पड़ा तो उसने चौंक कर कुँवर की ओर

देखा। कुंवर ने बिना राजे की ओर देखे हुए बहुत धीमे से कहा—"तुम किस्मतवर हो। तुममें ताकत है, बौद्धिकता है। तुम प्यार में विश्वास नहीं करते, पर तुम्हारे जीवन में है कोई जो प्रतिक्षण तुम्हारे समीप है। और मैं? जानते हो मैं प्यार करता हूं। लेकिन पिछले छः वर्ष से कभी उससे दो बात नहीं कर पाया। फिर भी हर साँस उसे छू आती है, कभी उसके प्यार, बल्कि मैं पूजा कहूंगा, के बिना एक क्षण भी नहीं जी सकूंगा। तुम मुझे कमजोर कह सकते हो। तुम्हारी सी आग मुझमें जरूर नहीं है........"

"आग!" राजे ने धीमे से दुहराया और हंस पड़ा, शायद कुछ आत्म-सन्तोष के साथ, शायद हल्के से अविश्वास के साथ, शायद थोड़े से निश्छल अभिमान के साथ। "आओ चलें!" उसने कहा और दोनों उठ खड़े हुए। राजे का मन तितलियों की तरह चंचल, हल्का और उड़ने को आतुर था। कुंवर का मन भारी, उदास, नम। सहसा रुककर राजे ने कुंवर के कंधे से टिककर कहा, "मैं उसे प्यार नहीं करता लेकिन"........और राजे ने अपनी बात पूरी नहीं की।

यह पहला मरतबा था जब चाँद ने उन्हें देखा था। चाँद तो ऊपर है, इन भावावेशों और आँसुओं से ऊपर, अतः उसने केवल कुतूहल के भाव से, ऊपर ही से, उनकी ओर देखा जिनकी ये लोग बातें कर रहे थे। राजे ने जिसका जिक्र किया था, वह छत पर सो रही थी किसी से लड़कर, वह रोते-रोते छत पर पड़ कर सो गई थी, उसकी काली भौंराली चोटी उसके वक्ष पर नागिन की तरह बेहोश पड़ी थी। पास किताबें बिखरी थीं। सिरहाने दूध का गिलास रक्खा था जिसे मारे गुस्से के उसने पिया ही नहीं था।

जिसका जिक्र कुँअर ने किया था वह खिड़की के पास टेबुल लैंप की रोशनी में किताब छोड़ कर घुटनों में शीश छिपाए, न जाने क्या सोच रही थी। आँचल सर से खसक गया था। चाँद को अपनी ओर अपलक देखते हुए उसने उठ कर खिड़की बन्द कर दी।

चाँद ने उन दोनों लड़कियों को देखा, और सफेद बाल पर काले चींटों से रेंगते हुए उन दोनों को देखा जिनके हृदय पर प्रथम बार स्वर्णिम प्रेम की छाया पड़ रही थी, उस प्रेम की जो आकाश से भी विस्तृत, सागर से भी गहरा, ऋचाओं से भी पवित्र था, जिसके बारे में उन्होंने उपन्यास पढ़े थे, कहानियाँ पढ़ी थी, कविताएँ पढ़ी थीं। चाँद ने कुछ कहा नहीं सिर्फ अपनी लम्बी सूची में थोड़े से नाम और जोड़ लिए।

यह पाँच साल पहले की बात है। उस दिन से चाँद ने इन पर कड़ी निगाह रखनी शुरू कर दी थी। उसके बाद वे सब अपनी-अपनी पगडंडियों पर चलते रहे और प्यार-व्यार तो हर एक की जिन्दगी में आता है, कभी उनकी पगडंडियाँ मिलीं, फिर अलग हो गईं, फिर विभिन्न दिशाओं में मुड़ गई। कभी वे अपनी-अपनी जिन्दगी में बहुत व्यस्त हो जाते। कभी एक दूसरे को दूर से देख लेते।

और आप जानते हैं। चाँद इस बीच में क्या करता रहा। कभी आप ने मक्खी को फँसाते हुए मकड़ी को देखा है। जहाँ मक्खी के पंख उलझे और वह तड़फड़ाई कि मकड़ी दौड़ पड़ती है और दाएँ-बाएँ, ऊपर-नीचे, इस कोने से उस कोने तक बिजली की तेजी से दौड़कर इतने तार बिन देती है कि फिर मक्खी के लिए कोई निस्तार नहीं रह जाता। ठीक उसी तरह नीचे ज़मीन पर ये लोग चलते रहे, जिन्दगी में बढ़ते रहे, ब्याह, शादी, रोज़ी-रोजगार, प्यार, सभी में

वे डूबते-उतराते रहे और ऊपर चाँद एक बहुत बड़े चाँदी के जहरीले मकड़े की तरह आसमान के इस छोर से उस छोर तक दौड़-दौड़कर इनकी ज़िन्दगी को एक अजब से चमकीले जाले में कसता रहा। हाँ कभी-कभी चाँद एक काम और करता, चाँदनी की डोरी में बाँध कर उन्हें इसी बालू पर खींच लाता और यद्यपि आर्थिक संघर्ष, सामाजिक परिस्थितियाँ आदि उन पर चेतना और संस्कार की पर्त पर पर्त जमाते जाते थे। किन्तु चाँद एक क्रूर मज़ाक करता था। वह यह कि चाँदी की एक तेज़ बौछार से उसके मन पर जमी हुई पर्तें धोकर बहा देता था और वे फिर उसी बालू में लेट कर उसी दिन की सी बातें करने लगते थे जिस दिन उनके हृदय पर प्रेम की प्रथम छाया पड़ी थी—वह प्रेम जो आकाश से विस्तृत और सागर से गहरा है जैसा कि उपन्यासों और कविताओं में उन्होंने पढ़ा था।

तो इस तरह अकसर वे इसी तरह बालू पर मिलते रहे। एक बार राजे ने बताया—हँसते-हँसते कि अब उसे बहुत फुरसत रहती है क्योंकि वह लड़की उसकी जिन्दगी से चली गई है। लेकिन पता नहीं कौन सी चीज है जो दोनों के मन में हमेशा ऐसा ही रहेगी—वह चीज प्यार है या और कुछ, यह नहीं कहा जा सकता क्योंकि राजे प्यार में तो विश्वास ही नहीं करता—और यह समाचार देते समय राजे हँसा। उसकी हँसी चाँद को कुछ टूटी-फूटी हुई सी ज़रूर लगी थी, यह चाँद का भ्रम भी हो सकता है। और कुँवर के आँख में आँसू आ गये। क्योंकि उसे किसी की याद आ गई जिसे वह खो ही देगा क्योंकि प्यार में पाने का विधान उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना खो देने का।

और फिर दो साल बाद एक दिन जब वे मिले तो कुँवर ने

बताया कि उसकी शादी होने वाली है। उस लड़की से नहीं क्योंकि वह राजे के सिद्धान्त में विश्वास करता था कि देवता अपने मंदिर में रहें। वह केवल दूर से पूजा अर्पित कर दे या जैसे इसी सिद्धान्त को अन्य उपमाओं के सहारे भी कहा जाता है। राजे यद्यपि उसके विवाह के निर्णय से असहमत था पर जब कुँवर ने बताया कि स्वयं उस लड़की ने ही कुँवर से उसके विवाह के लिए ज़िद की है, शपथ दिलाई है, वह भी उसने स्वयं पसन्द की है तो राजे भी उस लड़की के अनन्य त्याग पर विस्मय करता हुआ मौन रह गया।

और उसके बाद अकसर वे मिलते रहे और दोनो यह बताते रहे कि वास्तव में प्रेम में अद्भुत् शक्ति है। दूरी से उसमें कोई अन्तर नही पड़ता, बल्कि इस दूरी ने उनके पारस्परिक विश्वासो को और भी सबल बना दिया है और दोनों चाँद की ओर देखकर कहते थे कि उनका प्यार इतना ही पवित्र है जितना यह चाँद, उनका प्यार रोजमर्रा की जिन्दगी से उतना ही ऊपर उठकर है जितना यह चाँद, और दूर होते हुए भी अन्तर के उतना ही समीप है जितना यह चाँद, और उसके सिलसिले में कभी-कभी कबीर का एक दोहा भी वे लोग कहते थे कि 'कमोदनी जलहर बसे चन्दा बसे अकास', क्योंकि दसवें दरजे से एम० ए० तक यह दोहा उनकी पाठ्य पुस्तकों में था। फिर अक्सर वे दोनों उदास हो जाते और कुँवर की आँखों में आँसू आ जाता और राजे के होठों पर एक फीकी मुस्कान और यद्यपि वे दोनों अन्दर से एक बहुत बड़ा अभाव महसूस करते थे, लेकिन चाँद ने देखा दिन-दिन वे अपनी ज़िन्दगी में तरक्की करते गए। राजे ने एकाउन्ट्स की परीक्षा दी और डिप्टी इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स बन गया। और चाँद ने कुछ नहीं किया। सिर्फ एक बेडौल बडे से चमकीले मकडे की तरह

दौड़-दौड़कर उनकी ज़िन्दगी पर जाला बुनता रहा और नतीजा यह हुआ कि राजे कुछ अधिक बौद्धिक, मुँहफट, हँसमुख, चतुर होता गया और कुँवर अधिक व्यावहारिक, दूरदर्शी, पारिवारिक (उसका परिवार हो गया था।) और गम्भीर होता गया। लेकिन यह उनकी ऊपरी पर्त थी। अन्दर की पर्त में तो केवल प्यार ही प्यार था। क्योंकि प्यार ही अमर है जैसा महाकाव्यों में भी कहा गया है। हाँ चाँद ने यह ज़रूर थोड़े आश्चर्य और अधिक सन्तोष के साथ देखा कि प्यार से वंचित हो जाने पर भी उनके जीवन की बाहरी प्रगति में बाधा नहीं पहुँची। वे पहले से अच्छे कपड़े पहनते थे, पहले से अच्छा खाना खाते थे, पहले से बेहतर घर में रहते थे और पहले से अधिक व्यस्त थे, सोचने और चिन्ता करने का कम अवकाश निकाल पाते थे और इतने व्यस्त हो गए थे वे लोग कि हर महीने चाँद आसमान की अथाह नीलिमा में बड़े से बेले के फूल की तरह तैरता जाता मगर वे लोग कभी ध्यान भी न देते। इस तरह जब साल-डेढ़ साल यानी लगभग १७-१८ पूर्णिमाएँ बीत गईं तो चाँद को यह उपेक्षा काफी अपमानजनक मालूम पड़ी और वह चाँदनी का रेशमी रुपहला जाल फेंककर उन्हें फिर बालू पर खींच लाया।

और वे पीपे का पुल पारकर आए। आते समय पीपे की रेलिंग चरमराई, लहरें उठीं और विलीन हो गईं और जब इस पार पहुँचे तो पता नहीं क्यों उनका मन धूमिल था, उस पर पर्तें जमी हुई थीं और वे तमाम बातें कर रहे थे। सिर्फ वे बातें नहीं कर रहे थे जो अमूमन सृष्टि के आदि से चाँदनी में लोग करते आए हैं और वे भी करते रहे और जिन्हें सुनने को चाँद उत्सुक था। हाँ, उनके साथ आज एक व्यक्ति और था, जिसकी खोई-खोई मनस्थिति, आँखों के गुलाबी डोरे, झूमती हुई चाल और पाँव का सलेमशाही

जूता यह बता रहा था कि वह विवाहित है। चाँद का जाल जो राजे और कुँअर पर आज नहीं था उसे सहसा घायल कर गया और वह राजे के कंधे पर हाथ रखकर बोला—"कितनी सुन्दर है चाँदनी!" और चाँद की ओर देखता हुआ चलने लगा कि राजे ने टोका—"देखो नीचे गडढा है विनय।" नवविवाहित विनय राजे के और भी समीप जाकर बोला—"राजे तुम्हें ऐसा कभी हुआ है कि सामने चाहे फूल हो या चाँद, बादल या पेड़ों की हरी भरी छाँह का चेहरा उन सब के पीछे से मुसकरा पड़े।" राजे चुप रहा। एक टूटी हुई ठंडी हंसी उनके होंठों तक आते-आते रुक गई। "तो इसका नाम भी सूची में जुड़ना चाहिए।" चाँद ने सोचा। विनय फिर बोल उठा, "मैं जानता हूं तुम लोग हंसोगे। पता नहीं कि मुझी पर कुछ पागलपन है, कुछ समझ में नहीं आता है। मैंने इससे अच्छी लड़कियाँ देखी है, शायद उन्हें प्यार भी किया है, हफ्तों पागल भी रहा हूं, लेकिन आज लगता है, यह सब अस्थायी है, उम्र का तकाजा, एक उत्सुकता, एक शौक। लेकिन पत्नी की हमदर्दी, उसका स्नेह, इसमें कुछ और ही रस रहता है। राजे, तुम भी उसे कभी महसूस करोगे।"

"देखो शायद महसूस करूं," राजे ने कहा और मन ही मन उसे महसूस करने की आधी परिहासमयी चेष्टा भी करने लगा।

"यह अजब सा 'केस' है!" चाँद ने सोचा, "प्रेम और अपनी पत्नी के लिए?"

"राजे से क्या कहते हो? मुझसे कहो।" सहसा कुँअर तेज और कड़ुए स्वर में बोला। "मैंने शादी भी की है, पत्नी है, परिवार है, बच्चा है। जिसको तुमने प्यार किया है, उसका पति है, परिवार है, पता नहीं तुम पत्नी के किस स्नेह की, किस हमदर्दी की, किस स्नेह की, बात कर रहे हो। तुमने प्यार किया है। तुम्हारी उम्र का

तकाजा रहा होगा जो मिट गया। प्यार अगर होता है तो अटूट रहता है। घरबार, पत्नी, बच्चे सभी जैसे पिंजरे की तालियाँ हैं। पलभर अगर आदमी को एकांत मिलता है तब सिर्फ एक व्यक्ति हमारे साथ रहता है। वह जो हमारी जिन्दगी में साथ नही आ पाया, जिसे हम खो चुके हैं।"

विनय चुप हो गया। वे बात करते-करते ऐसी जगह पहुँच गए थे जहाँ ऊपर लहरों ने बालू की एक लम्बी रेखा सी बना दी थी। वे तीनों वही रुक गए। राजे और कुँवर उसी पर सिर टिका कर लेट गए। विनय अँगुलियों से शिखररेखा बनाता मिटाता रहा। चाँद ने मकड़े की तरह जाल का एक तार और कसा। कुँवर बोला—"मैं जानता हूँ इस दूरी के बावजूद न मैं बदला हूँ न वह !"

"अभी कितने दिन गुज़रे हैं दोस्त !" राजे ने बहुत उड़ती हुई आवाज में कहा !

"तो तुम भी जानते हो कि यह सब अस्थायी..."

राजे ने कोई जवाब नही दिया। विनय राजे से टिककर बैठ गया।

"एक बात पूछूँ राजे," कुँअर ने राजे का माथा छूकर कहा—"तुम कुछ बदल गए हो क्या ?"

"तुम उसे बदलना कहते हो ? मैं उसे विकसित होना !"

"एक बात और पूछें ?":

"क्या ?"

"वह ?"......

"नहीं, वह नही बदली है। वही अपनापन, वही अधिकार, वही शासन, वही तेवर और एकान्त क्षणों में वही पागलपन। लेकिन पहले मैंने सिर्फ उसे देखा था। उसके बाद दुनिया देखी है, दुनिया

जिसका वह सिर्फ एक अंश है। ज़िन्दगी देखी है, ज़िन्दगी जो सिर्फ प्यार नहीं होती, जाने कितनी अनुभूतियाँ, कितने संघर्ष, कितनी परिस्थितियो से मिलकर ज़िन्दगी बनती है।"

"लेकिन प्यार उन सबों के बावजूद टिकता है?" कुँवर ने विह्वल स्वरों में कहा।

"हो सकता है, पर मुझे तो लगता है प्यार शायद आदमी की सब से आकर्षक और सब से निस्सार कल्पना है! सच पूछो तो मैं अब प्यार में ही विश्वास नही करता। असल बात है हमदर्दी, एक आपसी निर्भरता, जो मूलतया सामाजिक है, सामाजिक परिस्थितियो से सापेक्ष है।"

भाषा कुछ इतनी कड़ी होती जा रही थी कि चाँद समझ नही पा रहा था पर कुछ ऐसा लग रहा था कि उसने जो जाल के तार उन लोगों पर बुन रक्खे हैं, उन्हें राजे बार-बार झटके दे रहा था।

"तो तुम कोई चीज़ स्थायी नही मानते। सब सापेक्ष है। तो वासना स्थायी होती होगी।"

"नही वासना तो बिल्कुल बालू की लक़ीर है। स्थायी है आत्म-प्रवंचना अपने को ठगते रहना। अपने को भुलावे मे डाले रखना। गुजरे हुए प्रेम के नाम पर।"

"हूँ!" कुँवर ने बहुत उपेक्षा से कहा।

"नही, ख़ैर यह तो मैं मज़ाक कर रहा था। आत्मप्रवंचना भी नही टिक पाती। परिस्थितियाँ उसे भी धीरे-धीरे तोड़ डालती हैं। लेकिन ख़ैर मेरी बात का बुरा मत मानो। न ग़लत समझो। संभव है मैं ही ग़लत होऊँ। पर मुझे ऐसा ज़रूर लगता है कि नारी और पुरुष के सम्बन्धों में अस्वस्थ रूमानी अंश निकाल कर अगर एक स्वस्थ मानवीय हमदर्दी रहने दी जाय जिसके सहारे एक स्वच्छ सामाजिक जीवन बन सके तो बहुत समस्याएँ सुलझ जायँ।"

चाँद का मन इस वार्तालाप से ऊब सा रहा था। लेकिन कुँअर फिर बोल उठा, "लेकिन हम समस्याएँ सुलझाने के लिए तो प्यार नहीं करते। वह तो पता नहीं कैसे हो जाता है। एक अजब सा बल, एक अजब सी रंगीनी, एक ताज़ी अँगड़ाई हमारी आत्मा में जाग जाती है। और जो व्यक्तित्व हमें छूकर फूल की तरह खिला देता है, जो हममें जाने कितना अमृत भर देता है, जिसके सपनों में हम बरसों डूबे रहते हैं, फिर उसी के सामने हम एक दिन यह प्रश्न-चिन्ह लगा दें कि इससे हमारी समस्याएँ सुलझती हैं या नहीं? यह हमारे सामाजिक जीवन की कसौटी पर कैसा है?" चाँद ने दूर से देखा तैश से कुँअर का चेहरा लाल हो रहा था। वह और ध्यान से सुनने लगा।

राजे शान्त और संयत स्वर से बोला, "लेकिन मैं तो इसे दूसरे ही पहलू से देखता हूँ बन्धु; ज़रा अपने व्यक्तिगत मोह से अलग होकर देखो। एक उम्र होती है जब एक अजब सा रंगीन प्यारा फूल सभी के मन में खिलने लगता है। उस समय जो भी व्यक्तित्व हमारे समीप आया उसकी गहरी छाप उसपर पड़ जाती है। लेकिन हमारे चारों ओर की व्यवस्था, वातावरण, परम्पराएँ सामाजिक ढाँचा कुछ ऐसा है कि हम सब बेबस हैं, और कायर हैं। सामाजिक स्तर पर वह व्यक्ति हमारे साथ आ नहीं पाता। अपनी व्यक्तिगत सीमाओं में आबद्ध हम आत्मिक प्रेम, आस्था और निष्काम पूजा की बात करने लगते हैं पर सामाजिक स्तर पर विवाह करते हैं। पत्नी आती है, बच्चे होते हैं और हमारे दो व्यक्तित्व हो जाते हैं। दोनों एक दूसरे को धिक्कारते हैं। दोनों एक दूसरे की साँसों में ज़हर घोल देते हैं। हमारा व्यक्तित्व खोखला हो जाता है और खोखले व्यक्तियों से बना हुआ समाज अनैतिक। मैं कभी-कभी सोचता हूँ काश इन अन्तर्विरोधों, इन विषमताओं से

हम छुटकारा पा सकते तो हमारा जीवन कितना स्वच्छ होता, हमारा समाज कितना स्वस्थ। हम अपना व्यक्तिगत मोह छोड़कर कितनी विराट आस्था पा लेते। हमारी व्यक्तिगत ज़िन्दगी कितने बड़े संगीत की एक कड़ी होती......अपने व्यक्तिगत मोह की बात छोड़कर ज़रा तटस्थ होकर आकलन करो।"

चाँद तिलमिला उठा, उसे ऐसा लगा जैसे राजे ने झटके से जाल का सब से मज़बूत तार तोड़ दिया हो। उसने चाँदनी की एक तीखी बौछार दी कुँवर बोला—"उठो और आगे चलो।" चाँद ने डोरे खींचे और तीनों कठपुतलों की तरह चाँदनी के जादू में बँधे फिर आगे चल दिये। चाँद ने व्यंग से कहा, "पता नहीं किसने आदमी को बौद्धिक प्राणी कहा है। प्यार ने तोड़ दिया है। उसको स्वीकार न कर, एक पता नहीं किस असम्भव अवस्था की बात करता है। दूसरा विवाह को मंज़िल समझ बैठा है। और तीसरा तो जैसे समाजवादी नेता की तरह बात कर रहा है। समाज-व्यवस्था। स्वस्थ सामाजिक जीवन......। बेमतलब बे सिर-पैर की बातें"... और मकड़े की तरह गुस्से में चाँद जल्दी-जल्दी जाल के तार बुनने लगा।

तीनों का मन अजब सी आशंकाओं, समस्याओं और प्रश्न-चिन्हों से ग्रस्त जाल में फँसी मछलियों की तरह पंख फड़फड़ा रहा था और मन की आकुलता जितनी बढ़ती जाती थी उतनी ही एकाग्रता से वे चाँदनी और बालू के जादू में डूबने का प्रयास करते थे। उन्होंने बालू पर बनी हुई लहरियाँ देखीं, उनकी तुलना बादल में पड़ जाने वाली लहरियों से की। एक स्थान पर पास के ककड़ी के खेतों की मेड़ों पर गड़ी सरपत की कलौंच बालू पर जम गई थी। उसे आश्चर्य से देखा। उसे पैर से ज़रा ठोकर मारने पर नीचे से

कपूरी बालू निकल आती थी। इसे बहुत आश्चर्य से देखा। बालू मुट्ठी में भर-भर कर गिराते रहे। बालू में बनते अपने पगचिन्हों को देखते रहे। विराट बालू की हिमश्वेत झिलमिली पृष्ठभूमि में काली छायाओं से हिलते-डुलते एक दूसरे के व्यक्तित्व को देखते रहे। लेकिन यह सब ऊपरी पर्त की बातें थी। अन्दर ही अन्दर वे तीनों बेचैन, उलझे हुए और व्यथित थे क्योंकि उन सबों की जानें कितनी धारणाओं, आस्थाओं, और मान्यताओं में गहरा-मंथन हो रहा था।

और चाँद तो इन सभी व्यक्तिगत दुख-सुख, व्यथा और पीड़ाओं से बहुत तटस्थ और निरपेक्ष है। उसे इसमें क्या दिलचस्पी, फिर भी महज कुतूहलवश उसने अपनी निगाह घुमाई और देखा राजे जिसके बारे में सोच रहा था, वह बिल्कुल उसी तरह जैसे चाँद ने पहले देखा था छत पर बेहोश सो रही है। पास में एक छोटी सी गुलाब सी बच्ची किलकारियाँ भर कर माँ को जगाने की कोशिश कर रही है। एक अक्षय वात्सल्य और कमल के पाखुरियों सी मंजुल ममता उसके होठों पर है। वह छोटी सी माँ पहले से कहीं ज्यादा सौम्य, मधुर और स्नेहमयी लग रही थी। और चाँद ने देखा कि जिसके बारे में कुँअर सोच रहा था वह उसी तरह खिड़की पर टेबिल लैंप के पास घुटनों में सिर झुकाए पति की प्रतीक्षा कर रही है, जो अभी लौटा नहीं है। वह पहले से अधिक सूनी-सूनी लग रही है और जिसकी बातें विनय ने की थी, वह सुहाग की लजीली तुलसी-सी पवित्र छोटी सी अबोध नव-वधू; चाँद की निगाहें उस पर टिकी ही नहीं।

और चाँद ने नीचे बालू पर रेंगते हुए तीनों काले चीटों की ओर देख कर कहा—"मूर्ख !" पर उन्होंने सुना नहीं। हाँ, कुँअर ने आगे आकर कहा—"राजे एकाएक गंभीर क्यों हो गए। संभव है तुम्हीं सब कह रहे हो।"

राजे का मन भर आया। बोला—"कौन जानता है? हम सब टूटे हुए लोग हैं। कुंठित। अधूरे। जिनका विकास कुचल चुका है। हम सब की निगाह टूटी है, अधूरी है। पता नही सच्चाई क्या है। पता नही मैंने जो कुछ कहा उसमें स्वयं मैं विश्वास करता हूँ या नहीं। मैं प्रेम के रूमानी अंश को नहीं मानता। फिर भी लगता है उसे अस्वीकार भी नहीं कर सकता। पता नहीं यह केवल संस्कार मात्रहै, जो छूट नहीं पाता या सचाई का तकाजा है।" और चाँद को लगा कि राजे ने अभी-अभी जाल के जो तार तोड़े हैं वह स्वयं उनमें उलझ रहा है। वे तार साँप बनकर उसके कदमों में लिपटे जा रहे हैं—राजे भरे कंठ से कहता गया" "मैं ही अभी व्यक्तिगत मोह से उठने की बात कह रहा था। सामाजिक दृष्टिकोण की बात कर रहा था पर मुझे कभी-कभी लगता है चाहे मेरा प्यार अब व्यक्तिगत सीमा से न बँधा हो पर वह दर्द तो मेरा ही है जो हड्डियों में आग की तरह रेंगा करता है।"

वातावरण बहुत भारी सा हो गया। चाँद तो हमारे सुख-दुख से निरपेक्ष है। वह तो केवल कौतुक के लिए बालू पर इन कठपुतलों का खेल देख रहा था नाहक मन को उलझनों में फँसाने से क्या फायदा। वह तो एक मुर्दा नक्षत्र ठहरा जिसमें इन्सान और उसकी दर्द भरी जिन्दगी, उलझन भरी समस्याएँ कभी की समाप्त हो चुकी थी और जिसमें अब सिर्फ सूने पहाड़ और झुलसे मैदान रह गए थे। ऐसा मुर्दा नक्षत्र क्यों नाहक आदमी की समस्याओं में दिलचस्पी दिखाए। वे क्यों रोते हैं? क्यों टूटते हैं? अपनी जिन्दगी को, अपनी रहन-सहन को अपनी व्यवस्था को बदलते क्यों नही? चाँद इसमें क्या करे। उसने जाल के डोरे ढीले कर दिए। अपने शिकारों को छोड़ दिया। और खुद थककर, आँख मूँद कर एक काले बादल से टिक कर बैठ गया।

चाँदनी धूमिल हो गई। तीनों भारी मन से चुपचाप इस किनारे लौट आए। ढाई बज गए थे। रिक्शा एक ही था, तीनों बैठे। राजे बोला—'और जानते हो! हँसी-खुशी भरे दिन के बाद जब मैं सोता हूँ तो अक्सर आजकल क्या सपना देखता हूँ? देखता हूँ एक अथाह समुद्र है जिसके किनारे एक ऊँची मीनार है। जिसके एक झरोखे में से सहसा मेरा पैर फिसल गया है और मैं गिर रहा हूँ। नीचे अथाह, खूँखार समुद्र है और मैं गिरता जा रहा हूँ...... गिरता जा रहा हूँ......" और राजेश का गला रुँधने सा लगा। रिक्शे की ठंडी लोहे की सलाख पर सिर टिका कर पड़ रहा। विनय ने सांत्वना से उसका हाथ अपने हाथों में ले लिया। पर सभी चुपचाप रहे। बादल और गहरे हो गए। चाँदनी बिल्कुल छिप गई।

चाँद ने आँखें खोली तो चारों तरफ अंधेरा था। एक अंधेरा सभी को घेरे हुए था। और उस अंधेरे में यह सभी अजब से लग रहे थे। यह राजेश यह कुंअर, यह विनय, यह माँ और उसका वात्सल्य। यह प्रतीक्षारत पत्नी और उसका घर, यह सभी अंधेरे में डोलती हुई प्यासी परछाइयाँ मालूम पड़ रही थी। उनका प्यार, उनका दर्द, उनकी आस्था, उनकी बौद्धिकता, उनका मातृत्व सभी टूटी हुई परछाइयों के प्यार परछाइयों के दर्द और परछाइयों की आस्था की तरह झूठा और खोखला मालूम पड़ रहा था। उनमें ठोसपन नहीं। उनमें सच्चाई का वजन नहीं।

इतने में रिक्शा ढाल पर पहुँचा और रिक्शे वाले ने सहसा जो उसे छोड़ दिया एक अजब से झोंके के साथ, तो राजे को ऐसा लगा जैसे सचमुच वह मीनार से गिर पड़ा है और नीचे अथाह समुद्र है, अथाह, असीम और वह बिल्कुल अकेला है। अगर वह आवाज भी

दे तो सिर्फ आवाज ही समुद्र से और पहाड़ों से टकरा कर लौट आएगी। और सहसा उसकी पसलियों में एक अजब सा दर्द मरोड़ उठा और राजेश की पलकों से अनजाने एक बड़ा सा गर्म आँसू गालों पर ढलक आया।

और उसी समय एक अजब सी बात हुई। चाँद की निगाह उस आँसू पर जो पड़ी तो वह स्तब्ध रह गया। यह जिसमें आग है, जो व्यक्तिगत मोह को चीर चुका है यह उसी की पलकों की आँसू है। पाँच साल में यह पहला आँसू उसने उस पलकों में देखा था। चाँद को ऐसा लगा जैसे वह आँसू सफेद चमकदार मगर तड़पते हुए फौलाद का टुकड़ा है। और जैसे आग छूने से आदमी चौंक उठता हो वैसे ही चाँद की नसों में एक आघात दौड़ गया। और जैसे अंगारे से मोम पिघल जाता है वैसे चाँद की निगाह पर न जाने क्या जमा हुआ था जो पसीज-पसीज उठा और एक अजब सी विह्वलता चाँद में जाग उठी और उसे लगा—हालाँकि ये सभी लोग टूटे हुए हैं, आत्मप्रवंचनाओं में उलझे हुए हैं, अपूर्ण और कायर हैं, पर राजे के इस आँसू में, कुँअर की उस दृढ़-आस्था में, उस धूपदीप सी नवबधू में, अपने नये बचपन, उस गुलाब सी बच्ची में अपना सारा दुख भूल कर तन्मय हो जाने वाली माँ मे, उस बेबस करुण पत्नी में, इसमें, उसमें, सभी में पता नही कहाँ कौन सी प्रांजल पवित्रता है, जो प्रकाश की प्यासी है, प्रकाश में आने के लिए छटपटा रही है। सिर्फ उसे रास्ता नही मिल पा रहा है। एक अमृत-स्पर्श, केवल एक अमृत-स्पर्श उनको बिल्कुल बदल देगा। वे छटपटा रहे हैं...और उसी क्षण सहसा चाँद को महसूस हुआ कि केवल चाँदी का मकड़ा नही है। वह रेतीले मैदानों और टूटे पहाड़ों वाला मुर्दा नक्षत्रमात्र नही है। वह प्रकाश का देवता है, सुधा का स्रोत है, अमृत का रजत कलश है और

यह सब उसी के अपने टूटे हुए टुकड़े हैं जो प्रकाश के अभाव में छटपटा रहे हैं, जो एक नए प्रकाश की खोज में हैं, नए जीवन की खोज में है, नई व्यवस्था की ओर लड़खड़ाते हुए आगे बढ़ रहे हैं—तब चाँद बादलों को चीर कर इन टूटे हुए लोगों पर, उनकी सारी टूटी हुई पीढ़ी पर, एक विराट मंगलमय आशीर्वाद की तरह झुक गया!

मुर्दों का गाँव

उस गाँव के बारे में अजीब अफ़वाहें फैली थी। लोग कहते थे कि वहाँ दिन में भी मौत का एक काला साया रोशनी पर पड़ा रहता है। शाम होते ही क़ब्रें जमुहाइयाँ लेने लगती हैं और भूखे कंकाल अँधेरे का लबादा ओढ़ कर सड़कों, पगडंडियों और खेतों की मेड़ों पर खाने की तलाश में घूमा करते हैं। उनके ढीले पंजरों की खड़खड़ाहट सुन कर लाशों के चारों ओर चिल्लाने वाले घिनौने सियार सहम कर चुप हो जाते हैं और गोश्तख़ोर गिद्धों के बच्चे डैनो में सिर ढाँप कर सूखे ठूठों की कोटरों में छिप जाते हैं!

और इसी से जब अखिल ने कहा कि चलो उस गाँव के आँकड़े भी तैयार कर लें, तो मैं एक बार काँप गया। बहुत मुश्किल से पास के गाँव का एक लड़का साथ जाने को तैयार हुआ। सामने दो मील की दूरी पर पेड़ों की झुरमुटों में उस गाँव की झलक दिखाई दी। मील भर पहले ही से खेतों में लाशें मिलने लगीं। गाँव के नज़दीक पहुँचते-पहुँचते तो यह हाल हो गया कि मालूम पड़ता था भूख ने इस गाँव के चारो ओर मौत के बीज बोये थे और आज सड़ी लाशों की फ़सल लहलहा रही है। कुत्ते, गिद्ध, सियार और कौवे उस फ़सल का पूरा फ़ायदा उठा रहे थे। इतने

में हवा का एक तेज़ झोंका आया और बदबू से हम लोगों का सर घूम गया। मगर फिर जैसे उस दुर्गन्ध से लद कर हवा के भारी और अधमरे झोंके सूखे बाँसों के झुरमुटों में अटक कर रुक गये।

और, सामने मुर्दों के गाँव का पहला झोपड़ा दीख पड़ा! तीन ओर की दीवारें गिर गई थी और एक ओर की दीवार के सहारे आधा छप्पर लटक रहा था। दीवार की आड़ में एक कंकाल पड़ा था। साथ वाला लड़का रुका—"यह! यह निताई धीवर है।"

"कहाँ?" अखिल ने पूछा—

"वह, वह निताई धीवर सो रहा है!" लड़के ने कंकाल की ओर संकेत किया—"वह धीवर था, और गाँव का सबसे पट्ठा जवान। अकाल पड़ा। भूख से उसकी माँ मर गई। उसके पास खाने को न था, फिर लकड़ी लाकर चिता सजाना तो असम्भव था। उसने अपनी नाव बाहर खींची, माँ के शरीर को नाव में रखा, ऊपर से सूखी घास रक्खी और आग लगा दी। रहा-सहा सहारा भी चला गया। और एक दिन वह भी यहीं भूखा सो गया; यही, इसी जगह उसकी माँ ने भी दम तोड़ा था।" वह लड़का बोला।

हवा का झोंका फिर चला और खोखले बाँसों से गुज़रती हुई हवा सन्नाटे में फिसल पड़ी। लड़का चीख़ पड़ा—"वह साँस ले रही है—सुना नहीं आपने?"

"कौन?"

"वह, वह जुलाहिन साँस ले रही है।"

"क्या वाहियात बकता है!" अखिल ने झुँझला कर डाँटा।

"कौन जुलाहिन ?"

"आपको नहीं मालूम ? वह सामने झोपड़ी है न, उसी में जुलाहे रहते थे। उसमें से तीन भूख से मर गये। रह गये सिर्फ़ जुलाहा, जुलाहिन और उनका करघा। मगर भूख से उनकी नसें इतनी सुस्त थीं कि करघा भी बेकार था। उन्होंने पास के जंगल से जड़ें खोद कर खानी शुरू कीं। उनके दाँत नुकीले हो गये जैसे सियारों की खीसें। जुलाहा बीमार पड़ गया; जुलाहिन जड़ें खोदने जाती थी। एक दिन जड़ें खोदते वक़्त खुरपी उनके कमज़ोर हाथों से फिसल गई और बायें हाथ की तर्जनी और अँगूठा कट कर गिर गया। जब वह घर पहुँची तो भूखा और बीमार जुलाहा झल्ला उठा और चिल्ला कर बोला—'निकल जा मेरे घर से, अब तू बेकार है, न करघा चला सकती है, न जड़ें खोद सकती है।' तब से जुलाहिन का पता नहीं है। मगर कुछ लोगों का कहना है कि वह भूत बन कर गाँव की क़ब्रों के पास घूमा करती है। वह अभी साँस ले रही थी, सुना नहीं, आपने ?"

अखिल ने मेरी ओर देखा और मैंने अखिल की ओर। हम दोनों आगे बढ़े और जुलाहों के झोंपड़े में घुसे। लड़का ठिठका मगर हिम्मत दिलाने पर वह भी आगे बढ़ा; हम लोग अन्दर गये। लड़के ने अन्दर से किवाड़ बन्द कर लिए और हम लोगों से सट कर खड़ा हो गया। वह डर से काँप रहा था। सामने आँगन में तीन क़ब्रें आसपास खुदी हुई थीं, बीच की क़ब्र में एक बड़ा-सा छेद था। उसमें से एक बिज्जू निकला और हम लोगों को डरावनी निगाहों से पल भर देख कर सर झटका और फिर क़ब्र में घुस गया।

आँगन में किसी मुर्दे के सड़ने की तेज़ बदबू फैल रही थी। अखिल ने अपना केमरा सम्हाला और फ़ोटो लेने की तैयारी की।

इतने में पीछे की किवाड़ें खड़क उठीं। मेरे रोंगटे खड़े हो गये। अखिल बोला, "कोई स्यार होगा"। किवाड़ को किसी ने जैसे बार-बार धक्का देना शुरू किया। मैंने सोचा शायद ज़िन्दा आदमी की गन्ध पाकर गाँव भर के मुर्दे हम पर हमला करने आये हैं। मेरे ख़ून का क़तरा-क़तरा डर से जम गया। लड़का बुरी तौर से चीख़ पड़ा। अखिल धीमें-धीमें गया, धीरे से किवाड़ खोल दी, और उसके बाद बुरी तरह से चीख़ कर भागा और मेरे पास आकर खड़ा हो गया। मैं बदहवास हो रहा था, और आपको यक़ीन न होगा मैंने दरवाज़े पर क्या देखा। मैंने जिसे देखा वह आदमी नहीं कहा जा सकता था। वह जानवर भी नहीं था, भूत भी नहीं—एक औरतनुमा शक्ल जिसकी खाल जगह-जगह पर लटक आई थी, सर के बाल झड़ गये थे, निचला होंठ भूल गया था और दाँत कुत्तों की तरह नुकीले थे। मालूम होता था जैसे आदमी के ढाँचे पर छिपकली का चमड़ा मढ़ दिया गया हो। उसके दाँयें हाथ में एक खुरपी थी और बायें हाथ की दो अधकटी और तीन साबित उँगलियों में कुछ जड़ें!

वह पल भर दरवाज़े के पास खड़ी रही, फिर धीरे-धीरे आगे बढ़ी। मैं चीख़ना चाहता था, मगर गला जवाब दे चुका था। वह हमारे बिल्कुल पास आकर खड़ी हो गई, जड़ें ज़मीन पर रख दीं और अपने तीन उँगलियों वाले हाथ को मुँह के पास ले जाकर कुछ खाने का इशारा किया। हम लोगों के जान में जान आई। वह भूखी है, वह आदमी ही होगी, क्योंकि भूख आदमीयत की पहचान है। अखिल ने अपने झोले में से केला निकाला और उसकी ओर फेंक दिया। उसने केला उठाया और मुँह के पास ले गई। मगर फिर रुक गई, उठी और झोपड़ी के दूसरी ओर चल दी। हम लोगों को

कुतूहल हुआ, हम लोग भी पीछे-पीछे चले। वह औरत सहन के एक कोने में गई। वहाँ एक मुर्दा था, जिसकी सड़ाँद आँगन में फैल गई थी। देहाती लड़के ने उसे देखा और पहली बार उसके मुँह से आवाज़ निकली—"जुलाहा! यह तो जुलाहे की लाश है—यह जुलाहिन उसे भी भूत बनाने आई है।"

जुलाहिन लाश के पास गई। लाश सड़ रही थी और उसमें चींटियाँ लग रही थीं। उसने केला और जड़ें लाश के मुँह पर रख दीं और हँसी। हँसी की आवाज़ मुँह से नहीं निकली मगर खीसों को देखकर अनुमान किया जा सकता है कि वह हँसी होगी। मगर दूसरे ही क्षण वह बैठ गई और मुर्दे की छाती पर सर रख सुबकने लगी।

"यह जुलाहिन है? मगर यह तो कम से कम सत्तर बरस की होगी।"

"सत्तर बरस। No, it is dropsy, देखते नहीं ज़हरीली जड़ें खाने से इसकी नसों में पानी भर गया है, मांस फूल गया है।" अखिल बोला—"इस मुर्दे को हटाओ वरना यह भी मर जायगी।"

उसके बाद हम लोग झोंपड़े के भीतर आये। पास में एक गढ़ा था। सोचा इसी में लाश डाल दी जाय। भीतर आये, लाश के पास से जुलाहिन को हटाया और उसकी लाश भी एक ओर लुढ़क गई। मैं घबड़ा गया, बेहोश-सा होने लगा, अखिल ने मुझे सम्हाला।

हम लोग थोड़ी देर चुप रहे। फिर मैं बोला—भारी गले से—"अखिल! उँगलियाँ कट जाने पर यह निकाल दी गई, फिर किस

बन्धन के सहारे, आख़िर किस आधार के सहारे यह मरने के पहले जुलाहे के पास आई थी जड़ें लेकर; क्यों ?"

अखिल चुप रहा—मुर्दों के गाँव की दोनों आख़िरी लाशें सामने पड़ी थीं—

"अच्छा उठो !" अखिल बोला ।

हम लोगों ने लाशें उठाई और गढ़े में डाल दी, एक ओर जुलाहा, दूसरी ओर जुलाहिन । बाँस के सूखे पत्तों से उन्हें ढाँक दिया । मैंने अपनी उँगली से धूल में गढ़े के पास लिखा—

"ताजमहल, १९४३"

और हम चल पड़े ।

एक बच्ची की क़ीमत

उन दिनों जब परिचित भुखमरे आपस में मिलते थे तो उनका साधारण कुशल-प्रश्न हो गया था "तुम कब से भूखे हो ?" और इसीलिये जब उस मोड़ पर एक ही गाँव की रहने वाली बिन्दो और रामी मिलीं तो बिन्दो ने फ़ौरन पूछा—"तुम कब से भूखी हो रामी ?"

रामी महज़ एक ठण्डी साँस लेकर रह गई।

बिन्दो फिर बोली—"उफ़ तुम कितनी दुबली हो गईं। और, यह तुम्हारी बच्ची, यह तो महज़ कंकाल रह गई है।"

रामी ने अपनी धुँधली आँखें उठा कर पूछा—"बिन्दो तुम्हारी बच्ची क्या मर गई ?"

अब की बार बिन्दो एक ठण्डी साँस लेकर रह गई।

"क्यों, क्या रास्ते ही में मर गई ?" रामी ने प्रश्न दोहराया।

"मरी नहीं—अभी ज़िन्दा है—मैंने उसे पंजाबी के हाथ बेच दिया !" बिन्दो ने सिर झुका कर कहा और रुँधे गले से सिसकने लगी।

"बेच दिया !" रामी चीख़ पड़ी, "तो यह कहो, हत्यारिन अपनी बच्ची के हाड़ बेच कर पेट भर रही है। तेरी ज़बान नहीं कट गई, तेरे हाथ नहीं टूट गये बेचते बख़त !"

बिन्दो ने एक दयनीय दृष्टि से रामी की ओर देखा और सर झुका कर चुपचाप चली गई। बिन्दो चली गई, मगर उसकी बात रामी के मन को मसोस रही थी। उसने अपनी फूल-सी बच्ची को कैसे बेचा होगा········राम ! राम ! हत्यारों का काम है यह तो !

दो हफ़्ते बाद ········।

रामी के १३ वक्त फ़ाक़े हो चुके थे। एक दिन सुबह रामी की आँख खुली। बदन में बेहद कमज़ोरी थी। सर सूना-सूना-सा मालूम पड़ रहा था और मालूम होता था जैसे किसी ने आँतों पर जलते हुए अंगारे रख दिये हों। जाने कौन-सी चीज़ नसों को एलास्टिक की तरह खींच रही थी। पलकों पर जैसे पहाड़ लदे थे और पुतलियाँ फिराने में मालूम होता था जैसे वह कोई भारी चट्टान हटा रही हो।

उसने फ़ौरन हाथ बढ़ा कर अपनी बच्ची को टटोला और ग़ौर से और स्नेह से उसे देखा। बच्ची ने आँखें खोलीं और कुछ कहने की कोशिश की मगर कह न पाई, और अजब तौर से मुँह खोल कर हाँफने लगी।

रामी का दिल थर्रा गया। वह बहुत कोशिश करके उठी और पास के नल पर गई, टीन के डब्बे में पानी भरने की कोशिश की। मगर उसकी उँगलियाँ इतनी शिथिल हो गई थीं कि उससे नल की टोंटी नहीं घूम पाई। उसने डब्बा नीचे रख कर दोनों हाथ लगाये किन्तु असफल रही। फिर गर्दन फेर कर चारों ओर देखा, सड़क सूनी थी। उसने टोंटी में मुँह लगाया और दाँतों से खोलने की कोशिश की। एकाएक उसकी पसलियाँ थर्राईं और ढेर का ढेर ख़ून मुँह से उछल कर डब्बे में गिर पड़ा। उसे मालूम दिया जैसे वह

बेहोश हो रही हो। एक हाथ से नल थाम कर वह खम्भे से टेक लगा कर खड़ी हो गई। कुछ मिनटों बाद उसको होश आया। उसने वह डब्बा उठाया और नल के सामने जमा हुए गढ़े के मटमैले पानी में धोया। पानी खून की वजह से लाल हो गया। हिलोरों से पानी पर तैरते हुए सैकड़ों भुनगे और मच्छर हवा में भुनभुनाने लगे। रामी ने एक कोने से निथार कर पानी उस डब्बे में भरा और बच्ची के पास गई। बच्ची चुपचाप थी, महज़ कभी-कभी हाथ-पाँव छटपटा उठते थे। उसने थोड़ा-सा पानी उसकी सूखी हलकों में डाल दिया। बच्ची ने आँखें खोलीं और सूनी-सूनी निगाहों से माँ की ओर देखा। फिर ज़बान निकाल कर होंठ पर लगी हुई पानी की बूँदे चाटी। रामी प्यार के साथ हाथ फेर कर बोली—"बेटी।"

बेटी ने हाथ पटक कर सूखे गले से कहा—"भूख......माँ!" भूख पहले कहा माँ बाद में।

"उफ़! रामी ने मन में कहा, "इससे तो यह पंजाबी के पास आराम से रहेगी।" फिर जैसे किसी ने उसकी आत्मा को झकझोर कर कहा—"तुम! तुम! माँ हो हत्यारिनी......"और वह अपनी बात पर अपने ही आप सहम गई।

सामने का फाटक खुला और अपने कुरते की बाहें समेटते हुए पंजाबी निकला। ढीले कुरते का छोर खम्भे में लगा और जेब में रुपये खनक गये। रुपये की खनखनाहट रामी की पसलियो में गूँज गई, और उसकी नसों में किसी सर्वग्राही ताक़त ने गरज कर कहा—"इससे........इससे तो यह पंजाबी के पास आराम से रहेगी" रामी उठी और पंजाबी की ओर चली। मगर उसके दल की गिर्मी पिघल कर फूट पड़ी। "माँ........माँ! तुम अपनी फूल-सी बच्ची बेचने जा रही हो, बेचने!... ..."

रामी फिर लौट आई। बच्ची की पसलियाँ चल रही थीं और पैर जैसे ऐंठ से रहे थे। रामी की आत्मा को किसी ने मरोड़ कर कहा—"ख़ुदग़रज़ ! तुम माँ हो, अपनी एक छोटी-सी ख़्वाहिश पर अपनी बच्ची की जान ले रही हो। क्यों नहीं बेच देती ? आराम से तो रहेगी, पास या दूर !"

उसका पेट जल रहा था। कुछ रुपये मिल जायँगे, पेट में वह कुछ दाने डाल सकेगी, बच्ची को भरपेट खाना मिल सकेगा। वह पंजाबी के सामने जाकर खड़ी हो गई। बच्ची को गोद में लेकर।

"सेठ सा'ब !" वह क्या कहे ! उसने अभी तक मछलियाँ बेची थीं, तरकारी बेची थी, धान बेचा था, अपनी सन्तानें कभी नहीं बेची थीं। उसे नहीं मालूम था सन्तान बेचने के लिए ग्राहक कैसे पटाया जाता है।

"सेठ सा'ब" उसकी ज़बान फिर रुक गई।

"क्या है ? भीख·········मुफ़्त के पैसे माँगते शर्म नहीं आती ?" पंजाबी ने एक डकार लेकर कहा।

"भीख नहीं सेठ सा'ब, यह लड़की ख़रीदियेगा ?" उसके गले में आँसू अटक रहे थे।

पंजाबी खड़ा हो गया—"यह बच्ची, इसका मैं क्या करूँगा ? यह तो घर ले जाते ले जाते मर जायगी। कोई बड़ी लड़की नहीं है, अन्दाज़न, १५, १६ बरस की ?"

"भूखी है सा'ब, दाना मुह में जाते ही बोलने लगेगी।"

पंजाबी ने झुक कर बच्ची को देखा। रंग साफ़ था, कट अच्छा था, मगर भूख की वजह से दुबली थी। "अच्छी निकलेगी। ५ साल में तैयार हो जायगी, निखर जायगी······और कम से कम ५००) रु० तो मिल ही जायँगे—" उसने अपने मन में सोचा। "बोल कितने में देगी ?"

रामी असमंजस में पड़ गई, कितना बताये। एक बच्ची की क़ीमत कितनी होती है? उसे आज तक नहीं मालूम था, उसने हिसाब लगाया। एक पाव चावल आठ आने का, चार दिन को एक सेर चावल—

"२) रु० दे दीजियेगा सेठ सा'ब।"

पंजाबी ज़ोर से हँस पड़ा। "यह पेट" उसने पेट पर ठुनकी मारी जैसे किसी टायर की हवा देख रहा हो, और पसलियों में उँगली गड़ा कर बोला, "यह हड्डियाँ! इनकी क़ीमत तो दो पैसे भी बहुत है।"

"दो पैसे!" रामी चीख़ पड़ी।

"हाँ हाँ दो पैसे! और क्या कोई गाय-बकरी बेंच रही है कि रुपये लेगी। अच्छा, आठ आने लेगी? नहीं! तेरी मर्ज़ी!" कह कर फाटक के अन्दर जाने लगा।

रामी ने कुछ सोचा, और फिर आगे बढ़ कर बच्ची को पंजाबी के हाथ में रख दिया। पंजाबी ने जेब में हाथ डाल कर एक अठन्नी निकाली और उसके सामने फेंक दी। रामी की हिम्मत न हुई कि उसे उठाये। उसकी नस-नस काँप रही थी·········उसने जल्दी से अठन्नी उठाई और भागी। उसके हाड़ जल रहे थे और वह जैसे बेहोशी में चल रही थी।

सामने एक बनिये की दूकान थी। उसने अठन्नी बनिये को दे कर कहा, "चावल!"

"चावल नहीं है!"

"दे दो! महाजन! बड़ी मेहरबानी होगी।"

बनिये ने चारों ओर शंकित निगाह से देखा और बोला, "दो रु० सेर मिलेंगे।" उसके बाद ग़ल्ला खोला, अठन्नी उसमें रखी और

दूसरी अठन्नी निकाल कर बोला—"ठगने आई है बदमाश! खोटी अठन्नी बोहनी के वक्त। बेईमानी तो देखो।" चार आने सेर ख़रीदे हुए चावल को दो रु० सेर बेच कर अठन्नी बदलने वाला ईमानदार बनिया बोला—और खोटी अठन्नी उसके सामने फेंक दी।

रामी ग़ुस्से से उबल पड़ी—"झूठा! धोखेबाज़! मेरी अठन्नी तो अच्छी थी।"

"अच्छा! अच्छा! गाली देती है। चोरी और ऊपर से सीना-ज़ोरी। इसी अधर्म से तो यह अकाल पड़ रहा है······।"

बनिये का नौकर उठा और डाँट कर बोला—"उतर दूकान से······" और धक्का दिया तो वह मुँह के बल सीढ़ियों से नीचे गिर पड़ी। नौकर ने खोटी अठन्नी उठा कर बनिये को दे दी और बोला—"रख लो लाला! फिर किसी मौक़े पर काम आ जायगी।"

आदमी का गोश्त

झाड़ियों मे चरमराहट की आवाज़ हुई और अमलतास के नीचे एक स्यार दीख पड़ा। स्यारनी ने दौड़कर स्यार का स्वागत किया—वह दो दिन बाद लौटा था, उसका बदन चाटा और बोली—'तुम्हारे चेहरे पर तो अजीब रौनक़ आ गई है, आखिर तुम रहे कहाँ दो दिन तक ?'

स्यार ने अपने रोएँ फुलाये, पूँछ तानी और आँखें नचा कर कहा—"जानती हो, मैं आदमी का गोश्त खाकर आ रहा हूँ; ज़िन्दा, ताज़ा लजीज़ !'

"आदमी का गोश्त ? ताज्जुब है, लेकिन ज़िन्दा आदमी का गोश्त तुम्हें मिला कैसे ?"

स्यार बैठ गया और बोला—

"तुम्हारा साथ छूटने के बाद मैं शहर की ओर चला। उस अँधेरे में उस सड़क पर न जाने कितने देहाती डरावने प्रेतो की भाँति चले जा रहे थे—मौन, चुपचाप। उनके पैरों में ताक़त न थी मगर आँतों को मरोड़ती हुई भूख की नर्मी उनकी नसों में ख़ून की रवानी की तरह दौड़ रही थी और वे मशीनों की तरह आगे बढ़ रहे थे। उनकी चाल से मालूम देता था जैसे सैकड़ों भूखे ईसामसीह पीठ पर सूखी हड्डियों का क्रास लादे वधस्थल की ओर जा रहे हों।

ख़ैर, दिन भर दौड़ते रहने के बाद शाम तक मैं शहर के

नज़दीक पहुँचा। वह शहर का किनारा था और वहाँ से फौजी घास के मैदान शुरू हो जाते थे। सामने दो बड़ी ऊँची-ऊँची कोठियाँ थीं और उनके सामने सड़क के दूसरी ओर एक टूटा हुआ कच्चा झोपड़ा। मैंने झोपड़े में झाँका। एक बूढ़ा कंकाल घुटनों से पेट दबा कर सर झुकाये बैठा था। झोपड़े की एक कोठरी से एक बच्चा कराहा—"पानी..."

बूढ़ा उठा। मगर लड़खड़ा गया। अपने कमज़ोर और सूखे हाथों से उसने दीवाल थामी और एक हाथ में पानी का बर्तन लेकर बच्चे की ओर बढ़ा। बूढ़े ने हाथ बढ़ाया, बच्चे के ओठ से बर्तन लगाया मगर इतने में पैर की हड्डियाँ कड़कड़ाई। उसका हाथ काँप गया और सारा पानी बच्चे पर गिर पड़ा। बच्चा तड़प गया और फिर गीली आवाज़ में कराहा 'पानी'...

बुड्ढा पहले चुप रहा और फिर प्रेत की तरह चीख़ कर बोला—'मर जा! आख़िर पीछा तो छूटे, कम्बख़्त!' उसके बाद वह हाँफने लगा, बैठ गया और सिसकने लगा, 'मर जा!' 'मर जा कम्बख़्त!'

"ठहरो! ठहरो!" स्यारनी ने बाधा दी। पास बैठे बच्चे को पंजों से खींच कर दूध पिलाने लगी और रुँधे गले से बोली—"क्या आदमी अपने बच्चे को प्यार नही करते?"

"करते क्यों नहीं", स्यार ने जवाब दिया, "प्यार तो कर सकने की बात है—जो कर पाता है करता ही है। सामने वाली कोठी में एक छोटा बच्चा हार्लिक्स न पीने के लिए रो रहा था और उसकी माँ उसे मना-मना कर हार्लिक्स पिला रही थी। उसे सामर्थ्य थी न प्यार करने की—झोपड़ी में रहने वाले प्यार कर कहाँ पाते हैं? मजबूर हैं!

ख़ैर सुनो! वहाँ से मैं चला आया—

दूसरे फुटपाथ पर कोठी की दीवार से सटकर एक आदमी लेटा था। मैं पास आया, वह शायद मर चुका था। पहले मैं चक्कर काटता रहा, फिर उसके नज़दीक गया, चारों तरफ़ अँधेरा था। कोठी की खिड़कियाँ बन्द थीं। मौक़ा अच्छा था। मैं दबे पाँव लाश के नज़दीक गया और धीरे से अपने दाँत लाश के कन्धे मे गड़ा दिये—लाश चिहुँक उठी। मैं डर गया। वह आदमी अभी मरा नही था, ज़िन्दा था—मैं उछल कर अलग खड़ा हो गया। वह आदमी दर्दनाक आवाज़ में चीख़ने की कोशिश कर रहा था मगर आवाज़ उसके गले में फँस कर रह जाती थी। मैंने अन्दाज़ किया वह कम से कम तीन दिन से प्यासा था—और इसी से उसका ख़ून भी गाढ़ा था, स्वादिष्ट। उसने करवट बदलने की कोशिश की बेकार, हाथ हिलाने की कोशिश की बेकार—वह ठंड से अकड़ गया था, उसकी नसें जम गई थीं।

मैं फिर नज़दीक गया और उसके बाद कन्धे के हिस्से से थोड़ा-थोड़ा गोश्त काटना शुरू किया। वह आदमी फिर चीख़ा मगर उसकी पसलियो में जमा हुआ कफ़ उसके गले में अटक गया। मैंने पूरी ताक़त से उसका गोश्त छीला। उसकी लाश थोड़ी दूर तक खिंच आई और पुट्ठों से पीठ तक का गोश्त नीचे लटक गया। वह आदमी एक जमी हुई चीख़ मार कर बेहोश हो गया।

उसके बाद बेहोशी में तो कोई बाधा थी ही नहीं। मैंने धीरे-धीरे आसानी से खाना शुरू किया। मगर सुबह हो चली थी। पास की कोठी में लोग जाग गये थे—ऊपर की छत से किसी ने, रात का रक्खा हुआ ठण्डा पानी नीचे फेंक दिया। पानी बर्फ़ की तरह सर्द था। मेरे ऊपर कुछ ही छींटे पड़े और मैं भाग आया।

वह पानी सारा का सारा उस बेहोश और भूखी लाश पर पड़ा। ताज़े जख़्मों पर काटता हुआ बर्फ़ीला पानी पड़ा और वह आदमी

तड़प गया। उसकी नसें छटपटा गईं। मगर मौत की तरह गंभीर कोशिश करने पर भी उसके मुँह से एक भी आवाज़ न निकली।

दिन हो गया था। मैं पास की झाड़ी में छिप रहा। जाड़े की हल्की सुनहली धूप कोठी की दीवालों पर पड़ रही थी। नाचती हुई किरणें नीचे उतर कर लाश के जख़्मों को देखने लगी। किरणों की गर्मी ने धीरे-धीरे उस आदमी की जकड़ी हुई नसों के बन्दों को खोला, और उस आदमी ने पलकें उठाईं, करवट ली और दर्द से तड़प उठा।

उसका मुंह खुला हुआ था और उस पर पास की नालियों से उड़ कर मक्खियाँ भिनकने लगीं। उसने हाथ उठाने की कोशिश की मगर इसकी ताक़त न थी। अपनी सूखी ज़ुबान निकाल कर उसने होंठ चाटे और गर्दन घुमाई। नसों पर जोर पड़ने से पुट्ठों के पास से खून की धार बह निकली। उसने चीखने की कोशिश की; गला फँस गया। उसने बहुत बल लगाकर करवट बदली और ओठों को ज़मीन से लगा कर अपने पुट्ठों से बहता हुआ ताज़ा खून चाटा।"

"अपना ख़ून चाटा?" स्यारनी ने सहम कर पूछा। "हाँ अपना .खून! अपनी कटी हुई रगों से बहता हुआ .खून; जानती हो वह तीन दिन, तीन रातों का प्यासा था।"

"मगर आदमी अपना .खून भी पाता है?" स्यारनी ने ताज्जुब से पूछा।

"क्यों नहीं? यही तो आदमी की ख़ासियत है। आदमी पहले तो दूसरे आदमियों का .खून पीकर, गोश्त खाकर ज़िन्दा रहता है, और जिसे दूसरों का गोश्त नहीं मिलता वह अपना ही खून पीता है। हम जानवर ऐसा नहीं करते। इसी से तुम्हें ताज्जुब

होता है, मगर हम जानवरों की सारी कमी इन्सान ने पूरी कर दी है। इसीलिए तो आदमी जानवरों से बड़ा माना जाता है।

ख़ैर! उस आदमी के गले में ख़ून जाकर जम गया, और उसका रही-सही बोली भी जाती रही। रास्ते पर लोग आने-जाने लगे थे।

दूकान खोलने जाता हुआ एक बनिया फ़ुटपाथ पर आ रहा था। लाश देख कर वह झिझका, और झल्ला कर बोला—'जहाँ देखो कमबख़्त मक्खियों की तरह मर जाते हैं। आने-जाने का रास्ता तो कम से कम छोड़ दें.........।'

भारी दिन किसी तौर कट गया। रात आई। मैं मौक़ा पाकर फिर उसके पास गया और धीरे-धीरे उसका गोश्त खाता रहा। वह पूरी तौर से बेहोश था मगर अभी मरा नहीं था क्योंकि सूखा ख़ून किसी तरह अटक-अटक कर बह रहा था। इतने में सामने वाली खिड़की खोलकर कोई बोला—'कुत्ते को मार कर भगा दो।'

जवाब मिला—'जाने दो, वह उस भिखारी के ज़ख़्म चाट रहा है। चाटने से ज़ख़्म अच्छे हो जायँगे।'

लोग जाग गये थे। मैंने जल्दी से उसके दिल का एक लोथड़ा नोच लिया और चल दिया।

हालाँकि मैं दिन भर सोया था मगर मुझसे चला नहीं जाता था। आदमी का गोश्त खाने से शायद चर्बी जल्दी बढ़ जाती है। मुझे ताज्जुब होता था कि ये बनिये और सेठ इतने मोटे कैसे होते हैं। मैं समझता हूँ शायद वे ज़िन्दगी भर आदमी का गोश्त खाते होंगे।"

"अच्छा तो वह लोथड़ा गया कहाँ?" स्यारनी ने पूछा। स्यार ने एक सूखे पत्तों के ढेर की ओर इशारा किया।

स्यारनी उसकी ओर उत्सुकता से बढ़ी और पत्तों को पंजे से

हटाया। नीचे एक मांस का लोथड़ा था। स्यारनी ने क्षण भर स्यार की ओर देखा और उसमें दाँत गड़ोये और एकाएक उछल कर पीछे हट गयी।

"क्या हुआ?" स्यार ने पूछा।

"यह! यह आदमी का गोश्त नही है। तुमने धोखा खाया, इसमें कहीं गर्मी नही, लज़्ज़त नहीं। इतना चिमड़ा कहीं आदमी का गोश्त होता है?"

"नहीं! नहीं! वह साफ़ आदमी था," स्यार ने प्रतिवाद किया, "क्या मैं आदमी नही पहचानता। ऊँची धोती लपेटे पास के किसी गाँव का कोई देहाती भुखमरा था।"

"देहाती भुखमरा! तभी तो मैं कहती हूं कि आदमी नहीं था।"

"क्यों?"

"ये लोग कहीं आदमी होते हैं, भूख में सूख-सूख कर मर जाने वाले, ग़ुलामी में घुट-घुट कर मिट जाने वाले कहीं आदमी होते हैं?"

स्यार ने शर्म से सिर झुका लिया। उसने एक ग़ुलाम भुखमरे का गोश्त खाया था, ग़ुलाम भुखमरे जो आदमी नहीं होते!

बीमारियाँ

कातिक बीत गया था, अगहन की शुरुआत थी। बेला ने सुबह थोड़ी-सी सूखी लकड़ी इकट्ठी की थी। उसे लाकर सुलगा दिया और बैठ तापने लगी। खेतों से सर्द हवा के झोंके आ रहे थे। सारे गाँव पर सन्नाटा था। कहीं-कहीं आग के चारों ओर बैठे हुए किसान ताप रहे थे और दूर पर किसी कुयें से चरख की चरमराहट की आवाज़ आ रही थी।

वह सोचने लगी—आज सुबह आग़ा आया था। पारसाल के कपड़ों का दाम अभी तक नहीं चुकाया गया। इसी मारे खेती का काम छोड़ कर चन्दन शहर में मजूरी करने गया। पर इतने दिन हो गये चन्दन का अभी पता भी नहीं। कातिक पूनों की रात को भुनेसरी के हाथ चन्दन ने धोती और करनफूल भेजा था, पर अब जाने क्या हाल है। सुना है शहर में हैज़ा फैल रहा है।

अकस्मात् सन्नाटा तोड़ कर गाँव के कुत्ते भौंक उठे। उसने सोचा टीका लगाने वाला डॉक्टर आया होगा—बीमारी! बीमारी! उसका दिल दहल गया जाने चन्दन कब आयेगा।

इतने में आग की रोशनी में कोई चुपचाप आकर खड़ा हो गया, हाँपता हुआ—चेहरे पर मुर्दनी का पीलापन और बिखरे रूखे-सूखे बाल। बेला चीख पड़ी।

"बेला !" चन्दन ने सूखे गन्ने में मिठास लाने की कोशिश की………।

जब खाना खाकर दोनों आग तापने बैठे तो बेला ने कहा—"बहुत थक गये हो, लाओ पाँव दबा दूँ।" चन्दन ने निर्जीव-सा पाँव आगे बढ़ाया। बेला ने उँगलियाँ गड़ोईं। पिंडलियाँ मुर्दा होकर लटक रही थीं।

"तुम्हारी हालत क्या हो गई है ?" बेला ने पूछा। चन्दन कुछ बोला नहीं। हँस भर दिया, एक सिसकती हुई हँसी।

"अब तू ख्याल करेगी; तन्दुरुस्त तो मैं कल तक हो जाऊँगा बेला ! पर रुपये कहाँ से आते, जा देख मिरजई की भीतरी जेब से रुपये तो निकाल ला।"

बेला भीतर गई। जेब में हाथ डाला। वह खाली थी, मिरजई उलट कर देखा वह खाली थी। उसको जैसे बिजली मार गई हो। उसने मिरजई लाकर चन्दन के सामने डाल दी। चन्दन ने देखा और सर थाम लिया। तन्दुरुस्ती, जवानी, अपमान, भूख, सब का मोल महज़ एक कटी हुई जेब वह एक आह भर कर चुप हो गया।

सुबह पड़ोस की एक औरत चन्दन से मिलने आई। "कहो चन्दन ! क्या कमा के लाये हो ?" चन्दन ने कुछ कहा नहीं, महज़ सूनी-सूनी निगाहों से उसकी ओर देखता रहा।

"ओफ़्फ़ोह ! अधजल गगरी छलकत जाय।" आँखें मटका कर उसने घर जा कर कहा—"दस-बीस रुपये क्या कमा लाया है कि मुँह से बोल तक नहीं निकलते ?"

दिन भर में गाँव भर में सारी चर्चा नमक-मिर्च लग कर फैल गई।

दोपहर में चन्दन ने बेसन की मोटी-मोटी रोटियाँ मट्ठे के साथ खाईं और सो रहा। तीसरे पहर जब सोकर उठा तो बदन टूट रहा था।

"देख मेरा बदन गरम है क्या ?"

बेला ने छूकर देखा, माथा जल रहा है, वह सहम गई। "लेट जाओ !" उसने कहा। शाम होते-होते पेट में भयानक दर्द शुरू हो गया। चन्दन दर्द से चीखने लगा। क़ै शुरू हो गई और प्यास से गला सूख गया।

पड़ोसिन देखने आई। "वाह बेला, इतनी हालत खराब है और दवा भी नहीं मँगवाई !"

"दवा क्या देती जीजी ! घर की दवा तो दे चुकी, कुछ फायदा ही नहीं हुआ।"

"चन्दन तो रुपये लाया है; लाओ क़स्बे से दवा मँगवा दें।"

"रुपये कहाँ हैं जीजी !"

"अरे बेला इतनी कंजूसी ! आदमी से ज़्यादा मोल नहीं है रुपये का बेला ! ये तो राक्षसी कर्म है.........।"

पड़ोसिन चली गई।

बेला सिसक-सिसक कर रो पड़ी। चन्दन को कम्बल उढ़ा कर वह घर से निकली। वैद्य शायद उधार दवा दे दे।

कोने वाले खेत की मोड़ पर उसे ठाकुर मिला, जमींदार का लड़का। "कौन, बेला ? कहाँ इतनी रात को ?"

बेला सिसक-सिसक कर रो पड़ी। उसने सब हाल बताया। "बस, इतनी-सी बात," ठाकुर ने कहा—"अरे हम कोई ग़ैर थोड़े ही हैं। तुम्हारा ज़रा-सा इशारा होता तो दवा, रुपया, डाक्टर सब हाज़िर था बेला।" ठाकुर ने एक हाथ से नोट निकाला और दूसरा हाथ बेला की कमर की ओर बढ़ाया।

"दूर हट पिशाच !" बेला तड़प उठी । उसने चिल्लाने की कोशिश की।

ठाकुर कुछ समझ कर चला गया। आगे जाने में बेला के पाँव रुक गये। वह साँस छोड़ कर वहाँ से भागी और झोपड़ी में आकर हाँफने लगी। चन्दन चुप था। "शायद सो गये !" उसने कहा। और कम्बल ठीक कर दिया। बुख़ार देखने के लिये उसने माथे पर हाथ रक्खा। माथा बर्फ़ की तरह ठण्डा था। वह घबड़ा गई। भाग कर पड़ोसिन के यहाँ गई। "जीजी ! चलो देखो तो उन्हें हो क्या गया ?"

उन्होंने आकर देखा। सब कुछ हो गया था। उधार के कम्बल से ढँकी हुई चन्दन की पीली-पीली लाश, दिये की टिमटिमाती रोशनी और कभी-कभी दिल को कँपा देने वाली आवाज में सूनी रात को चीरती हुई बेला की चीखें !

"बेला ! लाश फूल रही है। रुपये दो तो इन्तज़ाम किया जाय।" नातेदारों ने कहा।

"रुपये !" बेला ने चाहा सर पीट ले।

"हाँ बहिन !" औरतें बोली, "जीते जी तो रुपये दबा कर आदमी को मार डाला अब मरते वक़्त तो ठीक से किरिया-करम कर दो। आख़िर ऐसा भी रुपये का क्या मोह।"

रुपया ! रुपया ! उफ़ ! बेला करे तो क्या करे। उसे मालूम हुआ जैसे चन्दन की लाश फूल रही है, वह सड़ गई। उसमें कीड़े लग गये हैं, हर कीड़ा लाश को थोड़ा-सा कुतरता है और बेला की ओर देखता है।

उसने देखा कोई काली भूखी छाया । उसने लाश को मरोड़

दिया। हड्डियों के टूटने की कड़कड़ाहट गूँज गई। उसके बाद! उसके बाद जैसे उसने हड्डियों को उठा कर बेला के सर पर पटक दिया। उसका सर घूम गया। वह उठ कर भागी। किसी ने पूछा, "कहाँ ?"

"रुपया! रुपया!" उसने अस्फुट स्वरों में कहा और बाहर चली गई।

"रुपया लेने गई है," पड़ोसिन ने कहा, मैंने कहा था न कहीं पास-वास गाड़ रक्खे होंगे, इतनी सीधी नहीं है बेला।"

बेला भागती गई। सामने ज़मींदार का बाग़ था। बाग़ में एक छोटी-सी झोपड़ी थी। दरवाज़े पर ठाकुर अकेला बैठा था। ठाकुर ने आँखें उठा कर देखा। बाल बिखरे थे, आँखें सूज आई थीं। 'रुपया! रुपया!' दाँत पीस कर वह बोली। उसके बाल पथरा गये थे, उसके बाद वह पत्थर की तरह खड़ी रही, पत्थर की तरह चारपाई पर गिर गई, पत्थर की तरह चूर-चूर हो गई। जब वहाँ से लौटी तो उसके हाथ में एक काग़ज़ का टुकड़ा था—नोट।

रुपया आया, लाश उठी, चिता जली, मगर बेला चुप रही। वह किस हिम्मत से आखिर रोने की हँसी उड़ाती।

चार दिन बाद!

जब पटेसरी क़स्बे की ओर जा रहा था तो उसे एक पठान मिला।

"ओ जवान!" पुकार कर उसने कहा, "तुझे चन्दन का मकान मालूम है?"

"हाँ।"

"कहाँ है भाई?"

"चन्दन का घर ?" पटेसरी ने आकाश की ओर उँगली उठा दी।

"मर गया !" पठान ने ताज्जुब से पूछा।

"क्या कुछ रुपये उधार थे ?" पटेसरी ने पूछा।

"हाँ थोड़े-बहुत।" पठान लौट पड़ा पटेसरी के साथ क़स्बे की ओर। "क्या हुआ था उसे ?" पठान ने पूछा।

"हैज़ा," पटेसरी ने उत्तर दिया, शहर से भूखे आने के बाद घर पर ज़्यादा खा गया था।"

"ज़्यादा खा गया ?" पठान हँसा, "जानते हो हैज़ा क्यों होता है, ज़्यादा खाने से नहीं; बात यह है कि ज़िन्दगी भर भूखे रहने के बाद कभी पेट भर खाना मिल जाय तो आँतें उसे सहेंगी कैसे ?"

"नहीं जी वह तो साफ़ ज़्यादा खा गया था। मरने के बाद लाश फूल गई थी। उफ़ आज तक कन्धा दर्द कर रहा है," पटेसरी ने कहा।

पठान रुक गया। उसने चादरें हटा कर अपना कन्धा खोला और दिखाया, देखते हो मेरे कन्धे पर भी दाग़ है। जानते हो कैसे पड़ा ? लम्बी कहानी है—एक मर्तबा हमारे पास खाने को कुछ नहीं था। हमारे गाँव के चारों ओर फ़ौज पड़ी थी। लेकिन हमने सिसक-सिसक कर दम नहीं तोड़ा। एक मालगाड़ी जा रही थी और उस पर लदा था लाहौर का गेहूँ। हमने गाड़ी रोक कर अनाज लूट लिया। और उसके बाद ख़ूब खाया, हफ़्ते भर का खाना खाया। मगर किसी कमबख़्त को हैज़ा नहीं हुआ। बात यह है जवान, कि न हमने भूख को मारना सीखा है और न भूख से मरना।

"और जानते हो कन्धे पर यह निशान कैसे हैं। जब फ़ौज ने बदले में गाँव पर हमला किया तो मैं कारतूस दे रहा था और मेरा बाप मेरे कन्धे पर रख कर बन्दूक़ चला रहा था। तुम हिन्दुस्तानी

लोग कन्धे पर मौत ढोते हो और कन्धों के दर्द की शिकायत करते हो। हम लोग कन्धे पर ज़िन्दगी ढोते हैं और हमारे कन्धे रोज़-ब-रोज़ मज़बूत होते जाते हैं। समझे।"

पटेसरी ने विषय बदलना चाहा। बोला—"आजकल क़स्बे में बीमारियाँ बढ़ रही हैं।"

"क़स्बे में।" पठान फिर बोला—"अरे तुम्हारे पूरे मुल्क में लोग मरते हैं भूख से और तुम्हारे चश्मे वाले डॉक्टर कहते हैं हैज़ा है, मलेरिया है। और ग़रीब ही नहीं तुम्हारे यहाँ के अमीर भी मरते हैं मगर दिल की बीमारी से! वह पेशावर का सेठ, बैठे-बैठे अपनी गद्दी पर उलट गया। चलते-चलते उसका दिल बन्द हो गया। यहाँ के अमीर दिल की बीमारी से मरते हैं।"

पठान हँसा, दूर पर ठाकुर एक इश्क़िया गीत गाता जा रहा था।

"और बात क्या है?" पठान ने फिर कहा, "ग़ुलाम मुल्क की आबोहवा ही ऐसी है। यानी लाशें भी तो फूलने लगती हैं छि...... ग़ुलामी, बीमारियाँ, मौतें......"पठान मुँह बिचका कर बोला।

कफ़न-चोर

सक़ीना की बुख़ार से जलती हुई पलकों पर एक आँसू चू पड़ा।

"अब्बा !" सक़ीना ने करीम की सूखी हथेलियों को स्नेह से दबा कर कहा—"रोते हो छिः।"

बूढ़े करीम ने बाँह से अपनी धुँधली आँखें पोंछते हुए कहा—"बेटा ! तुम बुख़ार में जल रही हो और मैं तुम्हारे ओढ़ने के लिये एक चादर भी न ला सका……।"

सक़ीना बात काट कर बोली—"तो इसमें रोने की क्या बात ? सुनते हैं सरकार ने इन्तज़ाम किया है, बहुत-सा सस्ता कपड़ा आने वाला है। तब ख़रीद लेना। फिर मुझे तो जाड़ा भी नहीं लगता।" सक़ीना मुश्किल से अपनी कँपकँपी रोक पा रही थी।

"सरकार !"……करीम एक ठंडी साँस लेकर रह गया।

सक़ीना ने देखा करीम बहुत दुखी हो रहा है। फ़ौरन ध्यान बटाने के लिये बोली—"नीद नहीं आ रही अब्बा, कोई कहानी सुनाओ !"

"पगली ! तुझे भी इस वक़्त कहानी सूझती है। बेटा हमी लोगों की हालात कोई अख़बार में छपा दे तो बड़ी दर्दनाक कहानी बन जाय !"

"नहीं ! नहीं ! कहानी सुनाओ !" सक़ीना छोटे बच्चों की तरह मचल कर बोली।

"अच्छा सुन," करीम बोला, "यहीं लखनऊ का क़िस्सा है। नवाबी अमल था। छतरमंज़िल में नवाब साहब की ऐशगाह थी। दिन भर दोस्तों के साथ ऐश करने के बाद जब नवाब साहब आरामगाह में जाते थे तो उनकी पलकों में गुलाबियों का नशा रहता और उनके क़दमों में शराब की छलकन। उन्हें सहारा देने के लिये ज़ीने की हर सीढ़ी पर दोनों ओर नौजवान बाँदियाँ रहती थीं जिनके कन्धों पर हाथ रख कर वे धीरे-धीरे ऊपर जाते थे। सुन रही है न?"

"हूँ"—

"अच्छा, तो एक दिन सभी बाँदिया मुर्शिदाबादी रेशम की पोशाक़ पहन कर खड़ी हुई। नवाब साहब ने पहली बांदी के कन्धे पर हाथ रक्खा ही था कि रेशम की चिकनाहट की वजह से दुपट्टा फिसल गया और वे गिरते-गिरते बचे। नीचे से ऊपर तक बाँदियों में एक भय की लहर दौड़ गई। नवाब साहब सम्हले और गरज कर बोले—बदज़ातो। कल से तुम लोगो के कन्धे नंगे रहने चाहिये। और दूसरे दिन से उनके कन्धे नंगे रहने लगे।"

"समझी बेटी, तब कपड़ों की कमी नहीं थी, और न अब है, मगर हम ग़ुलाम और ग़रीब तब भी नंगे रहते थे और अब भी नंगे रहते हैं। जानती है क्यों ताकि अमीर लोग हमारे नंगे कन्धों पर आसानी से हाथ जमा कर सोने और चाँदी की सीढ़ियों पर चढ़ सकें······सो गई, सक़ीना।"

सक़ीना सो गई थी।

करीम उठा। एक फटी चटाई पर, बाँहों पर सर रख कर लेट रहा। उसने दोपहर से कुछ नहीं खाया था, भूख लगी थी मगर वह धीरे-धीरे सो गया। हिन्दुस्तानियों की आदत है कि जब वे भूखे होते

हैं तो सो जाते हैं और सपने देखने लगते हैं। करीम ने भी एक सपना देखा……।

और हिन्दुस्तानियों की तरह वह भी इस दुनिया से ऊब कर बहिश्त चला गया। आगे-आगे काँपता हुआ करीम और पीछे-पीछे अपने फटे कुर्ते को सम्हालती हुई मासूम सक़ीना।

सामने तख़्त पर ख़ुदा था। करीम ने सिर झुका कर कहा—

"या ख़ुदा। हम लोग नंगे हैं। भूखे हैं।"

ख़ुदा ने अपनी आँखें उठाईं, सक़ीना पर उसकी निगाह गड़ गई और उन्होंने बग़ल में बैठे हुये एक फ़रिश्ते से कहा—"हज़रत, मैं देखता हूँ कि भूख में भी आदमी का हुस्न निखरता जाता है।"

फ़रिश्ते ने अदब से सिर झुका कर कहा—"हुज़ूर की नायाब क़ुदरत।"

ख़ुदा ने ख़ुश होकर कहा—"अच्छा तो इस हसीना का नाम हूरों में दर्ज कर लो।"

फ़रिश्ते सक़ीना की ओर बढ़े।

"ख़बरदार !" करीम की भूखी पसलियाँ गरज उठीं।

ख़ुदा ने उसे देखा। "ये कौन है, निकालो इसे ?"

"कम्बख़्त तूने इन्साफ़ का ठेका लिया है," करीम चीख़ा, "उफ़ ! तुझमें ख़ुदाई हो मगर तूने अभी तक इन्सानियत नहीं सीखी है ओ धोखेबाज ख़ुदा।"

सक़ीना फ़रिश्तों के हाथों में छटपटाती हुई चीख़ी…………

"अब्बा !"

करीम की आँखें खुल गईं—छटपटाती हुई सक़ीना चीख़ रही थी, "अब्बा !" करीम घबड़ा कर उठा। "अब्बा जूड़ी चढ़ रही है," थरथराती हुई सक़ीना बोली। वह पानी से निकली हुई मछली की तरह छटपटा रही थी। करीम लाचार होकर उसकी ओर देखता

रहा। उसके पास नाम के लिये एक धोती भी न थी कि पूस की रात मे जूड़ी से काँपती हुई रोगिन बेटी को उढ़ा दे।

"हाथ ऐंठ रहे हैं अब्बा!" कहकर उसने हाथ झटके और महीनो का पहना हुआ जर्जर कुर्त्ता बग़ल पास से चर्रा कर फट गया। सक़ीना ने कोहनियों से लाज ढँकने की कोशिश की मगर उसके हाथ की नसें तनी जा रही थी। वह शर्म से तड़प गई।

क़रीम से अब न बर्दाश्त हुआ। उसकी आँखों में ख़ून उतर आया। उसका रोम-रोम सुलग उठा और उसने पैर पटक कर कहा, "सक़ी! सक़ी! मैं कहीं से तुम्हारे लिये कपड़ा लाऊँगा बेटी! कही से!" और झोंके की तरह वह बाहर निकल पड़ा।

क़ब्रगाह में लगे हुये पीपल के नीचे एक मुसलमान भिखमंगा बैठा था। सामने थोड़ी-सी आग जल रही थी। उसने एक लकड़ी से आग कुरेदते हुये कहा, "या ख़ुदा! ग़ज़ब की सर्दी है। सुना था चौदहवीं सदी में क़यामत होगी, इन्साफ़ होगा। क़यामत बरपा है, मगर इन्साफ़ का पता भी नही।"

एकाएक तीसरी क़ब्र के पास एक मनुष्य की छाया दीख पड़ी। वह क़ब्र आज ही खुदी थी, और जुड़ाई करने वाले मजूर फावड़ा और कन्नी वहीं छोड़कर चले गये थे। उस छाया ने फावड़ा उठाया और चलाना शुरू कर दिया। भिखमंगा डर से काँप गया। यह कौन है? कोई जिन? जिन नहीं फ़रिश्ता होगा, क़ब्र खोदकर गुनाहों का लेखा दर्ज करने आया है। उसके मन में एक ख़्याल आया। अगर वह इससे अरज़ करे तो दुनियाबी मुसीबतों से छुटकारा पा जायगा। वह काँपते हुये उठा और उसके नज़दीक गया। फ़रिश्ते ने फावड़ा चलाना बन्द कर दिया।

"हुज़ूर ! आप पैग़म्बर हैं, ख़ुदा के फ़रिश्ते हैं। मैं……।"

"चुप रहो, बेइज़्ज़ती मत करो, मैं फ़रिश्ता नहीं इन्सान हूँ," फ़रिश्ते ने चीख़ कर कहा।

"नहीं हुज़ूर ! फ़रिश्ता……।"

"फ़रिश्ता ! फ़रिश्ता ! मैं चोर हूँ बुड्ढे ! कफ़न चुराने आया हूँ, मेरी बेटी बिना कपड़े के मर रही है। तू भी नंगा है, अच्छा आधा कफ़न तू भी ले लेना।"

भिखमंगा सहम कर पीछे हट गया। डर से उसकी घिग्घी बँध गई और उसके बाद चीख़ कर बोला—

"चोर ! चोर !……।"

रखवाले की झोपड़ी से कई लोग दौड़ पड़े।

दूसरे दिन लखनऊ में बिजली की तरह इस अनोखी चोरी की ख़बर फैल गई।

सुबह क्लाथ कन्ट्रोल आफ़िसर जब चाय पीने बैठे तो उनकी पत्नी ने चाय ढालते हुये कहा, "सुना तुमने कल एक आदमी कफ़न चुराते पकड़ा गया।"

"पागल हो गई हो क्या" ? ओवरकोट और मफ़लर से कान और छाती को ढकते हुये उन्होंने कहा—"कपड़े की ऐसी भी क्या कमी ! और फिर आदमी चाहे मर जाय क़ब्र खोदकर कफ़न चुराने नहीं जायगा………।" फ़र के दस्ताने से ढकी उँगलियों से चाय का प्याला उठाते हुये उन्होंने जवाब दिया।

एकपत्र

डियर राबर्ट,

सुना है तुम कामन्स की बैठक में बंगाल के अकाल की जाँच की माँग करने वाले हो। सोफ़ी के पास आये हुये पत्र से यह भी मालूम हुआ कि तुम्हारा विचार है कि अकाल की घटनाओं से भारत में असन्तोष फैलने की सम्भावना है और तुम्हें सन्देह है कि कहीं उससे युद्ध-प्रयत्नों में बाधा न पड़े।

तुम्हारे इस सन्देह से केवल यही मालूम होता है कि तुम भारत की असली हालत से कितने अपरिचित हो। तुम्हें शायद यह नहीं मालूम कि हिन्दोस्तान की युग युगों की सभ्यता और संस्कृति ने यहाँ वालों को इतना सहनशील बना दिया है कि तुम इसका अन्दाज़ा भी नहीं कर सकते। हिन्दोस्तानियों के धर्म में उपवास रखना और भूखों मरना एक साधना है, आध्यात्मिक निष्ठा है। इस बंगाल के उपवास से भारत की आत्मा पवित्र हो रही है, समझे। हिन्दोस्तानी अपमान और बेइज़्ज़ती की ठोकरें खाकर बहादुरी से शहादत की मौत मर जाते हैं; उनके लिए गेहूँ और रोटी का कोई सवाल ही नहीं उठता।

फिर भी, तुम्हारी दिलचस्पी के लिए मैं एक भूख की मौत का हाल लिखता हूँ, वह मौत जो तुम्हारी समझ में यहाँ ग़दर मचा

देती, लेकिन जो ख़ुद हिन्दोस्तानियों की निगाह में एक पानी के बुलबुले से अधिक महत्त्व नहीं रखती।

जाड़े के दिन थे—सुबह का वक़्त। यकायक मेरा कुत्ता बुरी तरह भूकने लगा। मैंने ओवरकोट डाला और मैं बाहर आया। दूर पर बिजली की मद्धिम रोशनी में कुछ भिखमंगे चले आ रहे थे। सबसे आगे एक छोटा-सा लड़का था, क़रीब ग्यारह वर्ष का और, तुम्हें यक़ीन न होगा, वह जंगली बिल्कुल नंगा था। रूखे-रूखे बाल, पीला चेहरा, बुरी तरह फ़ूला हुआ पेट और लकड़ी की तरह पतली टाँगे। उसके पीछे दो बुड्ढे थे। एक की लम्बी दाढ़ी में कीचड़ लगा हुआ था और दूसरे का एक पैर किसी बीमारी से फूल गया था। उनके पीछे तीन औरतें थीं, जिनके लिबास का हाल लिखना अश्लीलता होगी। उसमें से एक अभी कम उम्र की लड़की थी। एक तरफ़ उसके बालों ने और दूसरी तरफ़ उसके बच्चे ने उसकी छातियाँ ढक रक्खी थीं। यह हिन्दोस्तानी औरतों के पहिनाव का तरीक़ा है, जिसकी इतनी तारीफ़ तुम कर रहे थे, जब तुमने पेरिस में जूली को सारी पहिने देखा था। और जानते हो उसकी यह हालत क्यों थी? इसलिए नहीं कि उसको कपड़े नही मिल सकते थे, बल्कि इसलिए कि इस तौर से नंगे रहने पर उसे शायद आसानी से भीख मिल सकती थी। सबसे पीछे एक जवान आदमी था, जो धीमे-धीमे कराह रहा था, और दोनों हाथों से अपने पेट को दबाये था। शायद वह ज़्यादा खा गया था, क्योंकि तुम्हें यह नहीं मालूम कि हिन्दोस्तानी भिखमंगे कितने लालची होते हैं।

मेरे घर के आगे हिन्दोस्तानी मुसलमानों की एक क़ब्रगाह है। पहले मैंने सोचा शायद क़यामत का दिन आ गया है और क़ब्रों के पत्थरों को तोड़कर ये मुर्दे न्याय के लिए जा रहे हैं, क्योंकि तुम उनकी

शक्लों से ज़िन्दगी का कोई भी चिन्ह नहीं पा सकते थे। लेकिन उसी समय एक ऐसा वाक़या हुआ कि मुझे विश्वास हो गया कि वे ज़िन्दा हैं। मैं अपनी नन्हीं बेबी के लिए चाकलेट लाया था और उस पर लिपटा हुआ काग़ज़ राह में पड़ा था। आगे वाला नंगा लड़का अपनी पतली-पतली टाँगों पर झुका और लपककर वह टुकड़ा उठा लिया। पलभर उसे अजीब भूखी निगाहों से देखा और बड़े चाव से चाटा। और फिर चारों ओर निगाह घुमाकर झट से उसे निगल गया। मुझे बहुत ताज्जुब हुआ—हिन्दोस्तानी काग़ज़ भी खाते हैं। शायद करेन्सी नोट भी खा जाते होंगे। पर आजकल तो यहाँ काग़ज़ पर भी नियन्त्रण है।

ख़ैर तो वे इतने धीरे-धीरे चल रहे थे कि एक बिजली के खम्भे से दूसरे तक आने में उन्हें कम से कम बीस मिनट लगे होंगे। शायद वे सचमुच भूखे और कमज़ोर थे।

वह जवान भिखमंगा मेरे सामने रुका, शायद कुछ माँगने के इरादे से। तुम नहीं जानते कि मुझे इन भिखमंगों से कितनी नफ़रत है। मैंने फ़ौरन अपने कुत्ते को इशारा किया और वह झपटा। भिखमंगा भागा और लड़खड़ा कर गिर गया। कुत्ते ने अपने दाँत गड़ाये लेकिन मैंने उसे वापस बुला लिया—मेरा कुत्ता बहुत समझदार है—वह हिन्दोस्तानी नस्ल का है और नेटिव कुत्ते बहुत ही वफ़ादर होते हैं। मैंने भी उसे खिला-खिला कर इतना मोटा कर दिया है जैसे कोई हिन्दोस्तानी सेठ या पुलिस का दारोग़ा जिनकी तस्वीरें तुमने 'किपलिंग' की किताबों में देखी होंगी।

वह आदमी ज़ोर-ज़ोर से कराह रहा था। ठंड से उसका बदन जकड़ गया था और वह उठने की बेकार कोशिश कर रहा था। उसके साथी पल भर रुके, उन्होंने एक खूनी निगाह से उसकी ओर

देखा, अजीब तौर से सर झटका और रेंगते हुए आगे चले गये, उसे मरता हुआ छोड़कर। यह उनके लिए साधारण-सी बात हो गई थी।

वह लड़की रुकी। उसने अपने बच्चे को ज़मीन पर रख दिया। मुझे उस पर तरस आ रहा था और शायद मैं उसकी कुछ मदद भी करता अगर मैं एक अँग्रेज़ न होता क्योंकि एक अँग्रेज़ के लिए हिन्दोस्तानियों की मदद करना अपमानजनक समझा जाता है। मुझे विक्टोरिया कालेज में हिन्दोस्तानी विद्यार्थियों के सामने "सौन्दर्य का देश—भारत" विषय पर भाषण देना था; मैं उसकी तैयारी करने लगा।

शाम को जब मैं वापस आया, तो देखा वह आदमी चुपचाप पड़ा है। वह औरत कहीं चली गई थी। आधे घण्टे में वह लौटी। उसकी गोद में बच्चा था और एक हाथ में एक सड़ी रोटी का टुकड़ा, और केले के छिलके। वह पास आई और उस आदमी से कुछ कहा। उसने कुछ जवाब न दिया। पास में नाली धोने का नल था। उस लड़की ने अपना पल्ला भिगोया और उसके मुँह में दो बूँदें निचोड़ीं—पल भर रुकी और फिर वह रोटी का टुकड़ा उसके मुँह में डाल दिया। फिर भी आदमी कुछ न बोला, न हिला-डोला। उस औरत ने अपना सूखा हाथ उस आदमी की पसलियों पर रक्खा—उसके बाद उठी—पल भर चुप रही और उसके बाद सूखे गले से सुबकने लगी। वह आदमी मर चुका था।

औरत ने बच्चे की बाँह पकड़ी और रेंगते हुए सड़क के दूसरे किनारे पर सर थाम कर बैठ गई। जैसे उसने कोलतार से बनी हुई उस पतली सड़क को ज़िन्दगी और मौत की विभाजन रेखा समझ लिया हो।

वह आदमी निश्चेष्ट पड़ा था। उसके अधखुले मुँह पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं और मुँह में से आधी रोटी झूल रही थी। वह ऐसा मालूम पड़ता था जैसे सर चार्ल्स नेपियर का बयान किया हुआ हिन्दोस्तानी बाजीगर जो अपने मुँह से अजीब-अजीब चीज़ें निकाल देता है।

अँधेरा छा गया; वह औरत वहीं बैठी रही। रात को ऐसा मालूम हुआ कि टामी ठण्ड से कूँ-कूँ कर रहा है। रोज़ी ने उसे अपने बिस्तरे पर बुला लिया। पर वह आवाज़ बन्द न हुई। मैंने खिड़की खोल कर बाहर झाँका—ग़ज़ब की सर्दी थी, हिन्दोस्तान उतना गर्म मुल्क नहीं जितना तुम समझते हो। यहाँ काफ़ी सर्दी पड़ती है जिसका असर तुम हिन्दोस्तानियों की सर्ददिली में देख सकते हो।

वह औरत सड़क के उस किनारे से इस किनारे पर आ गई थी। पता नहीं किस ताक़त के सहारे उसने ज़िन्दगी और मौत के बीच की उस सड़क को पार कर लिया था, वह भी इस भूख और सर्दी में। उसका बच्चा भूख और सर्दी से कुनकुना रहा था। मेरी नींद उचट गई थी। मैंने देखा, वह औरत उठी, उस मुर्दे के पास गई और उसके मुँह से निकला हुआ रोटी का सड़ा टुकड़ा उस बच्चे के हाथ में दे दिया। बच्चा उसे खाने लगा, वह उसके मुर्दा बाप की देन थी—वह रोटी का सड़ा टुकड़ा, मुर्दे के मुँह से निकला हुआ। यक़ीन मानो राबर्ट।

बच्चे ने फिर चीख़ना शुरू किया। औरत फिर उठ कर मुर्दे के पास गई। उस पर से उसका वस्त्र जो एक फटा हुआ बोरा था, उठा लिया। मुर्दा वस्त्रहीन हो गया, पर फिर औरत झिझकी और काँपी—और टाट उसी पर डाल दिया। बच्चा काँप रहा था और

पसलियों में सर्दी से जमे हुए कफ़ की घरघराहट साफ़-साफ़ सुनाई पड़ती थी। वह मुर्दे की बग़ल में बैठ गई और आधा टाट अपनी ओर खींच लिया। उसने नीचे बच्चे को ढाँक कर दुबका दिया और बग़ल में ख़ुद लेट गई। एक ओर मुर्दा, बीच में बच्चा, और दूसरी ओर माँ—यह एक बंगाली परिवार था।

मुझे नींद आ रही थी। मैं सो गया। सुबह लाश उठाने की गाड़ी आई। मुर्दा भरते वक़्त मालूम हुआ बच्चा दो लाशों के बीच में था। माँ भी फिर सोकर उठी नहीं। उन्होंने माँ की लाश और बच्चे को बीच सड़क में छोड़ दिया। गाड़ी में जगह नहीं थी। शायद मुर्दों ने, बिना सरकार की असुविधा का ध्यान रक्खे, ज़्यादा से ज़्यादा संख्या में स्मशान-यात्रा का निश्चय कर लिया था।

मैंने तुम्हें बताया कि है, कि मेरे घर के आगे एक क़ब्रिस्तान है। और उस क़ब्रिस्तान के सामने एक सिख रेजीमेन्ट का पड़ाव। कभी-कभी तो चाँदनी में सफेद क़ब्रों और सफेद तम्बुओं में फ़र्क ढूँढ़ना मुश्किल हो जाता है। ख़ैर, गेहूँ और रसद की एक लारी उस ओर जा रही थी। सड़क पर लाश पड़ी हुई थी। लारी रुक गई, फ़ौजी उतरे और बन्दूक़ के कुन्दों से लाश को एक ओर हटा दिया। लारी चल दी। पर वह बेचारा बच्चा लारी के पिछले पहियों के नीचे आ गया—पच्च—एक दर्दनाक-सी आवाज़ हुई—एक ख़ून का फ़व्वारा छूटा और एक बड़ा-सा धब्बा वहाँ फैल गया। उस बच्चे की अतड़ियाँ टायरों में फँसी रह गईं और दूर तक लहू की लाल रेखा खिंच गई।

पीछे से कुछ आहट हुई। मैंने मुड़ कर देखा। रोज़ी ग़ुस्से से तमतमाई हुई खड़ी है। वह चीख़ कर बोली—"लारी रुकवाओ!'

मैंने उसे आहिस्ते से समझा दिया कि इसमें ड्राइवर का क्या क़ुसूर। बच्चे को दबने के पहले चीख़ना चाहिये था। दबने के बाद चीख़ना बच्चे की नासमझी थी—रोज़ी भी कभी-कभी तुम्हारी तरह भावुक हो जाती है।

यह एक अदना-सा वाक़या है। तुम ख़्याल कर रहे होगे, इससे बड़ी नाराज़गी फैली होगी—जाँच-कमीशन बैठा होगा—आन्दोलन मचा होगा।

यह सब कुछ नहीं मेरे दोस्त! सामने रहने वाली बंगाली लड़कियाँ उसी ख़ुशी और सजधज से कालेज गईं, बग़ल के सेठ जी का रेडियो उतनी ही सुरीली आवाज़ में हापुड़, मेरठ और दिल्ली के गेहूँ के भाव बतलाता रहा—किसी पर कुछ भी असर न हुआ। सिर्फ़ उस ग़ुलाम धरती पर ख़ून की रेखा खिंच गई और उसे भी मुसाफ़िरों के जूतों की रगड़ ने मिटा दिया।

यह यहाँ की हालत है। तुम्हारा विचार बिल्कुल ही ग़लत है। उम्मीद है तुम अपनी भावुकता को छोड़ दोगे और कामन्स में फ़िज़ूल के सवाल न पूछोगे। क्योंकि उनसे हिन्दोस्तानियों में तो नहीं, सम्भव है अँग्रेज़ों में ही कुछ असन्तोष फैले; और यह युद्ध-प्रयत्नों में बाधक हो।

हिन्दू या मुसलमान

सरकारी अस्पताल के बरामदे में ३० लाशें एक कतार में रक्खी हुई थी। लाशें, नही उन्हें लाशें कहना ग़लत होगा, मगर उन्हें ज़िन्दा भी नहीं कहा जा सकता था। वे सूखी हड्डियों के मुरदार ढाँचे जिन पर ज़र्द, झुर्रीदार चमड़ा मढ़ा हुआ था कलकत्ते की विभिन्न सड़कों से उठाकर लाये गये थे इलाज के लिये। उन्हें भूख की बीमारी हो गई थी और इसीलिये वे चलते-चलते सड़क पर गिर पड़ते थे और धीरे-धीरे दम तोड़ देते थे। हिन्दोस्तान जैसे ख़राब आबोहवा के देश में जहाँ आये दिन एक बीमारी चल पड़ती है, यह भी एक नई बीमारी चल निकली थी। झुण्ड के झुण्ड लोग गाँवो से चल पड़ते और चलते-चलते बिना दाँयीं और बाँयीं पटरी का ख्याल किये गिर पड़ते और फिर उठने का नाम न लेते। शासकों ने समझा यह सत्यागह का कोई नया तरीक़ा है मरने दो; मेडिकल विभाग ने समझा यह मलेरिया की कोई नई क़िस्म है जो बंगाल के लिये साधारण बात है। लेकिन बीमारी बढ़ती गई। जब सड़कों पर पड़ी हुई लाशों की वजह से, मारवाड़ियो की मोटरें, दफ्तर की बसें और फ़ौज की लारियों के आने-जाने में रुकावट होने लगी तो हमारी मेहरबान सरकार को फ़िक्र हुई, और इसलिये वे ३० भुखमरे, सरकारी अस्पताल में जाँच के लिये लाये गये और सावधानी से बरामदों में नरम और सीले हुये पक्के फर्शों पर लिटा दिये गये।

डाक्टर परेशान थे, नर्सें परेशान थीं। यह भी क्या बीमारी है ? और एकदम से तीस नये मरीज़।

बरामदे में शान्ति थी। एक सुनसान क़ब्रगाह की तरह डरावनी ख़ामोशी। मुर्दे ख़ामोश थे। एकाएक खटखट की आवाज़ हुई और एक नर्स बरामदे की सीढ़ियों पर चढ़ती हुई दीख पड़ी। चढ़ने में उसका मोज़ा नीचे खिसक गया और वह रुककर उसे ठीक करने लगी। उसके जूतों की खटखट शायद किसी भुखमरे के बेहया दिल से जा टकराई। उसने करवट बदली। नर्स आगे बढ़ी और जब उसके पास से गुज़रने लगी तो उसने बेबस निगाहें उठाकर नर्स की ओर देखा और बहुत प्रयत्न कर बोला—"पानी।"

नर्स पल भर को ठिठकी।

"उँह कहाँ तक कोई काम करे! सुबह से पोशाक भी तो नहीं सम्हाल पाई हूँ।" वह आगे बढ़ गई।

मरीज़ की प्यासी पसलियों से फिर दर्दनाक कराह उठी—"पानी।"

"मरने दो!" नर्स ने कहा। और बग़ल के कमरे में एक शीशे के सामने खड़े होकर गले में बँधे रूमाल की गाँठ खोलने लगी।

"पानी", घुटती हुई आवाज़ बोली। वह अभागा मरीज़ भी अपनी ज़िन्दगी और मौत की गाँठ खोलने में व्यस्त था।

नर्स परेशान थी। गाँठ खुल ही नहीं रही थी। वह आदमी चुप हो गया। नर्स ने अपनी पोशाक ठीक की और चली गई।

मरीज़ की कराह बन्द न हुई। बग़ल की लाश में कुछ हरकत हुई और कम्बल उठाकर एक बुढ़िया ने सर बाहर निकाला। उसके बाद वह उठी और कंकालों की तरह लड़खड़ाते हुये एक टीन के डब्बे में पानी लाई और मरीज़ के मुँह से लगा दिया। वह अपनी दम तोड़ रहा था। पहला घूँट गले से उतरा मगर दूसरा घूँट

हिचकी के कारण नीचे गिर गया। बुढ़िया ने क्षण भर मायूसी से मरीज़ की ओर देखा और उसके बाद चुपचाप कम्बल के नीचे लुढ़क गई।

इतने में नर्स डाक्टर को साथ लेकर लौटी और प्यासे मरीज़ की ओर इशारा किया। डाक्टर ने स्टेथेस्कोप लगाकर देखा। उस कम्बख्त की प्यास हमेशा के लिये बुझ गई थी। डाक्टर ने स्टेथेस्कोप हटाया और अजीब आवाज़ में कहा—"खतम।"......

फिर जेब से नोटबुक निकाली। घड़ी देखकर टाइम दर्ज किया और नर्स से पूछा—"यह भुखमरा कहाँ से लाया गया था।"

"सप्लाई आफ़िस के सामने से!" नर्स ने जवाब दिया।

"हिन्दू था, या मुसलमान।"

"मालूम नहीं।"

"मालूम नहीं? अच्छा इसके बग़ल वाले मरीज़ से पूछो?"

"नर्स ने बग़ल वाले मरीज़ को उठाया। वह नहीं उठा।

डाक्टर ने जूते से कम्बल उलट दिया और डाँटकर कहा—"उठो?"

बुढ़िया काँप कर उठ बैठी।

"यह आदमी कौन था?" डाक्टर ने पूछा।

"हुज़ूर यह आदमी भूखा था।"

"भूखा था? यह कौन पूछता है—ठीक से जवाब दो।" डाक्टर ने डाँटा।

"देखो! यह सरकारी काम है!" नर्स ने आहिस्ते से समझाया—"सरकार यह नहीं पूछती कि यह आदमी भूखा था या प्यासा। सरकार यह पूछती है कि यह आदमी हिन्दू था या मुसलमान? बोलो—अस्पताल के रजिस्टर में दर्ज करना है।"

"मालूम नहीं हुज़ूर!" बुढ़िया बोली।

"उँह जाने दो। अच्छा उधर वाले मरीज़ से पूछो?"

उधर वाला मरीज़ बोला ही नहीं। नर्स ने डाँट कर पूछा तब भी उसने जवाब नहीं दिया, क्योंकि वह मर चुका था और मुर्दों को मज़हब की पहचान नहीं होती क्योंकि वे ईश्वर के समीप पहुँच जाते हैं।

डाक्टर एक और नया मुर्दा देखकर चिंतित हुआ। उसने स्टेथेस्कोप लेकर जाँच करनी शुरू की। लगभग इक्कीस भुखमरे मर चुके थे।

डाक्टर ने अपने सहकारी को बुलाया और कहा—"देखो इन बचे हुये भुखमरों को एक-एक तेज़ इंजेक्शन देकर निकाल दो। वरना ये भी मर जायँगे।"

"यदि यहाँ नही तो बाहर मर जायँगे"! सहकारी ने उत्तर दिया।

"बाहर मरने की परवाह नहीं। यहाँ मरेंगे तो सरकार की बदनामी होगी। और देखो—अखबार को रिपोर्ट दो कि कुल ७ की मौत हुई। बाक़ी यहाँ लाने के पहले ही मर चुके थे। समझे।" और थोड़ी देर बाद बाक़ी भुखमरें निकाल दिये।

बुढ़िया बेहद कमज़ोर थी। वह पाँच क़दम चली और बैठ गई। पेट में जब भूख आँतों को मरोड़ने लगी तब वह फिर उठी और किसी तरह घसिटती हुई आगे बढ़ी।

बग़ल में एक साबुन की कम्पनी थी जिसके दर्वाज़े पर एक मोटा दरबान बैठा था। बुढ़िया उसके सामने गई और हाथ फैला दिये। लेकिन कुछ बोल न पाई। गले में आत्मसम्मान आकर रुँध गया। दरबान ने देखा और एक क्रूर हँसी हँसकर

बोला—"चल ! चल ! आगे बढ़, अगर तू जवान होती तो इज़्ज़त बेचने पर शायद ८-१० पैसे मिल भी जाते—अब किस बिरते पर भीख माँगने आई है। चल हट !"

बुढ़िया की झुर्रीदार पलकों में दो बेहया आँसू झलक गये। वह चलने को मुड़ी कि दरबान बोला—"तुझे ख़ैरात चाहिये। यहाँ ख़ैरात की कमी नहीं। हिन्दुस्तानी तो अपने बाप के मरने पर पर ख़ैरात करते हैं, फिर ज़िन्दा लाशों के लिये क्यों न ख़ैरात करेंगे। उधर जा, वहाँ सेटों ने धाबा खोल रक्खा है।"

बुढ़िया उधर की ओर चली। भोजनालय के द्वार पर बेहद भीड़ थी। हड्डियों के अनगिन कंकाल प्रेतों की भाँति सूखे हाथ फैलाकर बैठे थे। उबले हुये ज्वार की महक हवा में फैल रही थी। बुढ़िया ने एक गहरी साँस ली जैसे साँसों के सहारे पेट भरने की कोशिश कर रही हो।

कार्यकर्त्ताओं ने ज्वार की खिचड़ी से भरी हुई एक देग लाकर सामने रक्खी और करछुल से निकालकर ज्वार बाँटने लगे। एक हंगामा-सा मच गया। बुढ़िया उठी और कुत्ते को भगाकर देग खिसकाने का व्यर्थ प्रयास करने लगी।

इतने में एक कार्यकर्त्ता चीख़ा—"देखो ! देखो ! उसने देग छू ली।"

"देग छू ली ! हिन्दू है या मुसलमान ?"

"मुसलमान मालूम देती है।"

"निकाल दो कमबख्त को ?"

बुढ़िया लांछना से पीड़ित होकर उठ गई। उसका क़सूर क्या था ? क्या मुसलमान कुत्तों से भी बदतर होते हैं ?

सामने ही एक दूसरा धाबा था। उसकी हिम्मत न हुई वहाँ जाने की, लेकिन उस पर चाँद-तारे का एक हरा झण्डा लगा हुआ था। उसको कुछ सान्त्वना हुई और वह वहाँ चली गई। सामने एक वालन्टियर था। उसने रोका—"यहाँ सिर्फ़ मुसल्मानों को खाना मिलता है।"

"मैं भी मुसलिम हूँ", बुढ़िया ने जवाब दिया।

"सामने के धाबे से खाकर आई है, काफ़िर है; साफ़ काफ़िर, शकल से नहीं देखते।" दूसरा वालन्टियर बोला—

"भाग ! भाग ! यहाँ काफ़िरों की गुज़र नहीं, चल हट !"

बुढ़िया का चेहरा तमतमा गया और चीख़ कर बोली—

"ख़ुदा के बन्दो ! अल्लाह ने अनाज के दानों पर मज़हब की छाप लगाकर नहीं भेजा है। तुम्हारी ओछी बात सुनकर मुझे अपने मुसल्मान होने में शरम आती है।"

"पागल है !" एक बोला—

"भूख से दिमाग़ ख़राब हो गया है।"

"अल्लाह काफ़िरों को ऐसी ही सज़ा देता है।"

वह हाँफती हुई एक ओर चली गई।

दूसरे दिन कलकत्ते के एक प्रमुख दैनिक में छपा था—

"बंगाल के इस अकाल में समस्त भारत, प्रान्त और धर्म का भेद-भाव भुलाकर सहायता कर रहा है। मारवाड़ियों और इस्फ़हानियों, दोनों ने सार्वजनिक भोजनालय खोले हैं। इस सम्बन्ध में हम सरकारी अस्पतालों की मूल्यवान सहायता भी नहीं भुला सकते। हम इन सबके हृदय से कृतज्ञ हैं।"

इसके नीचे एक छोटी-सी, नगण्य और महत्त्वहीन खबर छपी थी।

"यद्यपि सरकारी अस्पतालों के कार्य से भुखमरों की संख्या में भारी कमी है, फिर भी अभी मौतें बराबर हो रही हैं। मुस्लिम धाबे के नज़दीक एक बुढ़िया की लाश पाई गई है जो ठीक वक्त से अस्पताल न पहुँच पाने के कारण मर गई। यह नहीं समझ में आता कि लाश जलाई जाय या दफ़नाई जाय, क्योंकि यह पहचान नहीं हो पाई है कि बुढ़िया हिन्दू थी या मुसलमान..........?"

कमल और मुर्दे

"कमल ? लेकिन स्वर्ग में तो कमल होते ही नहीं !" देवदूतों ने कहा।

"किन्तु बिना कमल के आज हमारा शृङ्गार अधूरा रह जायगा। शरद के निरभ्र आकाश पर बादल के हल्के क़दमों से बिजली की तेज़ी से नाचने वाली देवकन्याओं की वेणी कमल से शून्य रहेगी। इससे अच्छा तो यह है कि उत्सव मनाया ही न जाय," देवकन्याओं ने मचलते हुये कहा।

देवदूतों ने क्षण भर सोचा और उसके बाद सहसा एक देवदूत बोला—"अच्छा, मैं पृथ्वी पर जाकर कमल लाऊँगा। लेकिन किस रंग का ?"

"पीला, ज़र्द।"

"अर्थात् प्रभात के सुनहले आकाश की भाँति।"

"नहीं; और उदासी का रङ्ग, मुर्दों के चेहरे पर छाये हुये पीलेपन की भाँति।"

"असम्भव ! मुर्दों की भाँति ज़र्द कमल ! असम्भव है देव-कन्याओं ! कमल तो विकास का प्रतीत है, शुभ्रता का प्रतीक है। उसमें मुर्दों का पीलापन कहाँ से आ सकता है ?"

"तो उत्सव नहीं मनाया जा सकता।"

देवदूत चिन्ता में पड़ गये।

सहसा एक देव दूत बोला, "ठहरो ! मैं ऐसे देशों को जानता हूँ जहाँ के कमल ताज़गी के नहीं थकान के प्रतीक हैं। मटमैली लहरों पर उदासी की प्रतिमूर्ति की तरह शीश झुकाये रहते हैं। मैं ऐसे देशों को जानता हूँ जिनकी सरिताएँ विदेशी बन्धनों में बाँध दी गई हैं, जिनके पवन झकोरों को बेड़ियों में कस दिया गया है, जिनकी सूर्य रश्मियों के स्वतन्त्र विकास की हत्या कर दी गई है; और मैं जानता हूँ कि ऐसे देशों में फूलने वाले फूल मुर्दों की तरह पीले होते हैं। मैं अभी किसी ऐसे देश में जाकर पीले उदास कमल लाऊँगा।"

देवकन्याओं में उत्साह और प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। "किंतु जल्दी करो। जल्दी अन्यथा उत्सव का समय निकल जायगा", देव-कन्याएँ बोलीं।

समय कम था। देवदूतों ने चाँदनी से बनी हुई एक उत्तुङ्ग रुपहली शिला पर खड़े होकर पृथ्वी की ओर देखा। सफ़ेद वस्त्र पर काले धब्बों की भाँति वसुन्धरा पर ग़ुलाम देश बिखरे हुए थे। किंतु वे सब स्वर्ग से दूर थे। बहुत दूर। वहाँ तक जाकर कमल लाने का समय नहीं था। देवदूतों ने दृष्टि घुमाई। पूरब में एक ग़ुलाम देश था, जो ग़ुलाम होते हुये भी स्वर्ग से बहुत समीप था। वह अतुल शोभा से लदा हुआ देश, दूर से तो स्वर्ग की ही सीमा से घिरा हुआ मालूम देता था।

"वहाँ हमें कमल अवश्य मिलेंगे, मैं जानता हूँ। वह स्वर्ग-सा देश भारत है। चलो।" और वे देवदूत धूप के तारों से बुने हुये पंख पसार कर भारत की ओर उड़ चले। ऊँची-ऊँची हिमाच्छादित चोटियों को पार करते हुये वे भारत के पूर्वी भाग में पहुँचे। उन्होंने नीचे देखा हरियाली से लदी हुई घाटियाँ जिन्हें बादल अपने पंख

फैला कर धूप से बचाते हैं। "यह कामरूप है। यहाँ गन्धर्व-कन्याएँ सूर्य की प्रथम रश्मियाँ चुरा लेती हैं, और रात में जब कमल मुर्झाने लगते हैं तो उन चुराई हुई रश्मियों को बिखरा देती हैं, कमल खिल जाते हैं और उन प्रफुल्ल कमलों को वेणी में गूँथ कर वे निशा-शृङ्गार करती हैं। वहाँ कमल अवश्य मिलेंगे। आओ।"

दोनों देवदूत नीचे भारत-भूमि पर उतर पड़े। मगर वहाँ कही कमल का नाम-निशान नहीं था। दूर-दूर तक छोटी-छोटी लम्बी पत्तियों के पौदे उग रहे थे और साँवले रंग की फटी और मैली-कुचैली धोती पहने भूखी और अर्द्धनग्न स्त्रियाँ पीठ पर टोकरी लादे पत्तियाँ चुन रही थीं। पास में कुछ भूखे और अस्थिशेष बच्चे चीख़ रहे थे।

देवदूत आश्चर्य में पड़ गये। क्या यही भारत है। उन्होने चारों ओर अचरज से देखा। पौदों के बीच में उगी हुई एक कली पत्तों का घूँघट हटा कर उनकी ओर झाँक रही थी। देवदूत उसके पास गये और बोले—

"यह कौन-सा देश है कलिका ?"

"यह आसाम है। भारत का एक प्रान्त", कली ने जवाब दिया। उसके स्वर में एक अजबसी काँपती हुई उदासी थी।

"यहाँ कमल नहीं होते ?"

"नहीं, यहाँ केवल चाय होती है, देखते हो न ये पौदे। यहाँ इनकी खेती होती है।"

"खेती, किन्तु यह अन्न तो नहीं है, इनका उपयोग क्या है ?"

"ये तोड़ कर सुखा ली जाती हैं और उसके बाद यहाँ के शासक और शिक्षित वर्ग उसका पेय बना कर पीते हैं।"

देवदूतों ने आश्चर्य से एक दूसरे की ओर देखा।

"हरी वस्तु को सुखा कर उपयोग करने से क्या लाभ ?" उन्होंने पूछा।

कली एक फीकी-सी मुस्कान के साथ बोली—"देवदूतों ! इस देश में प्रत्येक हरी और अंकुरित होती हुई शक्ति को तोड़ कर, सुखा कर यहाँ के शासक उसे काम में लाते हैं, समझे।"

देवदूत चुप हो गये।

"अच्छा, यहाँ गन्धर्व-कन्याएँ नही होती हैं। शायद उनसे कमल का पता चल सके।"

"नहीं, यहाँ सिर्फ़ चाय की मज़दूरिनें होती हैं।"

"देखो देखो", बात काट कर एक देवदूत बोला—"वह देखो, एक गन्धर्व-कन्या जा रही है।"

पास की झोपड़ी से एक तरुणी कमर में केले के हरे पत्ते लपेटे हुये निकली, उसका बाक़ी सब शरीर नग्न था।

"यह पल्लवों से शृङ्गार किये हुये कोई गन्धर्व-कन्या मालूम देती है। आओ इससे पूँछे।"

"ठहरो !" कली ने रोका—"यह गन्धर्व-कन्या नहीं है। कपड़ों की कमी से लाचार, पत्तों से तन ढँककर बेशर्मी की ज़िन्दगी जीने वाली एक ग़रीब मज़दूरिन है। इसे गन्धर्व-कन्या कहकर इसका अपमान मत करो।"

"आश्चर्य है ! इस निर्धनता में भी ये लोग इतने कला-प्रिय हैं।"

"कलाप्रिय !" कली क्रोध से काँप गई—"यह कलाप्रियता नहीं लाचारी है। इस ग़ुलामी में किसी तरह बेशर्मी से जीने का एक बहाना है। ग़ुलाम देश में कला एक भयानक बेबसी का नाम है।"

सहसा कली चुप हो गई। हवा का एक झोंका पुलिस दल की तेज़ी से लहराता हुआ आ रहा था। "राजद्रोह फैलाती है कम्बख़्त !

ठहर !" हवा का झोंका बोला और अपने तेज़ प्रहारों से कली की पंखुड़ी-पंखुड़ी बिखराकर गर्व से इठलाता हुआ चला गया। वह ग़ुलाम धरती से उगी हुई कली फूलने के पहले ही नष्ट कर दी गई। कली के इस असामयिक अवसान को देखकर देवदूतों का मन भारी हो गया और वे आगे उड़ चले।

आगे चलने पर उन्हें विस्तृत समतल मैदान दीख पड़े जहाँ धान के हरे खेत लहलहा रहे थे और उनमें नदियाँ ऐसी मालूम दे रही थीं जैसे नीले आकाश पर टूटते हुये तारों की ज्योति-रेखायें। यह तो बंग देश मालूम होता है। हाँ, यह कविता-प्रधान देश है। यहाँ कवियों के गीत लहरों में घुलकर कमल में पराग की तरह महक उठते हैं। यहाँ नदियों के आस-पास नम भूमि में कमल ख़ूब मिलते हैं और दोनों देवदूत भूमि पर उतर पड़े।

दूर पर एक नदी के किनारे दूर तक चाँदनी की तरह सफ़ेदी लहरा रही थी—"वह देखो, वहाँ हज़ारों कमल लहरा रहे हैं।"

देवदूत वहाँ चले। पास आकर उन्होंने देखा कि वे भ्रम में थे। नदी के किनारे कमल नहीं वरन् सफ़ेद कफ़न में ढँके हुये सैकड़ों मुर्दे जलाने के लिये रक्खे थे। नदी का पानी गन्दी राख, अधजली लकड़ियाँ और टूटी हड्डियों से ढँका हुआ था। एक-एक चिता पर ३-३ और ४-४ लाशें एक साथ जलाई जा रही थीं। देवदूत भय-मिश्रित आश्चर्य के चीख़ पड़े।

"क्यों ? चीख़ क्यों पड़े देवदूत ?" राख से सनी हुई एक लहर से पूछा।

"हम यहाँ कमल की खोज में आये थे और हमें मिले कफ़न से ढके हुये मुर्दे।"

लहर हँस पड़ी। उसकी हँसी चिता के शोलों की तरह, भभक उठी। "इसमें अचरज क्या है देवदूत! पराधीन देशों में सौन्दर्य खोजने वाले कलाकारों को अक्सर बाहरी सौन्दर्य के आवरण में ढँके हुये मुर्दे ही मिलते हैं।"

"मगर इतने मुर्दे ?"

हाँ, यह पास के गाँवों में भूख से मरे हुये लोग हैं। आज भारत में सौन्दर्य, कला, जवानी और जीवन, सभी मौत की तराज़ू पर तौले जा रहे हैं।"

"अच्छा और कविता! यहाँ की कविताएँ अब जीवनदायिनी नहीं रहीं क्या ?"

"कविताएँ ?" लहर फिर एक ज़हरीली हँसी हँसकर बोली—"यहाँ की कविता ने भूख से अकुलाकर आत्महत्या कर ली।"

देवदूत निराश होकर आगे चले। नीचे एक शान्त गाँव था। खेतों में घास उगी हुई थी, झोपड़ियाँ सूनी थीं; और सामने लगे हुये केले के पेड़ों में सुनहली फलियाँ झूम रही थीं, मगर उन्हें तोड़ने वाले कहीं नज़र नहीं आ रहे थे। सारे गाँव पर एक अजब सन्नाटा छाया हुआ था। हरियाली से घिरा हुआ एक तालाब हरे चौखटे में जड़े हुये आईने की भाँति शोभित था।

"शायद उस तालाब में हसे कमल मिल जायँ।"

देवदूत उतर पड़े।

वहाँ एक भयानक दुर्गन्ध फैल रही थी। वह तालाब लाशों से पटा पड़ा था।

"क्या यहाँ कमल नहीं मिलते ?" देवदूतों ने पास से उगे हुये एक बाँस के पेड़ से पूछा।

"कमल! हाँ एक दिन था, जब स्वतन्त्र आकाश से बरसती हुई

स्वर्ण-रश्मियाँ लहरों को चूमकर बंगाल के तालाबों में कमल खिलाती थीं। मगर आज पूरब की परतन्त्र घाटियों से उगने वाले सूरज की कलंकित किरणें बंगाल के तालाबों में मुर्दे खिलाती हैं। आज धूप में जीवन-रस के स्थान पर अकाल की विभीषिका बरसती है देवदूत!"

और बाँस की पत्तियों से ओस के आँसू झर पड़े।

साँझ हो चली थी। साँझ के झुरपुटे में एकाएक तालाब की लहरों पर कमलों की भाँति बहुत से पीले और उदास प्रकाश-पुञ्ज खिल गये। मालूम होता था जैसे वह ज्योति के बने हुये कमल हों।

"यह क्या है?" देवदूतों ने आशा और भय से पूछा।

बाँस के पेड़ ने सिहर कर जवाब दिया—"ये, ये उन लाशों की भूखी और अतृप्त आत्माएँ हैं। साँझ होते ही ये अन्न की तलाश में निकल पड़ती हैं। मौत भी इनकी भूख नहीं बुझा सकी है।"

"बहुत ठीक। कमल मिलना तो कठिन है, चलो इन्हीं को स्वर्ग ले चलें—यह शृङ्गार के अच्छे उपकरण होंगे।"

"लेकिन—लेकिन मनुष्य की भूखी आत्माओं से उत्सव का शृङ्गार—यह तो पैशाचिकता है।"

"पागल हो गये हो क्या? हम लोगों का वर्ण हिम की भाँति श्वेत है न? और गोरी जातियों को काली जातियों की आत्माओं से खेलने का पूरा अधिकार है।" देवदूत ने जवाब दिया, और उन्होंने वे आत्माएँ बटोरीं और स्वर्ग की ओर उड़ चले। देव-कन्याएँ अधीरता से प्रतीक्षा कर रही थीं। उन्हें देखते ही प्रसन्नता से उछल पड़ीं। इस नवीन उपकरण से उन्होंने केश-शृङ्गार किया। लेकिन

वे भूखी आत्माएं क्लांत और मलीन होकर बुझ गईं। उत्सव रुक गया।

देवदूत फिर पृथ्वी की ओर उड़ चले। "लेकिन सुनो !" देव-कन्याएँ बोलीं—"अगर यह आत्माएँ इतनी जल्दी बुझती रहेंगी तो इतनी आत्माएं कहाँ से आवेंगी कि हम उनसे रोज़ शृङ्गार करें।"

"इसकी कोई चिन्ता नहीं। जब तक भारत बन्धन में है, तब तक वहाँ मुर्दों और भूखी आत्माओं की कमी नहीं—वहाँ लोग रोज़ मक्खियों की तरह मरते रहते हैं।"

देव-कन्याओं में व्यंग की एक हंसी गूंज गई। देवदूत भारत की ओर चल दिये।

तृतीय खण्ड

कलंकित उपासना

पूजा

वह आँसुओं और चुम्बनों से बनी हुई जलपरी की तरह सुकुमार थी। उसकी कजरारी आँखों में मधुमास की शामें लहराती थीं और उसकी केसरिया उसासें ऐसी अरसौंहीं अंगड़ाइयाँ लेती थीं जैसे पुरवैया नीले सावन की बूँदों से घायल हो जाय। लजवन्ती तरुणाई बचपन के पल्लवों में इस तरह दुबकी थी जैसे अंगूरी पल्लवों में सलोनी सुनहली धूप ढंकी हो। उसके अङ्ग-अङ्ग में शैशव के सपने टूट रहे थे और धीरे-धीरे उसकी वह अधखिली उमर आ गयी थी जब जवानी अपनी ही छाँह देखकर लजाने लगती है।

भागवतों के विशाल मन्दिर के आचार्य के पास वह रहती थी। उसका विधुर पिता सात्वत् क्षत्रिय था और मरने के पहले अपनी अतुल सम्पत्ति से यह मन्दिर बनवाकर उसे भी पुरोहित के पास धरोहर रूप में छोड़ गया था। वैष्णव अभिरुचि के अनुसार उसका नाम था—पूजा।

उनींदे गीतों और अधजगे फूलों की गोद में पलकर पूजा इतनी बड़ी हुई थी! उसकी ज़िन्दगी की कली की महज पन्द्रह पंखुरियाँ खिल पायी थीं मगर केसरिया जवानी उन्हीं में से फटी पड़ती थी।

आज शरदपूनो थी। मन्दिर में पूजा का अनुष्ठान हो रहा था।

आँगन में नीलकमल की पंखुरियों से जमुना की लहरें बनायी गयी थीं जिनमें श्वेत पंखुरियों के हंसों की एक पाँत तैर रही थी। द्वार पर मल्लिका की बन्दनवार थी और सोपानों पर कामिनी के पाँवड़े। आँगन में जूही के हारो की जाली तनी थी जिससे छन-छनकर चाँदनी बरस रही थी।

सहसा गङ्गाजल पर बहते हुए गुलाब की तरह आँचल से अलकों में उलझी हुई चाँदनी पोंछते हुए पूजा ने प्रवेश किया। मन्दिर की सारी चहल-पहल शान्त हो गयी। देवता के मुकुट में लगने वाली कलियों पर चम्पे के पराग का छींटा देते हुए आचार्य भी रुक गये और उन्होंने उत्सुक निगाहों से पूजा की ओर देखा। वह कहीं जाने के लिए तैयार थी। फर्श पर बिछीं कलियाँ उसके पैरों के महावर से रङ्ग गई थीं। हथेलियों से फूट पड़ने वाली अभी-अभी धुली हुई मेंहदी की झलक ऐसी लगती थी जैसे उसने मूठियों में रूप की रतनारी लपटें कैदकर रखी हों।

"कहाँ चलीं बेटी ?"—आचार्य ने बड़े स्नेह से पूछा।

पूजा ने मुड़कर अपनी सखी की ओर देखा, मुसकुरायी, फिर आधे मचलते हुए स्वरों में कहा—"कहीं नहीं, ये कुंकुम नौकाविहार के लिए ज़िद कर रही है। वैसे मैं तो सोचती थी आरती के बाद जाऊँ।"

आचार्य हँसे—"मैं समझता हूँ तेरी इच्छा। आरती से तुझे क्या मतलब ? तबीयत तो अपनी है नाम उसका लगाती है। जा !"

"चल कुंकुम"—पूजा ने कहा और फूलों ले ढेर के एक कमल ढूँढ़ने लगी।

आचार्य ने मुड़कर भागवत प्रतिमा की ओर देखा और बोले—"पूजा बेटी को मेरे देवता से प्रेम नहीं है। अभी नादान है! तुम नाराज मत होना गोपाल ! तुम्हारे अनन्य भक्त की थाती है।" फिर

जैसे कुछ सोचकर कहने लगे, गहरी साँस लेकर—"एक पाख और है। अगली अमावस्या को उसके भी भाग्य का निबटारा हो जायगा।"

पूजा ने कमल ढूँढ़ लिया था और उसे कुंकुम की वेणी में गूँथ रही थी कि अन्तिम वाक्य पर उसका ध्यान आकर्षित हो गया।

"क्या कहा बाबा तुमने ?"

"कुछ नहीं ! अभी गई नहीं तू ?"

"नहीं बाबा !" वह रेशमी दीपशिखा की तरह मचलकर बोली—"कैसा निर्णय ? नहीं बताओगे ? तो नही जाऊँगी मैं। जा कुंकुम तू !"

"ओह रूठ मत पगली। तेरे पिता एक मंजूषा मुझे सौंप गये हैं। जिसमें तेरे लिए कुछ आदेश है जो तब खुलेगी ज़ब तू अगली अमावस्या को सोलह वर्ष की हो जायगी। और फिर मुझे भी तेरी ममता से छुटकारा मिल जायगा। हे भगवान् !" एक लम्बी साँस लेकर उत्तरीय के कोने से अपनी बूढ़ी पलकों से आँसू पोंछते हुए आचार्य ने कहा।

पूजा कुछ लजा गयी। फिर मुँह बनाकर बोली—"हूँ ऐसी ही तो भारी लगने लगी हूँ तुम्हें मैं !"—और भाग गई।

लेकिन रात भर उसके दिल में गुदगुदी मचती रही। एक विचित्र सी उत्सुकता उसके प्राणों को झकझोरने लगी। अगले पाख में वह सोलह साल की हो जायगी और फिर जाने कौन सा रहस्यात्मक आदेश मिलेगा उसे। वह उन लड़कियों में से थी जिन्हें कल्पना, रहस्य और अभावों से प्रेम होता है। जो कुछ उनके जीवन में है उसकी उपेक्षा और जो नहीं है, चाहे वह कैसा हो, कुछ हो, उसके लिए बेहद प्यास। उसे पिता की याद नहीं थी अतः वे रहस्य थे,

अतः उसे प्यारे थे। वह देवता की छाया में पलकर बड़ी हुई थी, अतः स्वभावतया देवता के प्रति उसके मन में अवहेलना थी। जो उसके जीवन का यथार्थ था वह उसके लिए उपेक्षणीय था। जो कुछ उसके लिए दुष्प्राप्य था उसी पर उसकी कल्पना आसक्त हो जाती थी। इसीलिए रात को वह बहुत देर तक अपनी सोलहवीं वर्षगाँठ के सपने बुनती रही।

सुबह जब कुंकुम आयी तब भी वह बैठी थी अस्तव्यस्त सी। जब कुंकुम ने उसके मस्तक पर हँस के पङ्ख की तूली से बेंदी पूरना शुरू किया तो उसने पूछा—"क्या बनायेगी आज?"

"नील कमल!"

"न एक किरन मंजूषा बना जिसमें अमावस बन्द हो।"

"ओहो"—कुंकुम चुटकी लेकर बोली—"कोई कलाकार ढूँढ़ना इसके लिए। अमावस के बाद।"

"सुन तो" सहसा बात काटकर, आग्रह भरी मुद्रा से सर से पैर तक कुतूहल बनकर पूजा बोली—"अच्छा कुंकुम, क्या होगा उस मंजूषा में? क्यों री?"

"तुम्हारा भाग्य!"

"नहीं सच बता!"

"तुम्हारा भविष्य!"

"उँह, तू तो बात टालती है!" शोखी से कुंकुम के वक्ष पर बँधे मृणाल को कसते हुए पूजा बोली!

"आचार्य हैं?"—किसी ने द्वार पर से पूछा।

झट से कुंकुम ने अपना आँचल सम्हाला।

द्वार पर एक युवक था जिसके वेश और रूप से लापरवाही टपकती थी। सवाल में लापरवाही थी और ऐसा लगता था जैसे वह

उत्तर के प्रति भी लापरवाह रहेगा। बड़े-बड़े उलझे बाल जो घुँघराले होते-होते रह गये थे। कृश लेकिन प्रदीप्त चेहरा. जिसकी रेखाओं में भावनाओं का चढ़ाव-उतार था। उसका सारा व्यक्तित्व ऐसा था जैसे किसी कच्चे बादल की साँवली छाँह।

"नहीं हैं आचार्य ?"—उसने प्रश्न दोहराया।

"जी नहीं"—कुंकुम बोली—"आपको क्या काम है ?"

"मुझे संगमरमर के टुकड़े चाहिए।"

"उन्हीं के आने पर मिल सकेंगे !"

"मुझे संगमरमर के टुकड़े चाहिए। तुम चुप क्यों हो ?"—उसने कुंकुम की अवहेलना करते हुए कुछ अधिकार और कुछ तीखेपन के स्वर में पूजा से कहा।

"तो मैं क्या करूँ ?" थोड़ी नाराजगी और थोड़ी शोखी के स्वरों में पूजा ने कहा—"कोई मैं संगमरमर का टुकड़ा थोड़े ही हूँ !"

"खैर, खुशी है तुम्हें अपने बारे में असलियत मालूम है। वरना ज्यादातर लड़कियाँ तो अपने को यही समझने के भ्रम में रहती हैं।"

इस उत्तर पर पूजा का चेहरा कानों तक लाल हो गया। गुस्से से या शरम से, यह नहीं मालूम।

युवक क्षण भर खड़ा रहा फिर बोला—"उनसे कह देना कि पत्थर जल्दी भेज दें वरना मूर्तियाँ न बन पायेंगी।"

और वह चला गया।

कुंकुम क्षण भर चुप रही—फिर ओंठ काटते हुए बोली—"कौन है यह ?"

"यह आचार्य के सब से मेधावी शिष्य हैं। मूर्तिशिल्प सीखने गांधार गये थे। अब वापस आये हैं। मन्दिर में नये प्रकोष्ठों का शृङ्गार कर रहे हैं !"

"हूँ, नाम क्या है इसका?"

"नाम तो किसी को नही मालूम। हाँ, आचार्य इनकी प्रतिभा देखकर इन्हें नक्षत्र कहते हैं!"

"क्या कहते हैं?"

"नक्षत्र!"

"नक्षत्र? ओह, व्यक्ति की अपेक्षा तो नाम कही ज्यादा अच्छा है।"

"पत्थर अच्छा है! शिल्पी हैं ये?"—और अपने पतले मूँगिया होठ बिचकाकर पूजा बोली—"इन कलाकारों से तो मैं नफरत करती हूँ!"—और कहते-कहते नफरत का ऐसा भावनाट्य किया कि कुंकुम खिलखिलाकर हँस पड़ी और बोली—'मगर बड़ी प्यारी है तुम्हारी नफ़रत!"

पूजा इस हँसी पर चिढ़ गयी।

और इसीलिए दूसरे दिन सायंकाल को जब आचार्य ने कहा—"पूजा बेटी, जरा ये चित्र तो दे आना नक्षत्र को?"—तो पूजा ने फौरन कहा—"मैं नहीं जाती वहाँ!"

"जा बेटी, देवता का काम है। वह बेचारा दिन रात लगा है। बिना प्रति दिन एक मूर्ति सजाये प्रसाद नहीं लेता। जा!"

पूजा ने चित्र ले लिया और चल दी, एक ऐसी रंगीन अनिच्छा से जिसके मूल में न जाने कितनी तीखी इच्छा थी।

वह गयी और कक्ष का पर्दा हटाकर भीतर झाँका। एक चन्दन-पीठिका पर बैठा हुआ कलाकार नक्षत्र एक पत्थर पर किसी मूर्ति की रेखाएँ तराश रहा था। वह भीतर गयी। मगर वह तल्लीन रहा अपने कार्य में। वह क्षण भर खड़ी रही। नक्षत्र ने उसे तीखी और

रहस्यमयी निगाहों से देखा और फिर अपने कार्य में लग गया। मगर सचमुच उस निगाह में जाने कैसा नीला जादू था कि वह टूटे हुए नक्षत्र की तरह उसकी पसलियों में पैठ गयी। जाने क्यों एक सिहरन उसे झकझोर गयी। उस समय उसे लगा जैसे उसके चारों ओर दीवारें नहीं हैं, और वह देश और काल की अनन्तता में, शून्य की पृष्ठभूमि में, जहाँ चाँद नहीं है, सूरज नहीं है आकाश भी नहीं है—वहाँ किसी सपने की साँझ में अकेली खड़ी है, किसी हलके नीले नक्षत्र के सहारे! एक अनोखी बर्फानी शीतलता उसके प्राणों में भर गयी और लगा जैसे वह घुट जायगी......और इसीलिए घबड़ाकर वह बोल उठी—"यह चित्र...यह भी कहाँ की शिष्टता है? कला में इतना खोना भी क्या? इसीलिए तो मैं कला से नफरत करती हूँ।"

"धन्यवाद!"—नक्षत्र मुस्कुराया—"मगर अपनी यह श्रद्धांजलियाँ बिना माँगे ही क्यों बिखेरती रहती हैं आप?"

उसके बाद हाथ के प्रस्तर खण्ड को पास रख कर वह बोला—"हाँ अब कहिए। आप कला से नफरत करती हैं? मैं बहुत कृतज्ञ हैं। आज पहला व्यक्ति मिला मुझे कम से कम जिससे मेरा भावसाम्य हो।—" उसके हाथ से चित्र लेते हुए नक्षत्र ने कहा।

"भावसाम्य हो?"

"हाँ पूजा, मैं भी कला से नफरत करता हूँ। कल्पना से नफरत करता हूँ। सच तो यह है मैं हर चीज से नफरत करता हूँ जिसमें भावना का कोई भी स्थान हो। और कला भी उनमें एक है।"

"और फिर भी आप इतने उत्कृष्ट कलाकार हैं?"

"हाँ यही मेरे जीवन का अंतर्विरोध है। क्यों, यह मैं नहीं समझ पाता। जो मेरी व्यक्तिगत धारणाएँ हैं वह कला में उतर नहीं पातीं; जो मेरी कला की रेखाएँ हैं, ज़िन्दगी उन पर चल नहीं पाती। मेरी

कला मेरे व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं है—अन्तःसंघर्ष है। मेरे व्यक्तित्व और कला दोनों को आपस में लड़ना पड़ा है। दोनों एक दूसरे के विरोधी हैं।"

"लेकिन तुम्हारी कला तो बहुत सुन्दर है।"

"मेरा व्यक्तित्व उसी का उल्टा। मेरे साथी कहते हैं तुम्हारी कला जितनी स्पष्ट और सुकुमार है, व्यक्तित्व उतना ही उलझा और क्रूर।"

"मुझे तो तुम्हारी कला की अपेक्षा तुम्हारा व्यक्तित्व अधिक आकर्षक लगता है"—लाज से सकुचकर बहुत धीमें से पूजा बोली।

"क्या"—नक्षत्र सुन नहीं पाया!

"कुछ नहीं"—उसने जल्दी से कहा और लजाकर पास रखे हुए कमल की पँखुरियाँ गिनने लगी।

"खैर कुछ हो! मुझे खुशी हुई कि कम से कम एक व्यक्ति मिला जो किसी तरह भावनाओं से नफरत करता है। लेकिन सच कह रही हो तुम ?"

"क्यों, झूठ क्यों बोलूँगी मैं!"

"नहीं, यह बात नहीं है। बात यह है कि देवताओं ने पुरुष को वाणी इसलिए दी है कि वह अपनी भावनाओं को प्रकट करे, और स्त्री को वाणी इसलिए दी है कि वह अपनी भावनाओं को साफ-साफ छिपा जाय।"

"तुम बड़े वाचाल हो"—वह कह उठी फिर अपने ही साहस पर लजा कर उठकर भाग गयी।

दूसरे दिन पूजा आयी, जब चिड़ियाँ पङ्ख खोले विहान की धूप में नहा रही थीं। नक्षत्र कल की तराशी मूर्ति को कमलपत्र में

लपेट रहा था । बिना मुड़कर देखे ही उसने पूछा—"कोई चित्र ?"

"नहीं, क्या कलाकारों के कक्ष में चित्र लेकर ही आ सकती हूँ, व्यक्तित्व लेकर नहीं ।"

उत्तर पर नक्षत्र चौंक उठा । मूर्ति एक ओर रख दी और पूजा की ओर देखा ।

विचित्र-सा वेश था उसका । कानों में शिरीष कलिकाओं के कुण्डल थे और कलाइयों में मृणाल के कंगन । जाने कैसी लगती थी वह ! फूल के पङ्खों वाली गौरैया की तरह शैशव के प्रकाश में लिपटी हुई मगर तरुणाई की धूप में पङ्ख डुबोने के लिए आतुर ! बाल खुले थे जैसे बादलों की तहें खुल गयी हों । लेकिन वे काले भौंराले नहीं थे, एक हलका सुनहलापन था उनमें जैसे काली तितली के पङ्खों पर पराग की धूल ।

नक्षत्र ने देखा और बोला—"इस समय तो तुम स्वयम् चित्र हो, व्यक्तित्व नहीं ?"

"चली जाऊँगी फिर मैं !"

"अच्छा नहीं, देखो यह मूर्ति कैसी बनी है ?"

पूजा क्षणभर ध्यान से उसे देखती रही फिर बोली—"यह मूर्ति उतनी ही खराब है जितना अच्छा तुम्हारा व्यक्तित्व । ओह, उलटा कह गयी मैं ! क्षमा करना ।"

नक्षत्र मुसकुरा पड़ा—कैसी लहरिया शरारत थी उसकी बातों में । पास के वातायन से झरती हुई दो-चार किरनें उसकी अलकों में उलझ गयी थी । नक्षत्र के प्राण न जाने क्यों व्याकुल से हो उठे । उसे लगा काश वह एक रेशमी चुम्बन होता जो हवा की लहरों पर तैरता, कभी चुपके से उसके ओठों पर बैठ जाता, क्षण भर उसकी साँसों में पङ्ख सुखा कर फिर उड़ जाता । जाने कैसे नशे में डूब गये

थे उसके प्राण कि वह फिर सम्हल गया और नशीले स्वरों में बोला—"तुम सचमुच संगमरमर का टुकड़ा हो !"

"तो मुझे भी तराशकर कला की मूर्ति बनाने का इरादा है क्या ?"

"हूँ, पहले तो देवताओं की मूर्तियाँ बनाने से अवकाश तो मिले।"

पूजा क्षण भर चुप रही। फिर पास आकर बैठ गई और बोली, "एक बात पूँछू बताओगे ?"

नक्षत्र ने केवल आँखों से पूछा—"क्या ?"

"क्या तुम्हारी कला में केवल देवता को स्थान है, नारी का कोई भी स्थान नहीं।"

नक्षत्र प्रश्न पर चौंक उठा। बड़ा अप्रत्याशित प्रश्न था और बड़ा ही बेमौका। वह उलझ सा गया।

"अच्छा जाने दो। तुम्हारी कला तुम्हारे देवता की साधना है न ? तो यह बताओ तुम्हारे देवता के जीवन में नारी का कोई स्थान है या नहीं ?"

नक्षत्र तब तक सुलझ गया था—"ठहरो ! मैं तुम्हारे दोनों प्रश्नों का उत्तर देता हूँ। वैष्णवों का देवता है क्या ? पत्थर की मूरत नहीं। वह है प्रेम की समष्टि का प्रतीक। व्यक्तित्व से ऊपर उठकर एक सर्वव्यापी भावना, प्रेम की। उसके जीवन में नारी के स्थान का प्रश्न ही नहीं उठ सकता। हाँ, नारी के जीवन में प्रेम का स्थान है, महत्त्व है। नारी की आत्मा में प्रेम उज्जवलता फैलाता है मगर प्रेम की आत्मा में नारी का प्रवेश......!"

"मलिनता फैलाता है क्यों ?" बात काटकर पूजा बोली—"हूँ, अच्छी धारणाएं हैं तुम्हारी। अच्छा वैष्णव देवता के जीवन में यह हुआ, अब वैष्णव कलाकार के जीवन में नारी का क्या स्थान है ?"

"वैष्णव कलाकार के जीवन में नारी का स्थान विचित्र-सा है। वह अपने जीवन में आये हुए हर प्यार को देवता के चरणों पर चढ़ा देता है। नारी उसके लिए महज एक दीप है जिसे वह आरती की तरह अपने देवता के चारों ओर बुन देता है। वह एक पूजाफूल है जिसे वह देवता को अर्पित कर देता है।"

पूजा खड़ी हो गई। बड़ी गम्भीर वाणी में उसने कहा—"नक्षत्र, तुमने यह धारणाएँ सोचकर, दर्शन पढ़कर, अध्ययन करके बनाई हैं। मगर अब भी तुम जीवन का रहस्य नहीं पा सके हो। मैंने केवल किसी की साँसों में घुलकर जो रहस्य पाया है वह कहीं ज्यादा महान् है। मैं व्यक्ति से परे किसी देवता को नही मानती। हाँ, यह मानती हूँ कि कोई व्यक्ति ही किसी का देवता हो सकता है।"

नक्षत्र ने कुछ कहना चाहा, मगर पूजा रुकी नहीं—"मैं जो कुछ कह रही हूँ वह शायद मन से नहीं, प्राणों से नहीं, शायद आत्मा से कह रही हूँ। नक्षत्र, देवता की पूजा यह नहीं है कि उसके चरणों पर सब कुछ चढ़ा कर निश्चेष्ट बने रहो। उसकी पूजा का अर्थ स्वयम् देवता बन जाना है।"

"पूजा".. उद्विग्न स्वरों में नक्षत्र ने कहना चाहा।

पूजा रुकी नहीं—"और नक्षत्र, याद रखो किसी को देवता बनाने वाली नारी होती है। अपने आँसू के फूल किसी के चरणों पर चढ़ा कर उसे देवत्व की ऊँचाई तक पहुँचा देती है। पुरुष पूजा स्वीकार करता है, देवता बनता है। नारी आँसू दान करती है, देवता बनाती है। तुम्हारे इस देवता के जीवन में नारी का कोई स्थान नहीं है? ग़लत। तुम अपने कृष्ण के युद्ध की गाथायें गाते हो। सुदूर ग्रामों से आने वाली आभीर कन्याएँ कृष्ण के प्रणय और रास के गीत गातीं हैं। उनसे पूछना है मुझे कि कौन-सी वह विशेष गोपी है जिसने अपनी एकान्त आराधना से शिशु गोपाल को भगवान् बना दिया

था। मगर अब तो कृष्ण भगवान् बन ही गये। अब उस आराधिका से किसी को क्या मतलब! उसे भूलना ही ठीक समझा लोगों ने। लेकिन नक्षत्र, तुम कलाकार हो, तुम्ही अगले आचार्य होने वाले हो। अगर अभी तक तुम लोग देवता के जीवन में नारी का स्थान भूले रहे हो तो अब उसे स्थापित करो। तुम्हें अपने देवता के जीवन में उस अज्ञातनामा राधिका को स्थापित करना ही होगा। उसके बिना तुम्हारा देवता अपूर्ण रहेगा, और तुम भी अपूर्ण रहोगे। समझे!"

इतना कहते-कहते वह हाँफने सी लगी और फिर पागलों की तरह भागी।

"पूजा!" नक्षत्र ने पुकारा मगर वह रुकीं नहीं।

कुछ देर तक नक्षत्र अपने कक्ष में बेचैनी से टहलता रहा। मन्दिर के बाहर आभीरों का एक दल गीत गाता हुआ जा रहा था। नक्षत्र ऐसा बेचैन था कि वे भोले-भाले स्वर भी उसकी नसों पर चोट करने लगे। वह अकुला उठा। उसे लगा जैसे न जाने कौन सी प्रवंचना नसों के सहारे उसकी आत्मा में प्रवेश कर गई है और वहाँ बैठकर कभी अपने आँसुओं से कभी अपनी मुस्कानों से उसके सारे व्यक्तित्व को ही बदले डाल रही है। उसे लगा जैसे किसी ने उसकी आत्मा को चुम्बनों से ढक दिया है और हर चुम्बन शत-शत पंख बन कर उसे दर्द के देश में उड़ाये लिए जा रहा है। वह भाग कर देवता के मन्दिर में गया और पट बन्द कर लिये। देवता के पैर पकड़ कर बोला—"मेरी पूजा!" और अपने सम्बोधन पर वह खुद ही काँप गया, फिर क्षण भर चुप रहा और गहरी साँस लेकर कातर स्वरों में बोला—"मेरे देवता। यह मुझे हो क्या गया है? मैंने अभी तुम्हें पुकारा मगर वाणी पर उसका नाम क्यों उतर आया। तुम जानते हो कि मैंने अपने व्यक्तित्व के चारों ओर इतनी उलझन, इतनी अस्पष्टता इसीलिए बुन रखी थी कि मेरे हृदय में

बसने वाले भगवान् का सौन्दर्य अनदेखा रहे, अछूता रहे। लेकिन किस अभाग्य के क्षण में वह मेरे व्यक्तित्व के बादलों को चीरती हुई आत्मा की गहराई तक उतर गयी। और जाने क्यों अब ऐसा लगता है कि वहाँ से उसे निकाल न सकूँगा। अच्छा, एक बात बताओ देवता, तुमने मेरी भली बुरी हर प्रकार की पूजा स्वीकार की है। अगर मैं उसे तुम्हारे चरणों पर चढ़ाऊँ तो क्या तुम स्वीकार न करोगे ? नहीं देवता, वह तुम्हारे प्रति उपेक्षाशील भले हो मगर मैं क्या करूँ मेरे हाथों में तो वही फूल आ गया है। मैं उसी को अपनी अंजलि में सहेज कर, साँसों से धोकर, आँसुओं से निखारकर तुम्हारे चरणों पर चढ़ाऊँगा। और तुम्हें स्वीकार करना ही होगा मेरे भगवान् !" उसने याचना में ही नहीं वरन् आग्रह के स्वरों में यह सब कहा और देवता की चरण-रज लेकर चला आया।

और फिर उसके मन की व्याकुलता कुछ शान्ति हुई। वह धीरज से पूजा की प्रतीक्षा करने लगा, और प्रतीक्षा करते-करते वह मूर्तियाँ बनाने में तल्लीन हो गया।

और एक दिन उसके प्राणों पर मँड़राते हुये बादलों को देखकर आकाश में भी क्वार-कार्तिक के परदेशी बादल आये। हवा में एक नमी, खुन्की, घुलमिल गई और झोंके इतने तीखे और तेज हो गये कि लगने लगा कि साँझ के सितारों को उड़ा ले जायँगे। नक्षत्र ने अपनी मूर्तियाँ एक ओर रक्खीं। उठकर बाहर चला आया और द्वार पर टिक कर पूजा के बारे में सोचने लगा जैसे कोई मलयज का झोंका फूल की सुकुमार पंखुरियों में उलझ जाय।

थोड़ी देर में उसने देखा—दूर पर पूजा जा रही है। हलके फालसई रंग के वस्त्र को समेटती हुई वह ऐसी लगती थी जैसे ऊदी बदलियों में लिपटी चम्पई बिजली का टुकड़ा झोंकों पर उड़ रहा

हो। नक्षत्र का मन नाच उठा। उसने उल्लास के स्वर में पुकारा—"पूजा !"

पूजा रुक गयी, मुड़ी, मगर फिर चल दी।

नक्षत्र ने फिर पुकारा—वह ठिठक गई और फिर चली आयी।

"क्यों, इतने दिनों से नहीं आयीं पूजा ?"

पूजा चुप रही। वह उदास थी और कुछ आहत भी।

"बोलतीं क्यों नहीं ? मैं इस समय तुम्हारे ही बारे में सोच रहा था।"

"ओहो ! देवता के साधकों को मनुष्यों के बारे में भी सोचने का अवकाश मिल जाता है ?"—उसने बहुत गम्भीर स्वर में कहा—"मेरे विषय में सोचने का व्यर्थ कष्ट किया आपने।"

नक्षत्र व्यंग समझ गया। लेकिन उसके पीछे की घुलती हुई उदासी पहचानकर वह डर गया।

"नहीं पूजा, व्यंग फिर कर लेना—लेकिन सचमुच तुम आयी क्यों नहीं ?"

"मुझे कोई चित्र नहीं पहुँचाना था और रही मेरे आने की बात तो एक दिन मैं चित्र ज़रूर थी मगर न जाने किस अभागे क्षण में किसी की एक दृष्टि-किरण ने मुझ में प्राण फूंक दिये। उसके बाद मैं बन गई व्यक्तित्व—नारीत्व और फिर यहाँ आकर अपमान सहने की इच्छा नहीं हुई।"

"अपमान तुम्हारा किसने किया पूजा ?"

"तुमने, तुमने नक्षत्र ! उस दिन मैंने दुर्बलता के क्षण में जाने क्या-क्या कह दिया; वह जो मैं कभी भी नहीं कहना चाहती थी। मैंने क्यों कहा तुमसे कि नारी किसी एक को देवता मान लेती है। मैंने क्यों कहा तुमसे कि तुम्हें भी कोई देवता मान बैठा है।"

"पूजा !"—काँपते हुए स्वरों में नक्षत्र ने कहा।

पूजा के स्वरों में आँसू घुल गये थे और वह पिघल रही थी। सिसकती हुई बोली—"नहीं नक्षत्र, तुम नहीं जानते—तुम्हारे लिए दुनिया देवता है, मुक्ति है, स्वर्ग है, न जाने क्या-क्या है? नारी के लिये यह सब कुछ नही है। मेरी सारी दुनिया महज पलकों की एक बूँद में उतर गयी थी और प्राणों के दर्द की वह बूँद मैंने किसी के चरणों पर चढ़ायी और उसने उपेक्षा से उसे झटक दिया। यह वेदना नहीं, उससे बढ़कर, अपमान है।"

नक्षत्र चुप था। उसने कातर निगाहों से पूजा की ओर देखा।

उसके चेहरे पर एक रुपहली उदासी थी और एक गुलाबी आग थी। दो अजनबी सपने पिघल कर छलक आये थे लेकिन गालों पर गर्व की रतनार लपटें थीं। उनके बोझ से गुलाब की पत्तियों जैसे ओठ काँप रहे थे। आवेग से गले की एक नीली नस रह-रहकर काँप उठती थी जैसे कमल की श्वेत सुकोमल पंखुड़ी पर टूटकर गिरा हुआ भौंरे का तड़पता हुआ पंख। धुँआ-धुआँ सी नज़रें, जैसे मेघदूत के कचनार बादल घिर आये हों।

नक्षत्र पागल हो गया। वह आगे बढ़ा और अपने आप पूजा की अँगुलियाँ उसके हाथों में आ गयीं। पूजा की साँसे बादल के रेशों की तरह काँप उठी लेकिन उसने हाथ हटाया नहीं।

नक्षत्र को लगा जैसे उसके हाथों में तुषार-शीतल बिजलियाँ उलझ गई हों। उसने काँपते हुए स्वरों में कहा—"पूजा, मैं न जाने क्या कहना चाहता हूँ। मैंने तुम्हारी उपेक्षा नहीं की। अपमान नहीं किया। पूजा, तुमने कम से कम अपने को व्यक्त कर दिया। मैं वह भी नहीं कर पाया था।"

"मैंने अपने को व्यक्त कर दिया; यह मेरी कितनी बड़ी हार है नक्षत्र! यह तुम कभी नहीं समझोगे। मैंने सोचा था मैं अपने पूजा-गीत को प्राणों की तहों में छिपाकर रखूँगी जहाँ मेरी वाणी तो दूर

मेरा मन भी न जान पायगा कि पूजा किसकी है। लेकिन न जाने कौन सा जादू था तुममें कि तुम अन्तरतम में प्रवेश कर मेरे हृदय के रहस्यों को चुरा लाये। और उस पर स्वयं अपने को इतना तटस्थ रखा तुमने कि मुझे ही अपने आँसुओं से आत्मसमर्पण लिखना पड़ा; और तुम विजेता की तरह मुसकुराते रहे। और उस आत्मसमर्पण का मूल्य भी क्या है तुम्हारी निगाह में; कुछ भी नहीं। वह तो तुम्हारी विजय सम्पत्ति है। उसे चूमना व्यर्थ है। उसे तो ठुकरा देने में ही विजय का गौरव समझा है तुमने।"

"नही पूजा, तुम नहीं जानती कितनी बार मैं साँसों से तुम्हारे आँसू चूमता रहा हूँ। इधर तुम कितनी नशीली प्रेरणा बन चुकी थीं यह तुमसे भी कभी नही बताया मैंने। मगर यकीन मानो मेरी कला की हर रेखा में, मेरी मूर्तियों के हर उभार में, मेरी हर कल्पना में, हर निर्माण में तुम्हारी सासें गूँजी हैं। इन पत्थर के टुकड़ों पर मैंने तुम्हारी कहानी लिखी है। मेरी कला महज़ तुम्हारी अभिव्यक्ति रही हैं, पूजा!"

"फिर तुमने छिपाया क्यों? मेरा अभिमान भी टूटा और···" पूजा फिर सिसकने लगी।

"अभिमान तोड़ने के लिए मैंने नही छिपाया। मैं न जाने कब से इन पत्थर के स्वरों में व्यक्त करता रहा हूँ अपने को। लेकिन अपने प्राणों में समाकर भी तुम्हें इतने दूर महज़ इसलिए रखा कि तुम्हारा प्यार मेरे लिए केवल प्रतिस्नेह की नहीं, पूजा की वस्तु रहा है। लेकिन वह पूजा मैं अपने तक सीमित नहीं रखना चाहता। यह मुझे स्वार्थ लगता है। तुम इतनी पवित्र हो, इतनी निश्छल हो कि तुम मेरे नहीं मेरे देवता के योग्य हो। तुम नहीं जानतीं कि मेरे जीवन-दर्शन में प्यार की आकुलता के साथ-साथ एक इतना कठोर संयम है जो तुम्हें केवल अपने में बाँधकर संतुष्ट नहीं हो सकता।"

"लेकिन मैं किसी देवता को नहीं मानती ! नक्षत्र मेरे देवता, मैं तुम्हीं में बँधना चाहती हूँ ।"

नक्षत्र ने उसकी उँगलियाँ छोड़ दीं और उसकी नरगिसी निगाहों को अपनी निगाहों से चूमते हुए कहा—"पूजा, मैं बाँधने के लिए नहीं हूँ। शायद प्यार के उस लक्ष्य में मेरी आत्मा भी नहीं है। मैं तुम्हारा लक्ष्य नहीं बनना चाहता। मैं तो महज पथ का दीपक हूँ। प्रकाश लो, मुझमें उलझो मत। तुम्हारी मंजिल मुझसे भी ऊपर उठकर है। बस उसी की ओर उन्मुख करना मेरा लक्ष्य है। तुम्हारी प्रेरणा मेरी शक्ति रही है। मैं चाहता हूँ तुम मेरा प्यार लो और अपने पथ पर बढ़ती रहो। मैं महज पूजाफूल की तरह देवता के चरणों पर तुम्हें चढ़ा देना चाहता हूँ।"

"और इसे तुम अपना त्याग समझते हो नक्षत्र। यह स्वार्थ है, दुर्बलता है। जानते हो बिना पूजाफूल के कभी भक्त को देवता के मन्दिर में जाने ही को नहीं मिलता। देवता से वरदान पाने की लालच में किसी फूल को तोड़ लेना, देवता के चरणों पर चढ़ाकर वरदान ले लेना और फिर उसे छोड़ देना पत्थर के चरणों पर घुल घुल कर मर जाने के लिए यही तुम्हारे प्यार की साधना है ? अच्छा है तुम्हारा देवता और उसकी भक्ति !"

"नहीं, मेरा मतलब यह नहीं है। मैं तुममें, अपने पूजाफूल में, महज़ अपनी साँस भर देना चाहता हूँ ताकि तुम देवता तक पहुँच जाओ मेरी पूजा !"

"छि: कौन देवता ? मेरा देवता सिर्फ एक है। मैं उससे अलग नहीं रहना चाहती। नक्षत्र, नारी पर व्यंग करना दूसरी बात है उसको समझना बहुत कठिन होता है। पुरुष के प्यार की प्रेरणा और आधार दोनों ही अपार्थिव हो सकते हैं, नारी से ऊपर उठकर हो सकते हैं। वह देवता को प्यार कर सकता है, कला को प्यार कर

सकता है, पूर्णता को प्यार कर सकता है लेकिन नारी केवल पुरुष को प्यार कर सकती है। उसी के चरणों पर बिखर सकती है। उसी की पूजा में घुल सकती है। तुम उसके अन्दर पूजा की प्यास जगा देते हो। उड़ने की यह प्यास जगाकर पङ्ख काट देने में विश्वास करते हो! अच्छा वरदान है तुम्हारा नक्षत्र!"

"नहीं मुझे गलत मत समझो!"

"बिलकुल यही है"—पूजा ने कहा—"तुम्हारा जो भी वरदान है मुझे स्वीकार है मगर उसे उचित कहूँ यह मुझसे नहीं होगा। कम से कम इतना अधिकार तो रहना ही चाहिए वैसे तो—'

और उसके बाद वह फिर सिसक-सिसककर रोने लगी।

नक्षत्र उठा और चल दिया। उसके रोम-रोम में सैकड़ों तारे चूर-चूर हो रहे थे। वह पागल-सा हो रहा था। इतना भयङ्कर तूफान कभी उसकी पसलियों से नहीं टकराया था। उसके दिल की धड़कनें क्षतविक्षत हो रही थी। उसकी गति, उसका विवर्ण चेहरा देखकर पूजा स्तब्ध हो गयी उसके आँसू पलकों ही में घुट गये। "नक्षत्र! नक्षत्र!" उसने पुकारा। मगर नक्षत्र रुका नहीं। पूजा दरवाजे से टिककर बहुत देर तक रोती रही और धीरे-धीरे अपने कक्ष में लौट गयी।

दो दिन और दो रातें पूजा ने आँसुओं के देश में बितायी। घुलते हुए मोमदीप की तरह वह आँसुओं की गीली आग में सुलगती रही। आँखें साँझ का आकाश बन गयी थीं, ऐसी साँझ जिसके हजारों तारे टूट चुके हों।

तीसरे दिन कुंकुम आई। पूजा सम्हल गयी और उसने हँसने की कोशिश की मगर......!

"क्या हुआ पूजा ?" कुंकुम ने सशंकित होकर पूछा ।

"कुछ तो नहीं !" अपनी रूखी अलकें समेटते हुए पूजा ने कहा।

"ओह, दो ही दिन हुए नक्षत्र को गये हुए अभी से यह......!"

"नक्षत्र को गये हुए ?"—जल्दी से बात काटकर पूजा ने पूछा!

"हाँ, पता नहीं कहाँ गया। उस दिन पानी बरस रहा था न। उसी दिन से पता नहीं, कहाँ अदृश्य है"—उसके गालों पर कमल कली मारते हुए कुंकुम ने कहा।

पूजा ने एक गहरी साँस ली और हठीला आँसू उसकी पलकों से झाँकने लगा । कुंकुम घबरा गई।

"क्या हुआ। अरे, तू तो रो रही है"—उसने पूजा को पास खीचकर उसकी पलकें चूमते हुए कहा ।

पूजा अलग हट गई और मुसकराने का प्रयास करती हुई बोली—"रो कहाँ रही थी ! तेरे कमल का पराग पड़ गया था ।"

"अच्छा तो उठ, तेरा शृङ्गार कर दूँ, फिर तुझे एक बड़ी ही खुशी की बात बताऊँगी !" और उसने फिर उस दिन की तरह बिंदिया रचाने के लिए हँस का पर मृगमद में डुबोकर पूछा—"क्या बनाऊँ ?" तो पूजा ने शान्त स्वरों में कहा—"मेरे दुर्भाग्य का तारा बना दे।"

"तारा बना दे ! ओहो, साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहतीं नक्षत्र बना दे !"

पूजा इस परिहास पर चौंक उठी। एक ध्रुवतारा उसकी आँखों में जगमगा उठा लेकिन फिर वह चिटख् गया।

और वह बोली—"कुंकुम आगे से वह नाम मत लेना। मुझे पीड़ा होती है !"

स्वर में कुछ ऐसी दृढ़ता, ऐसी कठोरता, ऐसा थमा हुआ तूफान था कि कुंकुम सहम गई।

"यह आखिर हुआ क्या पूजा। मुझे नहीं बताओगी? तुम इस तरह उदास हो, नक्षत्र न जाने कहाँ चला गया है?"

"इसका मुझे और भी दुख है। मैंने इतने दिनों तक अपना प्यार छिपाये रखा। एकान्त में उन पीड़ा की लपटों में चुपचाप घुलने का कितना सुख था। लेकिन इधर कुछ दिनों से मैं पागल हो उठी थी। एक बेहद नशीला, मगर बेहद खूनी दर्द मेरी नसों को झकझोर रहा था। लगता था जैसे मैं अभिव्यक्त हुए बिना नही रह पाऊँगी। इस नयी प्यास का नया सबेरा मेरे दिल की दो सुकुमार पंखुरियों के बीच कैद नहीं रह पाया और एक दिन मैं प्रभाती कमल की भाँति खुल ही पड़ी उनके सामने। मगर इससे हुआ क्या? मेरे नारीत्व का अभिमान भी टूटा और उनके सामने एक उलझन भी बिछ गई। वे देवता को प्यार करते हैं, पूर्णता को प्यार करते हैं। उनके सामने मोल भी क्या है मेरे व्यक्तित्व के समर्पण का। अब तक मैं एक दर्द के सहारे जीती थी, अब उसका भी आसरा नहीं। उसका गला रुँध गया और वह सिसकते हुए बोली—मन में आता है मैं मर जाऊँ, मरने के बाद अगर प्यार नहीं कम से कम तरस की निगाह से भी कोई एक बार मुझे देख लेता...मगर वे तो कहेंगे चलो अच्छा हुआ देवता के चरणों के समीप चली गई। नहीं, यह सुनने के लिए मैं नहीं करूँगी। मगर फिर सोचती हूँ जिन्दा भी रहूँ तो क्यों? किसके लिए?"

"पगली कही की। तू जिन्दा रहेगी एक बहुत बड़ी किस्मत के लिए। सुन, यही बताने के लिए आचार्य ने मुझे भेजा है।"

"क्या?" स्वस्थ होकर पूजा ने पूछा—

"आज अमावस है पगली! मंजूषा आज खोली गई थी और मैं तुझे तेरी क़िस्मत पर बधाई देने आई हूँ।"

"मेरी क़िस्मत पर !" पूजा एक बड़ी फीकी हँसी हंसकर बोली "क्या हुआ।"

"तेरा ब्याह देवता से होगा !"

"कुंकुम !"—डाँटकर पूजा ने कहा—"परिहास की एक सीमा होती है।"

"परिहास नहीं पगली, सच कह रही हूँ। तेरे पिता की इच्छा है कि तू देवता की दासी बने। इस मंदिर की अतुल सम्पत्ति पर तेरा ही अधिकार होगा मगर तुझ पर देवता का अधिकार होगा।"

पूजा हँस पड़ी।

"आह, हँसी न तू ! मैं पहले से जानती थी तू देवताओं के योग्य थी, मनुष्य के नहीं !"

पूजा रो पड़ी !

"तो यह है मेरे भाग्य में ! वे चाहते हैं मैं देवता के चरणों पर चढ़ूँ पिता की इच्छा है मैं देवदासी बनूँ। और मेरी इच्छा—कितनी नाचीज़ मेरी इच्छा। मैं तो महज़ दूसरे की इच्छा पर चूर-चूर हो जाने के लिए बनी हूँ। कितना महान भाग्य है मेरा।" और वह आँसुओं को मसल-मसलकर मुस्कान बनाने की कोशिश करने लगी।

इतने में द्वार खुला और आचार्य ने प्रवेश किया। पूजा सम्हल कर बैठ गई।

"बेटी"—आचार्य ने आकर गद्गद कंठ से कहा—"कुंकुम ने बताया !"

"हाँ बाबा !" पूजा ने अपने पर काबू कर लिया था।

"तुझे सुख है न बेटी ?"

"क्यों नहीं बाबा !"

"मैं जानता था, मैं जानता था बेटी—" उनके स्वर से स्नेह और उल्लास बरस रहा था—"मैं जानता था एक दिन आयेगा जब मेरी बेटी देवता के रहस्य को समझेगी उनके चरणों में झुकेगी और मेरे भगवान् उसे स्वीकार करेंगे—मैं जानता था!" और उन्होंने झुककर पूजा के पैरों की धूल माथे पर लगा ली!

पूजा ग्लानि से चूर-चूर हो गयी—"अरे यह क्या बाबा?"

"नहीं, अब तुम केवल मेरी पूजा बेटी नहीं हो। तुम हो मेरे भगवान् की अधीश्वरी। जो भाग्य बड़े-बड़े भक्तों को नहीं मिला वह तुम्हें मिला है। आशीर्वाद दो देवी मुझे कि तुम और भगवान्, तुम दोनों की सेवा में मेरे बचे-खुचे दिन भी कट जायँ।"

पूजा स्तब्ध थी।

"कल बेटी, तेरी दीक्षा है। कल हमारे सम्प्रदाय में राधा की प्रतिष्ठा है और तेरी दीक्षा।"

"राधा की प्रतिष्ठा?" कुंकुम ने आश्चर्य से पूछा!

"हाँ बेटी, नक्षत्र भगवान का अनन्य भक्त है। उससे देवता ने कहा है कि उनके अवतार का, उनकी महिमा का मुख्य कारण एक गोपी थी जिसने जन्म जन्मांतर में उनकी अनन्य आराधना की थी। इसी से उनका नाम राधा पड़ा। भगवान चाहते हैं उनके पार्श्व में उसकी प्रतिमा स्थापित की जाय। नक्षत्र राधा की मूर्ति बना रहा है। और तू"—उसने पूजा की ओर संकेत करके कहा—"तू राधा की प्रतिनिधि होगी। आह, भगवान की महिमा तो देखो कैसा नाम है, राधा माने भी तो पूजा ही होती है। लेकिन नाम अगर तूने राधा का पाया है तो उनकी पूजा भी तुझे निभानी होगी। ओह कितना बड़ा भाग्य है तेरा? कितना बड़ा भाग्य...!"

पूजा दर्द से तड़प उठी—और चल दी।

"कहाँ चली बेटी?"

"जरा मन्दिर जा रही हूँ। भगवान् के पास।"

आचार्य हँसे—"कुंकुम देख तो। कैसा रहस्य है देवता का। अभी से इतनी उत्कण्ठा जगा दी अपनी पूजा के मन में।"

वह भरी बरसात की तरह धँसती गई मन्दिर मे और देवता के सामने बरस पड़ी। "देवता! पत्थर के देवता! मानव के साथ परिहास करने में तुम्हें कौनसा सुख मिलता है। तुम अपने बगल मे राधा की प्रतिमा स्थापित करना चाहते हो, किसी के बगल से राधा की प्रतिमा छीन कर। यह कहाँ का...!"

सहसा उसने देखा कोई पहले ही से देवता की उपासना में तल्लीन है। वह चौंककर पीछे हट गई और चुपचाप खड़ी हो गई। उपासक चुपचाप देवता के चरणों पर सर रखकर आँसू बहा रहा था।

थोड़ी देर में उसने सर उठाया और कहा—"देवता, चाहे और कोई समझे या न समझे, मगर तुम मुझे समझते हो। अभी तक मेरे और पूजा के बीच में तुम्हारी प्रतिमा थी। आज से तुम भी हट जाओगे। मैं तुम्हें तुम्हारी राधा सौंप रहा हूँ। तुम मुझे मेरी पूजा दे दो! यही मेरी उपासना है, यही तुम्हारा वरदान! जो मुझे प्रिय है वही तुम्हें दे रहा हूँ। और दूँ भी क्या? मुझे मिली है किसी की अनन्य पूजा जिसने मुझे शिल्पी से कलाकार बनाया, मनुष्य से देवता बनाया और वही पूजा राधा के रूप में तुम्हें दे रहा हूँ देवता! अच्छा, अब आज्ञा दो! मैंने किसी की आराधना के साथ उपेक्षा करके अन्याय किया था। अब प्यार करके प्रतिकार करूँगा!"

पूजा तड़प उठी। यह चोट के बाद चोट क्यों। जब वह अपना सम्पूर्ण समर्पण लेकर नक्षत्र के पास गई तो नक्षत्र ने बीच में देवता की शर्त रक्खी। आज जब नक्षत्र देवता को हटा कर बढ़ रहा है

उसकी ओर तो वह देवता की हो चुकी है। क्या नारी का सर्जन ही इसलिए हुआ है कि उसके दिल की हर धड़कन, उसकी पलकों का हर सपना उसे छलता रहे। वह चीख उठी—"उफ, मैं रह भी नहीं पाती—सह भी नहीं पाती, रो भी नहीं पाती !"

"कौन पूजा ?"—नक्षत्र मुड़ा—"आओ, मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था। ओह ये चार दिन मैंने कैसे बिताये हैं पूजा ! तुम हर क्षण मुझे बदलती रही हो। एक दिन मैं तुम्हारे सामने विजयी था। आज विजय तुम्हारी है। मैं दण्ड में तुम्हारा बन्धन चाहता हूँ।"

पूजा हँस पड़ी। ऐसी हँसी जो शंकर ने सती की लाश कन्धों पर रखते वक्त हँसी होगी।

"तुमने बहुत देर कर दी, भावी-आचार्य नक्षत्र, अनन्य भक्त, तुमने बहुत देर कर दी।"

"देर कैसी पूजा ! जब हृदय झुक जाता है तभी पूजा की बेला आ जाती है मेरी रानी !" आगे बढ़कर उसने पूजा के दोनों हाथ अपने हाथों में दबा लिये।

पूजा की पसलियों से एक सिसकी छलकते-छलकते रह गई। उसने धीरे से अपने हाथ खींच लिए—"ये उँगलियाँ अब देवता की हैं नक्षत्र!"

"क्या ?"—नक्षत्र स्तब्ध हो गया।

"हाँ, कल तक मैं कुमारी थी—अपना यौवन, अपना हृदय, अपना रूप किसी को भी समर्पित करने को स्वतन्त्र। आज मैं देवदासी हूँ, मेरी सुकुमार प्यासी भावनाएँ, मेरी अछूती तरुणाई आज महज उसकी है, उस पत्थर के देवता की।"

नक्षत्र के आगे आकाश घूम गया। वह चुप रहा फिर धीरे से रुँधे गले से बोला—"पूजा, तुमने बहुत जल्दी की निर्णय में। महज चार दिन में जिन्दगी की बाजी पलटने की भूल क्यों की आखिर।"

"नही, चार दिन नही; यह १६ साल का निर्णय है।"

"सोलह साल! पहले ही से निश्चित था कि तुम देवदासी बनोगी। फिर तुमने मेरे प्राणों के आगे यह मृगजाल क्यों रचा। यह सैकड़ों धूमकेतुओं का आवेग क्यों तुमने मेरी साँसों में भर दिया। आज जब मेरी आत्मा का तूफान अपने अर्द्धवृत्त को पूरा करने के लिए पागल हो उठा है उस समय तुम इस तरह जा रही हो—कितना बड़ा खेल किया है मेरे जीवन से तुमने पूजा!"

"नहीं, मैं स्वयम् इस निर्णय से अनजान थी। आज मेरी सोलहवी वर्षगाँठ पर यह मालूम हुआ कि मेरे पिता की इच्छा मुझे देवदासी बनाने की है। तुमने भी कहा था कि तुम देवता का पूजा-फूल बनो। मैं क्या करती ? मैं निराश थी नक्षत्र!"

"ठीक किया पूजा! अपमान मैंने किया था, अभिमान मैंने तोड़ा था, अब दण्ड भुगतने कोई दूसरा नही आयेगा।"

"नहीं, ऐसा मत समझो मेरे देवता, ओह भूल गयी नक्षत्र!"

"कैसे न समझूँ ? पहले मुझे जिन्दगी सफलता लगती थी। फिर मुझे जिन्दगी साधना लगी—आज मुझे जिन्दगी प्रवंचना लग रही है—और प्रवंचना भी नहीं आज तो मुझे अपना व्यक्तित्व ही एक भूल—भूल क्यों गुनाह लग रहा है। तुम सुखी रहो पूजा, मैं इसका प्रायश्चित कर लूँगा।" और वह मन्दिर के बाहर चल दिया।

"ओह, सुनो, रुको, इस तरह मुझे चूर-चूर करके मत जाओ नक्षत्र! क्या सुनना ही चाहते हो, सुनो तुम मेरे आराध्य रहे हो, आराध्य रहोगे। मेरा शरीर देवता का हो मगर आत्मा तुम्हारी है मेरे सब कुछ!"

इस पर नक्षत्र मुस्कुराया। जैसे प्रलय होने के पहले सितारे मुस्कुराते हैं।

"नहीं मुस्कुराओ मत! अविश्वास मत करो। आज से तुम्हें जो

कुछ कहना हो तुम देवता के ओठों में रख देना वे राधा से कह देंगे मैं सुन लूँगी, समझ लूँगी सन्देश तुम्हारा है। जो कुछ मुझे कहना होगा मैं राधा के होंठों में रख दूँगी—वे देवता से कहेंगी। तुम सुनकर समझ लेना सन्देश मेरा है। बोलो है मंजूर!"

मगर नक्षत्र ने कुछ जवाब नहीं दिया। वह चला गया चुपचाप...!

दूसरे दिन पूजा की दीक्षा थी। लेकिन सुबह से ही उसने दिल पर पत्थर रख लिया था इस भरोसे से कि नक्षत्र तो उसी का है। कुंकुम के सहारे, शृङ्गार कर वह मन्दिर में गयी। प्रवेश करते ही सभी ने उसे प्रणाम किया श्रद्धाभाव से।

किन्तु उसकी निगाहें कुछ और खोज रही थी। उसने चारों ओर देखा नक्षत्र अभी नहीं आया था। एक एक करके अनुमान होने लगे। उसने फूल चढ़ाये, अर्चना की।

नक्षत्र अभी नहीं आया!

देवता के चरण रज से उसकी माँग भरी गयी।

नक्षत्र अभी नहीं आया!

अन्तिम विधि समीप आ गयी। एक आरती की दीपशिखा के साथ उसका परिणय हुआ।

लेकिन नक्षत्र अभी नहीं आया!

वह पागल हो उठी। क्या अन्तिम क्षण पर वह टूट जायगी। वह नक्षत्र के सहारे यह सब सह रही थी। क्या वही आधार इस समय हट जायगा? कितना बड़ा बदला नक्षत्र ले रहा है। अब वह न रह सकी। उसने व्याकुल होकर आचार्य से पूछा।

"क्या आज राधा की प्रतिष्ठा नहीं होगी?"

"होगी क्यों नहीं बेटी?"

"मगर नक्षत्र तो नही आया अभी तक !"

"आया था बेटी,—लेकिन !……"

"लेकिन क्या ?"

"कुछ नहीं !"

"बताओ न ! क्या हुआ ?"—उसको लगा जैसे उसके दिल की धड़कनें डूब जायँगी !

"उसे इस सम्प्रदाय से निर्वासन का दण्ड मिल गया है ।"

"क्यों—" वह चीख पड़ी ।

"बात यह हुई बेटी कि वह राधा की मूर्ति बनाकर लाया। मूर्ति बड़ी सुन्दर थी, अतः वह स्वीकार कर ली गई लेकिन उसमें किसी मानव का रूप झलक आया था। देवी में मानवीय रूप लाना पाप है। बेटी इसी से उसे दण्ड मिला।"

"आखिर उस प्रतिमा में रूप किसका था ?"

आचार्य चुप रहे ।

कुंकुम ने झुककर कान में कहा—"लोग कहते हैं, वह प्रतिमा तेरी है !"

"मेरी है ! आह नक्षत्र, मैंने यह क्या किया"—और वह फूटकर रो पड़ी।

"क्या हुआ ?" सारी सभा व्यग्र हो उठी।

"कुछ नहीं।" आचार्य ने खड़े होकर शाँत स्वर में कहा–"भावावेश की तीव्रता से आँसू छलक आये। श्री प्रभु की असीम कृपा है !"

"प्रभु उसे जीवन में सुख दें, शान्ति दें, सन्तोष दें," भक्तों ने एक स्वर में श्रद्धाभाव से कहा।

स्वप्नश्री और श्रीरेखा

"ऊँह, तू तो पल भर भी सीधा नहीं बैठता," एक हाथ से अपनी तूली को पट्टिका पर पोंछते हुए और दूसरे हाथ से वीणा के तारों में उलझे हुए राजहंस के पैरों को सुलझाते हुए श्रीरेखा झल्ला कर बोली।

आज नव-पत्रिका का उत्सव था और नृत्य के लिए वह अपने राजहंस के पंख चित्रित कर रही थी। राजहंस इस स्नेह की फटकार को सुनकर क्षण भर के लिए चंचल हो उठा और फिर श्री-रेखा की गोद में अपनी गर्दन छुपा कर चुपचाप बैठ गया। श्रीरेखा ने दाएँ पंख पर भौंरों की प्रत्यंचा पर रसाल-मंजरी का पुष्प-बाण साधे हुए अनंग का रेखा-चित्र बनाया और फिर रुक गई। बाएँ पंख पर क्या बनाए? उसने एक अधखिले गुलाब में छिपे हुए हुए भौंरे की रेखाएँ खींची। सहसा पास की शैय्या पर सोई हुई स्वप्नश्री ने करवट बदली और उसके वक्ष पर रखे हुए रजत घुँघरू नीचे गिर पड़े। उसका ध्यान बँट गया। नृत्य से थक कर स्वप्नश्री पास की शय्या पर अलसा कर लेट गई थी। घुँघरू उतार कर उन्हें वक्ष पर रख कर क्षण भर देखती रही—धीरे-धीरे आम के बौरों को चूम कर आते हुए रेशमी झोकों ने उसकी चेतना पर जादू फेर दिया और वह सो गई। श्रीरेखा ने उसकी ओर देखा—

मोतियों की किनारीवाला आँचल सर से खसक कर नीचे गिर गया था। करवट लेने से दब जानेवाली एक जुही की कली का चिह्न

उसके गालों पर उभर आया था। दुहरी वेणी गूँथ कर उन्हें कानों के पास श्याम कमलों की तरह लपेट दिया गया था किन्तु उनके गुम्फन में उलझी हुई बेले की कलियाँ अस्तव्यस्त हो गई थीं। श्वास के श्रम से शिशिर के बादल जैसी पतली गोरी गर्दन पर नाज़ुक आसमानी नस उभर आई थी। ओठ रह-रह कर काँप उठते थे और झिलमिली पलकों में पुतलियों पर मड़रानेवाले सपनों के इन्द्रधनुषी पंख साफ झलक रहे थे।

श्रीरेखा ने इस सोते हुए उदास सौन्दर्य की ओर क्षण भर मादक आग्रह से देखा और फिर सहसा उसकी आँखों में शरारत छलक उठी। उसने चित्रित भौंरे की रेखाएँ कर्पूर-जल से धो डालीं और एक सूक्ष्म तूलिका से राजहंस के बाएँ पंख पर सोती हुई स्वप्नश्री का चित्र बनाने लगी। थोड़ी देर में एक स्थूल रेखा-चित्र बनाकर उसने फिर स्वप्नश्री की ओर देखा और दोनों में सामंजस्य देख कर सन्तोष की साँस ली। स्वप्नश्री के ओंठ रह-रहकर हिल रहे थे और उन पर एक उनींदी मुसकान खेल रही थी। वह कोई सपना देख रही थी।

उसने फिर तूली उठाई और राजहंस की गर्दन सीधी की। अपनी मांसल बाँईं भुजा पर उसकी गर्दन सम्हाली। राजहंस उसके नीलम-कंचुक पर अपना सिर रख भोली-भोली आँखों से उसकी ओर देखने लगा। श्रीरेखा ने उसकी आँखों के दोनों ओर दो वृत्ताकार इन्द्रधनुष बनाए और फिर उसे छोड़ दिया। उसने अपने पर फैलाए, गर्दन मोड़ी और अँगड़ाई लेकर खड़ा हो गया। "जा, स्वप्नश्री को जगा ला, चल।" उसकी ग्रीवा को किसलय के गुच्छे से मृदुलता से थप-थपा कर श्रीरेखा बोली और एक कुहनी से टिककर दूसरे हाथ से वीणा के तारों को छेड़ने लगी। हंस ने एक बार मुड़कर अपनी

स्वामिनी की ओर देखा और फिर झंकार की लय पर चलता हुआ स्वप्नश्री के पास जा पहुँचा। उसके दुपट्टे में टँके हुए मोती को चोंच में लेकर खींचने लगा। स्वप्नश्री सहसा चौंककर जग गई। "अरी, यह क्या पागल हो गई है ?" अपने आँचल को सम्हालती हुई स्वप्नश्री उठ बैठी। "अरे, तू है दुष्ट !" उसने हंस को देखकर कहा और गोद में लेकर उसे प्यार करने लगी।

"अच्छा, अभी तक चित्रकारी कर रही थी ! यह अनंग का चित्र बनाया है। आजकल उसी को इष्टदेव माना है क्या ?"

श्रीरेखा मुसकराई। "वह मेरा इष्टदेव थोड़े ही है। दूसरे पंख पर देखो। रति सोई हुई अनंग का ध्यान कर रही है। अनंग उसी के स्वप्न में विहार कर रहा है।"

स्वप्नश्री ने दूसरा पंख देखा और अपना रेखा-चित्र देखकर बेहद शरमा गई। दूसरे ही क्षण बोली—"बड़ी शरारती है। अच्छा बताऊँगी तुझे भी·········।"

"मुझे क्या बताओगी ? स्वयं तो अनंग के सपनों में डूबी रहने लगी हो। हाँ, और क्या ? मधुमास का नशा ही ऐसा होता है।"

"सच री श्री, सपना तो जरूर देख रही थी······।"

"अनंग का न ?"

"धत् ! अनंग का नहीं, वह जो अपने आँगन में रातरानी है न। तो मैंने देखा उसकी एक तरुण कली में चाँदनी की रेखा छिपकर बैठ गई। सुबह हुई और उस किरण को अपनी पलकों में छिपा कर वह अलसाई हुई कलिका सो गई। थोड़ी देर बाद एक भौंरा आया और प्रभाती गाकर उसे जगाने लगा। जब वह नहीं जागी तो एक पंख से उस पर छाँह कर ली और दूसरे पंख से उस पर बिजन डुलाने लगा। फिर उसके बाद क्या हुआ श्रीरेखा कि वह भीतर सोई हुई चाँदनी की किरण सहसा हवा लगते ही अंगारों की

तरह धधक उठी और वह अभागी कलिका अपने अन्तर्ताप से ही मुरझाकर गिर गई," स्वप्नश्री ने एक गहरी साँस लेकर कहा।

श्रीरेखा क्षण भर स्तब्ध रही, फिर मुस्कुराने का यत्न करती हुई बोली—

"छि: ! ऐसे दुःखभरे सपने मत देखा कर।"

"वाह ! जैसे सपने देखना न देखना अपने हाथ में है। मुझे तो खुद अचरज होता है कि न जाने कहाँ से ये निर्मम सपने आकर हृदय मरोड़ जाया करते हैं। इन्हें जैसे मुझी से दुश्मनी है।"

"हर एक बुद्धिमान अपने लिए रूपवान सुकुमार दुश्मन ढूँढ़ा करता है रानी ! फिर इन सपनों ने तुझी से दुश्मनी पाली है तो क्या आश्चर्य ?"

"चल, तुझे हमेशा मज़ाक़ सूझता है।"

"मेरे लिए तो जीवन केवल एक मज़ाक़ है स्वप्नश्री; वरना मैं भी सपने देखकर रोती होती। मैं तेरी तरह थोड़े ही हूँ। मैं तो हर वस्तु के पीछे उसका वैषम्य, उसका अन्तर्विरोध देखकर हँस लेती हूँ; तू रो लेती है।"

"यही तो मेरी दुर्बलता है श्री ! मुझे तो जीवन की हर चीज के पीछे न जाने कैसी प्यास घुटती हुई मालूम पड़ती है। लगता है जैसे सारा जीवन एक मूक वेदना, एक अतृप्त तृष्णा के डोरे में गुँथा हुआ है। मैं उनकी झुलस का अनुमान करती हूँ और मेरा हृदय रो पड़ता है।"

"मैं तो जीवन को इतनी गम्भीरता से लेती ही नहीं कि रोना पड़े। जीवन मौक़ा पाकर हम सभी को तोड़ डालने का यत्न करता रहता है। मैं कभी उसे इतना महत्त्व ही नहीं देती कि वह अपना जाल मुझ पर फैला सके। वह अपना वार करे, तुम मुस्कुरा कर मुँह फेर लो; जीवन कुण्ठित होकर स्वयं ही हार मान लेगा।"

"पगली ! जीवन इतना अवसर ही नहीं देता कि तुम मुँह फेर सको। मुसकरा सको। वह तो पहले ही से मन को जकड़ कर तब अपना प्रहार करता है। तब उस असह्य वेदना से छुटकारा पाया नहीं जाता और वह पीड़ा सही नही जाती। इतने विलास, इतने सुख के होते हुए भी मेरे लिए जीवन है गम्भीर अनुभूति की वस्तु, छलकते हुए आँसुओं की वस्तु।"

"और मेरे लिए जीवन है उन्मुक्त क्रीड़ा की वस्तु तथा झरने की तरह निर्बाध उल्लास की वस्तु।"

"द्वार पर पुष्परथ तैयार है," दासी ने आकर कहा। दोनों उठ खड़ी हुईं। रथ फूलों से सजा हुआ था। श्रीरेखा ने आगे बढ़कर रेशमी रास अपने हाथों में ले ली और स्वप्नश्री पीछे अधलेटी सी हंस की आँखों पर बने इन्द्रधनुष के रंग गिनने लगी। पहिए में लगे घुँघरू झनकार उठे। रथ चल पड़ा।

नवपत्रिका श्रावस्ती का विशेष उत्सव था। फाल्गुन समाप्त होते-होते जब आम बौर उठते थे और चैती बयार के हलके गुलाबी झोंकों पर तैरती हुई कोयल की नशीली कूक प्रभात के सपनों को गुदगुदाने लगती थीं तब श्रावस्ती की कुमारियाँ नवपत्रिका उत्सव मनाती थीं। प्रातःकाल होते ही वे सोने के थालों में उपहार सजा कर आम के नए चिकने पत्तों पर स्नेह-सन्देश लिख कर सखियों के पास भेजती थीं। उसके बाद सब नगर के बाहर उपवन में जाती थीं और वहाँ संगीत तथा नृत्य के आयोजन होते थे। नगर-सेठ की चंचल कन्या श्रीरेखा इन आयोजनों का प्राण थी। नगरपति माण्डलिक की पुत्री स्वप्नश्री अपने स्नेह और गाम्भीर्य से इन उत्सवों को संचालित करती थी और श्रीरेखा अपनी मस्ती से छलकती हुई

शरारत और गुदगुदाते हुए परिहास में समस्त उत्सव पर सुनहला कुंकुम बिखेर देती थी। दोनों अभिन्न सखियाँ थीं; किन्तु स्वभाव में बिल्कुल विरुद्ध। श्रीरेखा लम्बी, पतली, लहराती हुई धूमरेखा की तरह चंचल थी और स्वप्नश्री गुलाब की पँखुरियों पर सम्हल-सम्हल कर चलती हुई, संगमरमर की गांधार प्रतिमा की तरह शांत, भावुक और सुकुमार।

उत्सव प्रारम्भ होने के पहले किसी कुमारी को उस दिन के उत्सव की रानी चुना जाता था। सबने कहा—"आज के उत्सव की रानी स्वप्नश्री होगी।" श्रीरेखा तुरन्त बोली, "ठहरो! इसके लिए मैंने इस वर्ष नई कसौटी रखी है। मैंने बाँस का एक हलका सा रथ बनवाया है जिसमें चार पालतू मृग जुतेंगे। जो कुमारी इतनी हलकी हो कि उसे मृग खींच सकें, वही आज की रानी होगी।" सब की सब खिलखिला कर हँस पड़ीं। स्वप्नश्री हँसते हुए बोली—"तो यह कह कि आज स्वयं साम्राज्ञी बनने का षड़यन्त्र रच रखा है।" "नहीं!" श्रीरेखा मुसकराहट को ओठों में दबाकर बोली, "पहले तू ही चढ़ना; अगर हरिण तेरे आँसुओं का भार सम्हाल ले गए तो मैं तेरे लिए स्थान छोड़ दूँगी।"

रथ आया और स्वप्नश्री बैठी। रथ में रास नहीं थी लेकिन हरिण पालतू थे। हाँकने के लिए हाथ में एक छड़ी दे दी गई। सहसा मृग चौंके। उन्होंने कान खड़े कर चारों ओर गर्दन घुमाई और कूदकर भागे। स्वप्नश्री गिरते-गिरते बची, चीख पड़ी और मजबूती से सम्हलकर खड़ी हो गई। श्रीरेखा दौड़ी पर मृग कूदते हुए, रथ को खींचते हुए झाड़ी के पीछे अदृश्य हो गए थे। पास ही कहीं बहुत मधुर स्वर में वीणा बज उठी थी और मृग उसी के

स्वरों में बँधकर चले गए थे। श्रीरेखा ने झाड़ियों को चीरकर देखा —कोई वीणा बजाने में तल्लीन है। उसकी सुनहली अलकें हवा में लहरा रही हैं और उसके स्वर वातावरण पर जादू कर रहे हैं। अपने उष्णीष के रंग और कटिवस्त्र के पहनाव से वह कौशाम्बी के समीप का कोई मध्यदेशीय युवक जान पड़ता था। स्वप्नश्री नीचे कूद पड़ी थी किन्तु हरिण उसी ओर भागे जा रहे थे। श्रीरेखा भाग कर स्वप्नश्री के पास गई। स्वप्नश्री बहुत घबरा गई थी। आवेग से उसका चेहरा लाल हो गया था और भ्रू-रेखाओं पर स्वेद,बिंदु छलक आए थे। वह चुप थी, किन्तु श्रीरेखा के पास पहुँचते ही चीख कर उससे लिपट गई और उसके बाद दोनों खिलखिला कर हँस पड़ीं। पथिक का ध्यान उनकी ओर आकर्षित हुआ किन्तु फिर भी वह उपेक्षा से मुँह फेरकर वीणा बजाने में तल्लीन हो गया।

"यह तो कोई परदेशी है," स्वप्नश्री बोली।

"कोई भी हो—इसे तो बहुत कड़ा पाठ मिलना चाहिए। ऐसी वीणा बजाई कि तुम मरते-मरते बचीं।"

'ओ! तो उस बेचारे को क्या मालूम था।'

"बेचारे को!" श्रीरेखा मुँह बनाकर बोली—"ओहो! बड़ी सहानुभूति हो गई तुम्हें। और देखो तो, अभिमानी भी कैसा है। है। इधर देखकर भी गर्दन फेर ली जैसे…"

"…जैसे तुम्हारा कोई महत्व ही न हो। क्यों?"

श्रीरेखा हँस पड़ी—"जाऊँ, पूछूँ तो कौन है।"

"जा तू, मैं यहीं खड़ी हूँ।"

श्रीरेखा गई और अपरिचित के सम्मुख गम्भीरता से हाथ जोड़

कर चुपचाप खड़ी हो गई। उसने सिर उठाकर देखा, रुक गया और पूछा—"कहिए ?"

"ओह ! आप तो मनुष्य की वाणी बोलते हैं। मैं तो समझी थी आप कोई देवता हैं।" अपरिचित ने विस्मय से इस मुखर लड़की की ओर देखा और फिर कुछ मुसकरा कर बोला—"यह सुखद सन्देह आपको कैसे हुआ कि मैं देवता हूँ ?" श्रीरेखा अब भी गंभीर थी। "बात यह है कि मैंने एक ऐसे देवर्षि के बारे में सुना था जो वीणा बजाते हैं और जब पृथ्वी पर आते हैं तो कुछ न कुछ अनिष्ट अवश्य होता है। दैवयोग से इस समय दोनों ही संयोग हैं।"

वह हँस पड़ा—"आप का परिचय ?"

"मैं यहाँ के नगर-सेठ की कन्या श्रीरेखा, और आप ?"

"श्रीरेखा ! बड़ा सजीला नाम है; मैं कौशाम्बी से आया हूँ। मेरा नाम समुद्रगुप्त है।"

"महाराजकुमार युवराज समुद्रगुप्त !" श्रीरेखा आश्चर्य से चीख उठी। आँचल सम्हाल कर बोली—"धृष्टता के लिए क्षमा करें कुमार।"

"नहीं, नही।" राजकुमार फिर हँस पड़े।

"किन्तु आप यहाँ कैसे ?"

"मैं माण्डलिक कुन्तल के पास एक आवश्यक राजकीय-कार्य से आया था, किन्तु वहाँ ज्ञात हुआ कि वे तीर्थाटन के लिए गए हैं और उनकी पुत्री स्वप्नश्री उपवन की ओर आई हुई हैं। अवकाश के क्षण बिताने के लिए मैं रथ लेकर इधर ही चला आया। क्या आप स्वप्नश्री को जानती हैं ? उन्हें बुला सकेंगी ?"

"हाँ, अभी लाई।"

श्रीरेखा गई और स्वप्नश्री के पास जाकर बोली, "चल, वे तुझे बुला रहे हैं।" "फिर वही शरारत," स्वप्नश्री चिढ़कर बोली।

"नहीं, सच वे हैं गुप्तवंश के युवराज समुद्रगुप्त। घर पर गए थे, स्वामिनी को न पाकर तुझे खोजते हुए यहाँ आए हैं।"

"अरे !" स्वप्नश्री चल पड़ी और पास जाकर नम्रता से उन्हें प्रणाम किया।

"अच्छा आप ही हैं स्वप्नश्री। गुप्त-साम्राज्य के प्रसिद्ध योद्धा माण्डलिक की पुत्री मृगों का रथ भी नहीं हाँक पातीं।"

किन्तु श्रीरेखा ने तुरन्त उत्तर दिया—"वह कल्पना के रथ' हाँकने की अभ्यस्त है, मृगों के नहीं।"

राजकुमार मुसकरा पड़ा।

"चलिए तो, हम लोग घर चलें," स्वप्नश्री बोली।

"चलिए, मेरा रथ वह खड़ा है।"

श्रीरेखा ने आगे बढ़कर रास अपने हाथ में ले ली। कुमार ने रोका तो बोली, "नहीं, स्वप्नश्री नहीं हूँ मैं। रथ हाँकना आता है मुझे।"

कुमार और स्वप्नश्री पीछे बैठ गए। रथ चल पड़ा। स्वप्नश्री सोच रही थी—आर्यावर्त का यशस्वी सम्राट उसके पास बैठा है। वह समुद्रगुप्त, जिसके यश और शौर्य की कहानियों के झूले में उसकी तरुणाई की शैशव-सुगम उत्सुकता झूल चुकी है। कुमार की भुजा पर बँधे आभूषण का छोर रह-रहकर स्वप्नश्री के कपोलों को गुदगुदा जाता था और वह सिहर उठती थी। वह विचारों में मग्न थी और न जाने क्या-क्या सोच रही थी। रथ बहुत तेजी से चल रहा था, सहसा छींटेंदार पंखों वाली दो तितलियाँ लड़ते-लड़ते उसके मुँह से टकरा गईं और उनके पंखों पर जमी हुई परागधूल उसके कपोलों पर छा गई। राजकुमार ने उसे देखा और मुसकरा दिया। स्वप्नश्री

सचेत हो गई। उसे यह अकारण मौन अखर रहा! राजकुमार उसका अतिथि था। उसे कुछ बातें करनी चाहिए। उसने राजकुमार की ओर देखा, वह बाहर देख रहा था।

"आप!" उसने बहुत साहस बटोर कर कहा—"आप श्रावस्ती के वनों में निरस्त्र न घूमा करें। यहाँ कुछ लोग गुप्त-साम्राज्य के विरुद्ध षड़यन्त्र कर रहे हैं।" उसने एक साँस में कहा और लज्जा के कारण हाँफने सी लगी।

राजकुमार ने सिर भीतर किया और पूछा—"क्या कहा आपने?"

"मैंने! मैंने कुछ नहीं। मैं कह रही थी आपको कला से बहुत प्रेम है?"

"हाँ देवि, कला ही मेरा जीवन है।"

"अच्छा, किन्तु मेरा तो जीवन ही कला है," सहसा श्रीरेखा ने मुड़कर उत्तर दिया।

"ओह! और आपका क्या मत है इस विषय में?" उसने मुड़-कर स्वप्नश्री से पूछा—

"मेरा क्या मत है? कला या जीवन, मेरे लिए तो कोई भी नहीं है। मैं ही कला और जीवन के लिए हूँ। जीवन जब चाहता है मुझे छेड़ कर रुला लेता है; कला जब चाहती है मुझे गुदगुदा कर हंसा लेती है।"

राजकुमार इस अप्रत्याशित उत्तर पर दंग रह गया और कौतू-हल से स्वप्नश्री की ओर देखने लगा।

गृहपति के न होने से मातृविहीना स्वप्नश्री पर कुमार के आतिथ्य का भार आ पड़ा था। कुमार विश्राम-कक्ष में थे और

पास ही आसन पर बैठी स्वप्नश्री अपने पिता को कुमार के आगमन का सूचना-पत्र लिख रही थी। इतने ही में श्रीरेखा आ गई। स्वप्नश्री ने पत्र पूरा कर चन्दनशलाका पर लपेट कर भृत्य को दे दिया और उसके बाद सम्हल कर बैठ गई। श्रीरेखा बोली—

"कुमार की कला की बहुत प्रशंसा सुनी है। सुना है, आपने वादन-कला की नई शैली का आविष्कार किया है।"

"हाँ, देवि ! किन्तु वह शैली पुरुषोचित है, ओजस्वी है, उसमें लड़कियों को विशेष रस न मिलेगा।"

श्रीरेखा, सदा वाक्पटुता में दूसरों को हरा देने वाली श्रीरेखा निरुत्तर हो गई। क्षण भर बाद उसने पूछा—"कुमार नारी की इतनी उपेक्षा क्यों करते हैं ?"

"नहीं, मैं नारी को इतना महत्व ही नही देता कि उसकी उपेक्षा करने का व्यर्थ कष्ट उठाऊँ।"

"महत्व नहीं देते ? तो क्या आप नारी को खेल की वस्तु समझते हैं ?"

कुमार उठ बैठे और उत्तरीय को पीछे फेंककर बोले—"हूँ, मेरे खेलने के लिए बड़ी-बड़ी वस्तुएँ हैं। मैं साम्राज्यों के भाग्य से खेल सकता हूँ; नारी जैसे कच्चे खिलौने से मैं नहीं खेलता।"

श्रीरेखा झल्ला उठी। वह अपनी वाक्पटुता के लिए प्रसिद्ध थी और बड़े-बड़े मानी युवक उससे हार मानकर गौरव का अनुभव करते थे। किन्तु कुमार उसे बराबर हराते जा रहे थे। स्वप्नश्री शान्त थी, किन्तु श्रीरेखा फिर शक्ति बटोरकर बोली—"नारी जीवन में कच्ची हो किन्तु खेल या प्यार में कच्ची नहीं होती। जिस दिन वह खेलने अथवा प्यार करने का निश्चय करती है, उसी दिन उसमें अपूर्व प्रतिभा जाग जाती है।"

"ठीक है, किन्तु जिस दिन पुरुष में प्रतिभा जगती है उस दिन से वह खेलना और प्यार करना दोनों ही बन्द कर देता है।"

श्रीरेखा फिर हारी पर उसे अब जैसे पराजय के हर खेल में एक अपूर्व सुख मिल रहा था। वह अभी तक जीवन से खेलती रही और जीतती रही, आज वह खेल रही थी और हार रही थी। फिर भी मन करता था जैसे हारती जाय। इसीलिए वह फिर बोली—"किन्तु कुछ भी हो, नारी ही प्यार कर सकती है।"

"मानता हूँ श्रीरेखा! नारी ही ईर्ष्या कर सकती है, नारी ही द्वेष कर सकती है, नारी ही निन्दा कर सकती है, नारी ही अनिष्ट कर सकती हैं, नारी ही अमंगल कर सकती है और नारी ही प्यार कर सकती है।"

श्रीरेखा का चेहरा तमतमा उठा और उसने तीखे स्वर में कहा—"और नारी समय पड़ने पर घृणा भी कर सकती है।"

"हाँ, कर ही नहीं सकती, करती भी है। किन्तु पुरुष उससे डरता नहीं, क्योंकि नारी के प्यार की तरह नारी की घृणा भी क्षणिक और अस्थायी होती है। आपका क्या मत है?" कुमार ने स्वप्नश्री से पूछा।

स्वप्नश्री शान्त थी। सहसा प्रश्न से वह चौंक गई और बोली—"क्या आज्ञा दी आपने?"

"मेरा प्रश्न है कि आपका नारी के विषय में क्या मत है?"

"नारी के विषय में तो नहीं—" स्वप्नश्री ने कहा—"किन्तु आपके मत के विषय में मुझे कुछ अवश्य कहना है।"

"हाँ, हाँ!"

"कुमार, नारी एक सूत्र है; एक गूढ़ सूत्र। जैसे एक सूत्र की व्याख्या से टीकाकार अधिकतर अपनी ही मनःस्थिति और विचार-धारा के अनुसार टीका करता है; उसी प्रकार नारी की व्याख्या

भी प्रत्येक पुरुष अपने अनुभव और अपनी विचार-शक्ति के अनुसार करता है। मैं विश्वास नहीं करना चाहती कि आपका व्यक्तित्व इस व्याख्या में है। जितनी कठोर और छिछली आपकी व्याख्या है, उतना छिछला आपका व्यक्तित्व नहीं। इसलिए आपके श्रीमुख से ये विचार शोभा नहीं देते।" स्वप्नश्री ने शान्त एवं संयत स्वर में कहा और चुप हो गई। कहते समय उसकी आँखों में विचित्र सी चमक झिलमिला उठी और फिर उसने निगाहें झुका लीं; ठीक जैसे समुद्र की एक उत्ताल लहर उठे और क्षितिज पर उगते हुए पीले चन्द्रमा को चूमकर शान्त हो जाय।

कुमार इस रहस्यमय लड़की की ओर आग्रह से देखने लगे। वह बिल्कुल शान्त रहती थी लेकिन जब बोलती थी तब कोई ऐसा सत्य वाणी में बिखेर देती थी जो अन्तर को मरोड़ देता था। ऐसी ही उसने कही थी कला और जीवन की बात। कुमार चुप हो गए। उनका उच्छृङ्खल स्वभाव न जाने क्यों इस शान्त, लजीली करुण सपनों में डूबी रहने वाली लड़की के प्रति स्नेह अनुभव करने लगा। स्वप्नश्री विद्रोह के सामने झुकना जानती थी। वह बाँस की उस कच्ची टहनी के समान थी जो तूफान के हर झोंके के साथ जमीन पर बिछ जाती है। राजकुमार उच्छृङ्खल कलाकार था और नारे को तोड़कर हँसता था। किन्तु आज वह हार गया था। उसने मुसकरा कर अपनी हार स्वीकार की और बोला—"अच्छा तो आज का वादविवाद स्थगित हुआ।"

स्वप्नश्री ने वातायन के पर्दे गिरा दिए और दोनों उठकर बाहर आ गईं। छत पर चैत की चटख चाँदनी बिछी हुई थी। दोनों एक झूले पर बैठ गईं।

श्री रेखा बोली—"राजकुमार बहुत प्रतिभाशाली हैं और बहुत वाक्पटु। तुम्हारी क्या राय है?"

"प्रतिभाशाली तो अवश्य हैं कि वाक्पटु नहीं। अन्तर स्वच्छ है और गम्भीर; वाणी कुछ कठोर है किन्तु शरारत से भरी हुई।"

"नहीं, वे वाणी के भी कुशल हैं।"

सदा हर एक की आलोचना करने वाली श्रीरेखा आज जैसे कुमार की प्रशंसा करने पर तुल गई थी। उसके मन में हार की टीस अब भी कसक रही थी। वह चाँद की ओर देखने लगी। पीला चाँद ऐसा लग रहा था जैसे नीली आँखों पर तैरती हुई उदासी। एक हलका रुई का बादल आया और उदासी को छेड़कर चला गया। वह छेड़छाड़ श्रीरेखा के हृदय में उतर आई और वह न जाने कैसी आकुलता का अनुभव करने लगी।

सहसा स्वप्नश्री बोली—"हाँ श्री, उस दिन वाला सपना तुझे याद है न?"

"कौन, वह रातरानी और किरण वाला न।"

"हाँ, मैंने उसे श्लोकबद्ध कर डाला है। ला, तुझे सुनाऊँ।"

श्रीरेखा पास के प्रकोष्ठ से बाँसुरी उठा लाई। अपनी चम्पे की कलियों जैसी लम्बी, पतली उँगलियों से उस पर स्वर साधने लगी और स्वप्नश्री ने तड़पते स्वरों में अपना गीत प्रारम्भ किया। स्वप्नश्री विभोर थी और श्रीरेखा तन्मय। आधे श्लोक के बाद उसने बाँसुरी रख दी और स्वप्नश्री के कन्धे पर सिर रखकर अपलक दृष्टि से उदास चन्द्रमा को देखती रही। स्वप्नश्री ने गाते-गाते एक हाथ श्रीरेखा के कन्धे पर रक्खा और उसे अपनी छाती के पास खींच

लिया। श्रीरेखा ने अपना सिर स्वप्नश्री के धड़कते हुए वक्ष में छिपा लिया और जब स्वप्नश्री ने स्वर में विचित्र सी टीस भरकर कहा—"रातरानी की पलकों में खोई हुई चाँदनी लपटों की तरह धधक उठी"—तो श्रीरेखा को लगा जैसे कोई उसे चूर-चूर कर रहा है और वह लाचार सिसक-सिसककर रो पड़ी। स्वप्नश्री अकस्मात् रुक गई।

"श्री ! क्या हुआ री ! ऐं, अरे, तू तो रो रही है !"

स्वप्नश्री ने बड़े दुलार से श्रीरेखा का चिबुक थामकर मुँह ऊपर उठाया। पलकें गीली थीं और गालों पर दो आँसू फिसल रहे थे।

"पगली !" स्वप्नश्री ने कहा और झुककर अपने हाथों से उसके गालों पर से दोनों आँसू पोंछ डाले, "क्या बात है ? इधर देख मेरी ओर।"

श्रीरेखा ने स्वप्नश्री की ओर देखा और मुसकराकर उसकी गोद में मुँह छिपा लिया। स्वप्नश्री उसकी अलकों को उंगलियों से सुलझाती रही। सहसा श्रीरेखा ने सिर उठाया और गहरी साँस लेकर बोली—"न जाने क्यों, आज का गीत, यह चाँद, तू, सब कुछ इतना करुणा, इतना वेदनामय लग रहा है कि प्राण रो उठते हैं !"

"क्यों, तू तो इन सब पर हँस सकती है न ?"

"नहीं, कल तक हँस सकती थी, आज सब पर हँस सकने का अभिमान किसी ने तोड़ दिया है। अच्छा ! अब चलती हूँ रात अधिक हो रही है।" और श्रीरेखा चल दी।

जब ये दोनों चली आईं तो कुमार करवट लेकर लेट गए और राजकीय प्रश्नों पर सोचने लगे कि सहसा रात की नीरवता तोड़-

कर गीत का स्वर गूँज उठा। उसमें कुछ ऐसी तड़प, ऐसी टीस, ऐसी करुणा थी कि उनका मन अपनी वीणा उठाने के लिए व्याकुल हो उठा। उन्होंने प्रतिहारी से पूछा—"यह कौन गा रहा है?"

"कुमारी स्वप्नश्री।"

"ओह, बहुत सुन्दर गाती हैं!" उन्होंने कहा और शय्या पर लेट गए। बहुत देर तक सपनों में स्वप्नश्री गाती और उनसे बात करती रही।

श्रीरेखा अपने भवन में पहुँची तो जैसे बेहोश थी। उसके प्राणों पर न जाने कैसी नीरव अचेतनता का सम्मोहन छा गया था। उसकी बड़ी-बड़ी पलकें झुकी थीं और उसके कदम डगमगा रहे थे। उसकी नसों की बूँद-बूँद में एक गुलाबी नशा छाया हुआ था। वह शयन कक्ष में गई और गले में पड़े मुक्ताहार को भूमि पर फेंककर बिना वस्त्र बदले ही शय्या पर लेट गई। वातायन के ऊपर संगमरमर में कटी हुई जाली से छनकर आती हुई चन्द्रकिरण ऐसी लग रही थी जैसे अँधेरे के सीने में चुभा हुआ एक नीमकश तीर।

"आह! क्यों ऐसा होता है?" वह बोल उठी—"आखिर क्यों अनजाने में दर्द के तीर आकर चुभ जाते हैं और फिर क्यों मन चाहता है कि वे तीर हमेशा चुभ रहें। अपने उद्धत अभिमान के टूट जाने का दर्द क्यों इतना प्यारा होता है? क्या मनुष्य उसी को प्यार करता है जिससे वह पहली बार हारता है?"

उसने उठकर वातायन का पट खिसका दिया। हरसिंगार के फूलों की तरह चाँदनी झर पड़ी। "और यह हार भी क्या? शब्दों के खेल की हार? जब जिन्दगी की हार-जीत को खेल समझ कर उसने कभी ध्यान नहीं दिया तब आज खेल की हार-जीत में वह

क्यों हृदय को गँवा बैठी ?" उसने वातायन से झरती हुई चाँदनी की ओर देखा। चाँदनी एक कपासी नागिन की तरह लहरें ले रही थी। "आखिर क्यों यह मेरे अन्तर में आज साँप लहरा रहे हैं ? यह कौन सा जहर मोल ले आई हूँ आज ? मैं इतनी व्याकुल हूँ और कुमार ? क्या वे जाग रहे होंगे ? और जाग भी रहे होंगे तो क्या मेरे......।" उसे लगा जैसे पसलियों में हविश का तूफान उमड़ आया। उसने पास से मौलश्री के फूलों की ढेरी उठा कर छाती पर दबा ली। धीरे-धीरे उसे नींद आ गई—हलकी शर्बती नींद। मगर उसके मन की प्यास, उसकी नसों का दर्द, उसके सपनों की बेचैनी रातभर करवटें बदलती रही।

जब रात ने करवट बदली तो स्वप्नश्री की आँखें खुल गईं। नीचे आँगन में रातरानी गमक रही थी और वातायन के पास झूमनेवाले बेले की पँखुरियों ने पलकें खोल दी थीं। यह श्रीरेखा के विषय में सोचने लगी—आज उसे हो क्या गया था ? और वह सहसा क्यों चली गई ? ऐसी आकुल होते उसे कभी न देखा था।

सहसा वातायन से एक झोंका सौरभ से लद कर आया और उसे झुलसाता हुआ चला गया। वह छत पर चली गई। रात बहुत सुहावनी थी। सहसा वह चीख सी उठी। वह सामने गवाक्ष पर इतनी रात को कौन है। अरे, कुमार ! वह अभी जाग ही रहे हैं ! दो खम्भों के बीच में लगी हुई रजतशलाका पर कुहनियाँ टेक कर चिन्तामग्न मुद्रा में कुमार ऐसे लग रहे थे जैसे किसी सुकोमल टहनी पर गाल रख कर चुपचाप चाँदनी पीता हुआ एक जवान गुलाब। स्वप्नश्री घूमकर कुमार के पीछे खड़ी हो गई। कुमार ने देखा किन्तु फिर चन्द्रमा की ओर देखकर चुपचाप सोचने लगे।

"क्या राजकुमार चाँद को देख रहे हैं ?"

"नहीं, देख तो नहीं रहा हूँ, उसकी बोली अवश्य सुन रहा हूँ।" और घूम कर बोले—"अब देख भी रहा हूँ।"

स्वप्नश्री हँसी और फिर लजा गई। कुछ क्षणों तक चाँदनी में दमक उठने वाले अपने अँगूठी के हीरे की ओर झुकी नजरों से देखती रही और फिर बिना निगाह उठाये ही पूछा—"कौन सा विचार है जिसने कुमार को इतनी रात तक जगा रखा है?"

"वह विचार!" कुमार ने एक गहरी साँस ली और टहलने लगे—"क्या तुम सुनोगी?"

"क्या वह मुझसे सम्बन्धित है?" उसने एक भोलेपन से पूछा और उसके बाद अपने प्रश्न पर स्वयं ही लजा गई।

"हाँ है भी, और नहीं भी। तुम जानती हो स्वप्नश्री! मैं महाराज से विद्रोह करके आया हूँ।"

"क्यों?"

"क्यों, इसलिए स्वप्नश्री, कि मैं गुप्तवंश की परम्परा को नई धारा में मोड़ना चाहता हूँ। महाराज अपने आन्तरिक झगड़ों में व्यस्त हैं। मैं आंतरिक मतभेदों को मिटाकर भारत में वह साम्राज्य स्थापित करना चाहता हूँ, जो अडिग हो। मुझे लगता है जैसे मैं भारत की स्वर्ण संस्कृति का अग्रदूत हूँ और वह सांस्कृतिक देन दे जाऊँगा जो विश्व में अनूठी होगी। मैं सम्राट-पद को केवल अपना व्यक्तिगत अधिकार नहीं मानता, मैं उसे राष्ट्र की थाती मानता हूँ और इसीलिए मैं विदेशी प्रभावों से अलग रहना चाहता हूँ। पिता से इसी विषय में मेरा विरोध है और मैंने चुनौती दे दी है कि समय आने पर मैं गुप्त-साम्राज्य को भी उलटने में न हिचकूँगा।" राजकुमार के नेत्र जल उठे, उनकी मुट्ठियाँ बँध गयीं और वे तन कर चलने लगे।

स्वप्नश्री बोली—"श्रावस्ती अपने विद्रोही राजकुमार के साथ होगी, आप विश्वास रखें।"

"श्रावस्ती मेरे साथ होगी किन्तु क्या स्वप्नश्री भी? क्या मैं विश्वास करूँ कि मेरे विद्रोह में, मेरे विध्वंस में, मेरे दुःख में, मेरे कष्टों में, मेरे संग्राम में स्वप्नश्री भी मेरे साथ होगी?"

स्वप्नश्री विचार में पड़ गई और गम्भीर मुद्रा में पास के झूले पर बैठ गई—वही झूला जिस पर श्रीरेखा रोई थी। कुमार उसके पार्श्व में खड़े हो गए।

"क्यों? बोलो! मैं तुमसे सच कहता हूँ मुझे प्रेयसी नहीं चाहिए, प्रणयिनी नहीं चाहिए। यह खेल खेलकर मैं ऊब चुका हूँ। मुझे एक संगिनी चाहिए। एक ऐसी संगिनी, जिसे अपनी भावना का राज्य सौंपकर निश्चिन्त होकर, मैं विद्रोह में लग जाऊँ। मुझे एक ऐसी आधार-मूर्ति चाहिए जो मेरी शक्ति बन जाय। बोलो!"

स्वप्नश्री ने दोनों हथेलियों में अपना मुँह छिपा रखा था।

"बोलो न। जानती हो, मैंने आज तक नारी को तोड़ा है; किन्तु तुम थीं जिसमें न जाने कौन सी शान थी, न जाने कौन सी गहराई थी, सतर्कता थी, सन्तुलन था कि मेरी उच्छृङ्खलता हार बैठी। और मेरी दिवास्वप्न! तुम नहीं जानतीं कि मनुष्य उसी को प्यार करता है जिससे वह पहली बार हारता है। हाँ, यह अवश्य है कि मैं तुमको राजमहलों का सुख न दे पाऊँगा। मुझे तो अभी देश के इस छोर से उस छोर तक सोई हुई चेतना जगानी है। मेरे साथ रह कर तुम्हें गुलाब की पंखुरियों पर नहीं, विद्रोह के अँगारों पर चलना होगा। बोलो! मैं तुम्हारे मौन से क्या समझूँ? हाँ?... नहीं?... तो क्या समझूँ कि इन कष्टों का लेखा सुनकर स्वप्नश्री पीछे हट गई?"

"नहीं," स्वप्नश्री ने क्षीण स्वर में उत्तर दिया—"कष्टों से मैं

नहीं डरती। वे मेरे जन्म के साथी हैं। यह बान नहीं है कुमार, किन्तु..."

"किन्तु क्या ?"

"कुछ नहीं !" वह सहसा विह्वल होकर बोली—"इस समय मैं कुछ नहीं कह सकती कुमार—इस समय मुझे जाने दीजिए. ." और स्वप्नश्री उठकर धीरे-धीरे अपने शयन-कक्ष में चली गई।

प्रातःकाल ही श्रीरेखा ने रथ जोता और स्वप्नश्री के यहाँ चल दी। उसे लग रहा था जैसे वह एक क्षण भी कुमार के बिना नहीं रह सकती है। उसके मन में एक तीखी कामना थी, कुमार के चारों ओर किरण-रेखा बन जाने की।

भवन में पहुँचने पर ज्ञात हुआ कि स्वप्नश्री कहीं गई है।

"और कुमार ?" उसने पूछा।

"अभी-अभी राजधानी से एक दूत आया है, कोई गुप्त सन्देश लेकर; राजकुमार उसी से मंत्रणा कर रहे हैं।"

श्रीरेखा रुक गई। इतने में दूत ऊपर से आया।

"दासी! इन्हें अतिथिगृह में ले जाओ," कह कर श्रीरेखा कुमार के पास चल दी। जाते समय उसका हृदय धड़कने लगा और उसके कदम रुकने से लगे। अंग-अंग में एक विचित्र सी पुलक छा गई और प्राणों में गुदगुदी सी मचने लगी। वह कक्ष के समीप पहुँची और झाँक कर देखा—कुमार अचेत पड़े हैं। वह घबरा गई। "कुमार! कुमार!" वह दौड़कर अन्दर गई। देखा—कुमार की बाँह से रक्त बह रहा है और एक तीर वातायन की राह से आकर उनकी भुजा को छीलता हुआ पास के चन्दन-स्तम्भ में चुभ गया है। कुमार मूर्छित हैं और पास ही एक पत्र खुला हुआ पड़ा है। उसने

जल्दी से पत्र उठाया। वह राजदूत का लाया हुआ पत्र था और उस पर लिखा था—"त्रयोदशी को महाराज का अवसान हो गया। प्रजा ने आपको महाराजा चुना है। सावधान, बौद्ध विहारों में आपकी हत्या के आयोजन हो रहे हैं—महामंत्री।"

श्रीरेखा क्षण-भर के लिए स्तब्ध हो गई। अखिल आर्यावर्त का सम्राट उसके सामने अचेत, असहाय पड़ा है! फिर उसने झपट कर बाँह का घाव देखा। थोड़ा सा छिल गया था, लेकिन घाव के आस-पास नीलिमा थी। "ओह! विषैला तीर है। क्या करूँ?" और फिर सहसा झुककर उसने वह घाव चूस लिया, विष थूक दिया और उसके बाद निश्चिन्तता से खड़ी हो गई। उसके ओठ जल रहे थे। उसने पास के पात्र में से जल पिया। "कुमार!" उसने माधुर्य से पुकारा, किन्तु कुमार अचेत थे। उनकी सुनहली अलकें भाल पर और पलकों पर लहरा रही थीं। उसने एक हाथ से वे अलकें हटा दीं और क्षण भर अपलक दृष्टि से उन्हें देखती रही! "मेरे देवता!" रुँधे हुए गले से उसने कहा और झुककर पलकें चूम लीं। सहसा एक पीड़ा उसे इस तरह तोड़ गई जैसे कि सूरज की किरण चूर-चूर हो जाती है।

"दासी!" उसने पुकारा—"गुलाबजल ले आ।"

उसने एक वस्त्र गुलाबजल में भिगोकर महाराज की आँखों पर रख दिया और आँचल डुबोकर महाराज का मस्तक भिगोने लगी। क्षणभर में महाराज को होश हो गया।

"उफ! बेहद जलन है आँखों में।"

"पट्टी रक्खी रहने दें महाराज!"

"कौन? तुम! रहने दो स्वप्नश्री!" महाराज ने टटोलकर उसका हाथ अपने भाल से हटा दिया। श्रीरेखा संकोच में गड़ गई।

वह कुछ कहना चाहती थी। यह अवसर था, जब वह लाज की डोरी में बँधी अपने दिल की धड़कनों को मुक्त कर देना चाहती थी, लेकिन जब हृदय कुछ कहने के लिए तड़प उठता है तब वाणी मौन साध लेती है।

"स्वप्नश्री !" महाराज एक गहरी साँस लेकर बोले—"स्वप्नश्री ! कल तक मैं विद्रोही था, आज मैं सम्राट हूँ। कल अपने दुःख में मैंने तुमसे भीख माँगी थी, आज अपने सुख में तुम्हें आमंत्रित करता हूँ मेरी रानी !" और महाराज ने श्रीरेखा की हथेली अपने ओठों पर रख ली।

श्रीरेखा लपटों में झुलस गई। तो यह बात है। महाराज स्वप्नश्री को अपना हृदय दे चुके हैं। कौन है वह ? क्या अधिकार है उसे किसी दूसरे के मन्दिर में पूजा करने का। जिसके चरणों में वह सर्वस्व समर्पित करने आई है, वह किसी दूसरे का हो चुका है। उसकी पलकें छलछला आईं और उसने अपना हाथ धीरे से खींच लिया।

"स्वप्न ! मेरी स्वप्न ! अब भी तुम मेरे प्रश्न का उत्तर न दोगी ?" महाराज ने अस्फुट स्वर में पूछा। "मेरे मन में एक निर्माण का सपना है। मैं स्वप्नश्री को अपने निर्माण में गूँथ देना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ तुम मुझे बनाओ, मैं अपने राष्ट्र को बनाऊँ। बोलो—मेरी पलकें जल रही हैं स्वप्नश्री !"

"महाराज अभी विश्राम करें," उसने किसी तरह सिसकियां रोककर कहा और जल्दी से कक्ष के बाहर निकल आई और फूट-फूटकर रो पड़ी। वह जीवन में प्रथम-बार प्राणों की सारी आकुलता समेट कर पूजा के लिए चली थी। वह पूजा कर लेती, फिर चाहे उसे देवता से वरदान नहीं अभिशाप ही मिलता। किन्तु उसे

तो मन्दिर में प्रवेश करने का अवसर ही न मिल पाया। सोपान तक पहुँचने के पहले ही देवता ने पट बन्द कर लिए। यह असफलता न थी, अपमान था; पूजा की विफलता न थी, पूजा की हत्या थी। वह रथ पर बैठ गई और घोड़ों को बेतहाशा छोड़ दिया। वह उस समय पागल हो रही थी।

"देवी स्वप्नश्री बहुत देर से आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं," भवन में पहुँचते ही दासी ने सूचना दी। श्रीरेखा की विचारधारा को झटका लगा। वह खड़ी हो गई। "नहीं; अब रोऊँगी नहीं। हँसूँगी, अपने लिए नहीं, स्वप्नश्री के लिए।" और वह मुसकराने का यत्न करते हुए अपने कक्ष में गई।

"अरे! तेरी आँखें क्यों सूज आई हैं?"

"बहुत दिनों से जागी हूँ न!" उसने हँसने का प्रयत्न करते हुए कहा—"अब सोने जा रही हूँ।"

"सोने जा रही है! तेरी सब बातें निराली होती हैं। अब जब सबने अँगड़ाई ली है तो तेरी आँखों में नशा झलका है। मगर मैं तुझे बहुत कुछ बताने आई हूँ।"

"मुझे मालूम है पहले से।" वह उठी और स्वप्नश्री के पीछे खड़ी होकर दोनों हाथों से उसके गालों को थपथपाते हुए झुककर कान में बोली, "आर्यावर्त की महारानी को बधाई देती हूँ।"

स्वप्नश्री चौंक गई—"अच्छा! तुझे मालूम है। नहीं, श्री! मैं उस प्रस्ताव को अस्वीकार करने जा रही हूँ!"

"क्यों?" श्रीरेखा के हृदय की धड़कन एकाएक रुक गई।

"क्यों, इसलिए कि मैं विद्रोह में कुमार का आमरण साथ दूँगी मगर उसके बदले सिंहासन स्वीकार करूँ, यह मुझसे न होगा।"

"कहाँ का विद्रोह पगली ? महाराज की मृत्यु हो गई है और प्रजा ने कुमार समुद्रगुप्त को अपना सम्राट चुना है।"

"सच !" स्वप्नश्री आश्चर्य से चीख पड़ी।

"हाँ, सच और अभी कुमार की हत्या का षड्यन्त्र विफल हो चुका है।"

"हत्या !" स्वप्न सहम गई। "मैं जाती हूँ। वे सकुशल तो हैं ?"

"हाँ, वे विश्राम कर रहे हैं, तू जल्दी जा। लेकिन तू प्रस्ताव स्वीकार कर लेगी न ?"

"नहो," उसने तन कर उत्तर दिया।

"क्यों ? सच बता स्वप्न, तू महाराज से प्यार नहो करती ?"

"क्यों नहो श्री ? तुझसे कुछ नहीं छिपाऊँगी। मैंने अपने जीवन में कुमार को, केवल कुमार को ही प्यार किया है। उन्हीं की एकान्त पूजा की है और इसीलिए कोई भी वरदान स्वीकार कर अपनी पूजा को मुरझाने देने का साहस नहीं होता। जिससे अटूट प्यार होता है श्री, उससे कुछ भी लेने की इच्छा नहीं होती।"

"नहीं, यह बात नहो है स्वप्न ! तू नहीं समझती। कुमार जैसा उच्छृंखल युवक पहले तो प्यार की सत्ता से ही इनकार कर देता है, किन्तु जब वह नास्ति से अस्ति पर आता है तब प्यार नहो पूजा करने लगाता है। तू उनकी प्रेयसी नहीं, उपास्य बन चुकी है। तुझे अब वरदान लेना नहीं, देना है। तू उनके विद्रोह की शक्ति बनने के लिए तैयार थी, अब तू उनके निर्माण की कल्पना बनेगी। समझी न !"

स्वप्नश्री क्षण भर खड़ी सोचती रही, फिर एक स्वीकृति की मुसकान मुसकरा कर चल पड़ी। श्रीरेखा उसे जाते हुए देखती

रही और बोली—"राष्ट्र को सम्राट की आवश्यकता है। सम्राट को स्वप्नश्री की आवश्यकता है। अगर अनावश्यक हूँ तो केवल मैं—मेरी आवश्यकता किसी को नहीं।" और वह अट्टहास कर उठी। सहसा उसकी पसलियाँ जल उठीं। यह क्या? कुछ विष अन्दर ही रह गया शायद! उसने सोचा और खुशी से नाच उठी।

जब स्वप्नश्री भवन में प्रविष्ट हुई तो महाराज स्वस्थ हो चुके थे। वे बैठे कुछ लिख रहे थे। स्वप्नश्री को आते देखकर उठ गए। स्वप्नश्री ने आनन्द-विह्वल स्वर में कहा—"सम्राट को बधाई!"

"किन्तु क्या तुम्हें साम्राज्ञी कहने का अधिकार है?" सम्राट ने उसकी पलकों में पलकें डालकर पूछा। स्वप्नश्री लजा गई और फिर झुककर उसने सम्राट के चरणों की धूलि अपने मस्तक पर लगा ली। महाराज हर्ष से स्तब्ध हो गए—"स्वप्नश्री!······मेरी स्वप्न······"

"कुमारी! कुमारी!" अस्तव्यस्त स्वर में श्रीरेखा की दासी ने आकर पुकारा।

"क्या है री?"

"श्रीरेखा बहुत अस्वस्थ हैं।"

"ओ, अभी तो मैं आ ही रही हूँ!" वह चलकर रथ पर बैठी, महाराज भी बैठ गए।

जब वे वहाँ पहुँचे तो कक्ष में श्रीरेखा का शव रखा था। स्वप्नश्री अचेत हो गई। महाराज ने उसे सम्हाला और श्रीरेखा के शव को

देखकर बोले—"मृत्यु विष से हुई है । इसने विष क्यों खाया स्वप्न ?"

"मालूम नहीं ! किन्तु कल से यह उद्विग्न बहुत थी," स्वप्नश्री ने सिसकियाँ रोककर उत्तर दिया।

"क्या यह किसी को प्यार करती थी ?"

"नहीं, ऐसा होता तो यह मुझसे बताती। यह मुझसे कुछ भी न छिपाती थी।"

"नहीं, यह अवश्य किसी को प्यार करती थी। देखो न मौत में भी कितना आकर्षण बढ़ गया है। कहते हैं, प्रणय की मौत जहरीली हो किन्तु सुन्दर बहुत होती है। बहुत अच्छी लड़की थी बेचारी। जिसने इस सुकुमार फूल को इस बेदर्दी से मसल दिया वह कितना निष्ठुर होगा, कितना निर्मम होगा।" महाराज ने एक गहरी साँस लेकर कहा और शव को फिर चादर से ढँक दिया।

शिंजिनी

जिस समय की यह प्रेम-कहानी है उसके कई पीढ़ियों पहले प्रेम के देवता अनंग की मृत्यु हो चुकी थी।

किन्तु प्रेम मरकर भी नहीं मरता, इस संदिग्ध सत्य को सुस्थिर रखने के लिए कामदेव के प्रजाजन गन्धर्वों ने एक विचित्र सा नियम बना रखा था। उनका शासक अनंग मर चुका था। किन्तु वे हर पीढ़ी के लिए अनंग का प्रतीक—एक शासक नियुक्त करते थे। समस्त गन्धर्व-लोक से ढूँढ़ कर, उस पीढ़ी का सर्वश्रेष्ठ युवक चुना जाता था। उसकी पलकें सपनों के शबनम से भीगी रहती थीं, उसकी तरुणाई की साँसें युग की धूल से अछूती रहती थीं, उसकी नीलम-नसों में कल्पना का सुनहला रस छलकता रहता था। वे उसे लाते थे, उसका अभिषेक करते थे। उसके बाद किसी रहस्यमयी रीति से उसमें अनंग की आत्मा प्रविष्ट कर दी जाती थी और वह गंधर्व-लोक का शासक नियुक्त कर दिया जाता था।

उस पीढ़ी का शासक प्रभात के झोंके सा प्यारा युवक किंजल्क चुना गया था। वह कलाकार था। चुने जाने के पहले वह बादलिया नदियों के तट पर उगे हुए कनकचम्पा के आँसुओं की साँवली छाया में बैठकर किरणों के तार वाली वीणा पर गाया करता

था। लम्बी, पतली, कलामयी उँगलियों से किरणतारों को झंकारते ही उनमें से स्वर की लपटें फूट पड़ती थीं। वह अग्निकला का साधक था। आग की लपटों के स्वर साधता था, आग की लपटों के गीत गाता था, आग की लपटों से प्यास बुझाता था………।

उसके अग्निस्वरों से आकर्षित होकर कितनी ही गन्धर्व-कुमारियाँ उसे प्यार करने लगी थीं। वे उसे अपना स्नेह समर्पण करने आती थीं। किन्तु किंजल्क की कला ने उसके चारों ओर एक अग्निरेखा खींच दी थी, जिससे पार करने का उसे साहस न होता था। किन्तु स्वयं किंजल्क आग की इन लपटों में जलकर कंचन की तरह निखरता जा रहा था। इसीलिए जब गन्धर्वों के पिछले शासक की मृत्यु हुई तो नई पीढ़ी ने इस अछूती तरुणाईवाले युवक को अपना शासक चुना।

आज उसका अभिषेक है।

राजपुरोहित ने आगे बढ़-कर सोनजुही की कलियों का किरीट उसके मस्तक पर रख दिया। किंजल्क ने सिर झुकाकर उसका अभिनन्दन किया। पुरोहित ने गम्भीर स्वर में कहा, "आज से तुम हमारे शासक हो। इस किरीट के स्पर्श के क्षण से ही तुममें काम की आत्मा प्रवेश कर गई है। अब तुम गन्धर्व नहीं हो, अब तुम मनुष्य नहीं हो, आज से तुम देवता हो। शासन के लिए तुम्हें यह भूल जाना होगा कि तुम मनुष्य थे। बोलो, स्वीकार है?"

"स्वीकार है,"—किंजल्क ने कुछ अनमने स्वर में कहा।

"किन्तु जानते हो काम का अस्तित्व प्यास में है? तुम्हें जीवन भर अपनी प्यास से खेलना होगा।"

"क्यों?" किंजल्क ने विस्मित होकर पूछा।

"क्यों! इसलिए कि तुम देवता हो, उपासना-गृह में सभी को

संतोष और तृप्ति का वरदान मिल जाता है। पूजा के फूल रस से भरे होते हैं, आरती के दीप स्नेह से शराबोर होते है, उपासकों की वाणी में सरस पूजा-गीत छलकते हैं। इस तृप्ति के वातावरण में वह मूक देवता एक उदास शीतल प्यास में हमेशा घुलता रहता है। जानते हो क्यों ? मनुष्य क्षणिकता को प्यार करता है और देवता शाश्वत को। तृप्ति क्षणिक है, मिथ्या है; प्यास शाश्वत है, चिरन्तन है। बोलो, प्यास को प्यार कर सकोगे ?"

किंजल्क चुप था। उसने किरीट उतार कर धर दिया और गुलाब-सी हथेलियों में रजत-भाल झुका कर मौन चिन्ता में डूब गया। उसकी अछूती तरुणाई पर चिन्ता ने पहला दाग लगा दिया। सारी सभा व्यग्र हो उठी। परिचारिकाएँ केशर-कलियों का चँवर डुलाने लगीं—अनुचर मरकत-थाल में तारक-फूलों का सौरभ-जल ले आए।

"बोलो !" राजपुरोहित ने गम्भीर स्वर में पूछा—"प्यास को प्यार कर सकोगे ?" किंजल्क ने सिर उठाया और मन्त्र-चालित स्वरों में उत्तर दिया—"हाँ !"

सभा खिल उठी। गवाक्षों से झाँकती हुई गंधर्व-कन्याओं ने कहा—"देवता युवराज किंजल्क की जय।"

"ठहरो !" राजपुरोहित ने मना किया—"अभी अभिषेक बाकी है। देवता की प्यास को और तीखी बनाने के लिए उस पर निरन्तर जल-सिंचन किया जाता है। तुम्हारी प्यास को जीवित रखने के लिए तुम्हारी सेवा में सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी शिंजिनी नियुक्त की जाती है। किन्तु तुम्हें उसे सदा अपनी जीवन-सीमा से परे रखना होगा। आज वही तुम्हारा अभिषेक करेगी। शिंजिनी, आओ।"

बाईं ओर शृंगार-प्रकोष्ठ था। उस पर पड़ा रेशमी चाँदनी का पर्दा हिला और शिंजिनी बाहर आई।

शिंजिनी—उसका सौन्दर्य संध्या-गगन का सौन्दर्य था। हलके गुलाबी सौन्दर्य की दुर्बल मौन प्रतिमा जिसके मुख पर चम्पई उदासी अँगड़ाइयाँ ले रही थी। कच्चे दूध के फेन सी उजली किन्तु नासाज नजरें उठती थी और चारों ओर टकरा कर फिर जमीन पर गिरती थी। किसी तूफान से नुचे-हुए गुलाब की अन्तिम पँखुड़ी से उसके ओठ रह रह कर काँप उठते थे। उसके कदमों में संगीत था, हलका, धीमा, सिसकता हुआ। वह संगीत जो किसी मूर्छित जल-देवता को जगाने के लिए उदास जल-परियाँ गाया करती हैं। उसकी मुद्रा में रूप और उदासी बिलकुल घुलमिल गये थे। उसकी चाल में उत्सुकता थी, एक हलकी सी खुशी की लहर थी। किन्तु ऐसा लगता था जैसे उस उल्लास की लहर पर आंसुओं की नमकीन उदासी की हलकी सी परत जम गई हो।

वह आगे बढ़ी। एक गन्धर्व-कन्या ने उसके हाथों पर नीलम का थाल रख दिया। उस थाल में एक ओर किरण-फूल रखे थे, दूसरी ओर अभिषेक-जल। तारों की पँखुड़ियों से झरती हुई ओस बटोर कर पुखराज की केशर घोली गई थी।

वह आगे बढ़ी और जावक-रंजित अँगूठे को जल में डुबोकर अभिषेक करना ही चाहती थी कि राजपुरोहित ने कहा—"ठहरो।" स्वर के आकस्मिक अवरोध से वह सहम गई। उसके सिर पर से से खिसक कर वस्त्र कन्धे पर गिर गया। कोमल बेले की ग्रीवा मुड़ी और उसने पुरोहित की ओर देखा। काली जहरीली वेणी ने करवट बदली और कानों में लटकते हुए किसलय-कुंडल रोमांचित कपोलो पर चुम्बन की थपकियाँ देने लगे।

"ठहरो!" राजपुरोहित ने कहा—"तुम कलाकार किंजल्क की नही, देवता युवराज किंजल्क की सेवा में अपना जीवन अर्पित कर

रही हो। तुम दोनों का अन्तर समझती हो न ?"

"हाँ।" क्षीण सा उत्तर मिला—

"शिंजिनी! नारी की अपनी कोई स्वतंत्र गति नहीं होती। तुम्हें किंजल्क की गति लेकर उसी के समानान्तर देवत्व की दिशा में उड़ना होगा। लेकिन इसका ध्यान रखना होगा कि तुम्हारी थकान कहीं किंजल्क के पंखों का बोझ न बन जाय। बोलो, रख सकोगी इतना अन्तर ?"

शिंजिनी ने हाँ कहना चाहा किन्तु उसके उदास रूप की तरलता में उसके स्वर डूब गए। केवल सिर हिला कर उसने स्वीकृति का संकेत कर दिया।

अभिषेक समाप्त हो गया। किंजल्क विश्राम-कक्ष में आया। वह बहुत थक गया था। लगता था जैसे किसी अदृश्य शक्ति ने उसका सारा उल्लास खींच लिया हो। दन्तपत्र-मंडित शय्या पर वह निर्जीव सा पड़ गया।

उफ़! कितना नीरस था वह अभिषेकोत्सव। और वह सोनजुही की कलियों का मुकुट-किरीट कितना दुर्वह था। उसका मस्तक प्रथम स्पर्श में ही जल उठा। हाँ, जब उस कलामूर्ति शिंजनी ने अभिषेक किया तो उसके अन्तरतम पर न जाने कौन सी शीतलता छा गई। वह शिंजिनी—कैसा अलौकिक था उसका रूप, कितना सुन्दर, कितना उदास...सहसा एक विचित्र सी प्यास उसे झकझोर गई और वह व्याकुल सा हो गया। दासियाँ दौड़ीं। एक ने साहस कर पूछा, "आज्ञा, देवता युवराज!" देवता युवराज—जैसे किसी ने उसके घावों में नमक भर दिया हो। वह तड़प उठा, कितना कर्कश है, कितना नीरस है यह सम्बोधन।

"कुछ नहीं, जाओ।"—उसने तीखे स्वर में कहा। उसे याद आए वे दिन, जब वह कनक-चम्पा के कुञ्जों में अपनी वीणा बजाता था और तारा-मृग उसे पुकारते थे—"किंजल्क! प्रभाती सुनाओ।" काश! उसे कोई किंजल्क कह पुकारता स्नेह से। उसकी पलकों में प्यास के आँसू छलक आए और उसने वीणा में मुँह छिपा लिया।

सहसा किसी ने पीछे से विहग-शावकों से भी मृदुल स्वर में पुकारा—"किंजल्क!" किंजल्क ने चौंक कर सिर उठाया—"शिंजिनी!" वह असमंजस में पड़ गया। कुछ कहना चाहता था किन्तु अधरों की सारी गति नयनों ने छीन ली थी। उसे इस प्रकार शून्य दृष्टि से अपलक अपनी ओर निहारते हुए देख कर शिंजिनी सहम गई—"क्या कोई अपराध हुआ देवता युवराज?"

किंजल्क को फिर आघात लगा—"नही! नहीं! वही सम्बोधन ठीक है शिंजिनी।"

शिंजिनी को इस विनीत स्वर पर आश्चर्य हुआ। किन्तु क्षण भर में उसकी आँखें हँस पड़ीं, न जाने क्या सोच कर। किंजल्क ने देखा—उसकी आँखों में न जाने कौन सी किरणें छलक रही थी। ठीक वैसी ही किरणें जैसी उसकी वीणा में कसी हुई थी। ऐसा जान पड़ता था जैसे उसकी वीणा की किरणें शिंजिनी की नजरों में कस गई हैं। उसके मन में आया कि वह इन्हीं नजरों की किरणों पर अपनी वीणा के स्वर उतार दे।

सहसा शिंजिनी ने कुछ लजा कर कुछ साहस कर पूछा—"तो क्या मुझे किंजल्क कह कर पुकारने का अधिकार दे रहे हैं?"

"अधिकार दे रहा हूँ, इन शब्दों के अर्थ मुझे ज्ञात नही शिंजिनी। क्षमा करना, मैं अभी तक तारा-मृग और विहग-शिशुओं के बीच रहा है। न उन्होंने कभी मुझसे अधिकार जैसी वस्तु माँगी और न मैंने दी ही। किन्तु मुझे तुम्हारे संसार की परम्पराएँ नहीं

मालूम। शायद यहाँ और कुछ नहीं, केवल अधिकारों का क्रय-विक्रय होता है।"

शिंजिनी कुंठित हो गई। उसने कुछ कहना चाहा किन्तु न जाने क्या सोचकर विषय बदल दिया। वह आगे बढ़ी और किंजल्क की शय्या के समीप रखी हुई चन्दन की चौकी पर बैठ गई।

"अच्छा, किंजल्क तुम्हें अपने जीवन पर संतोष है?" उसने किंजल्क की नजरों पर अपनी किरणों वाली नजरें डाल कर पूछा।

"क्यों? असन्तोष क्यों होता? मैंने कभी सन्तोष की कामना ही नहीं की शिंजिनी, तो असन्तोष का प्रश्न ही कैसे उठ सकता है?"

"मैं देवता से नहीं, किंजल्क से पूछ रही हूँ। क्या वह सदा से प्यास का उपासक रहा है?"

"हाँ, शिंजिनी! उसे कभी भी तृप्ति में कोई आकर्षण ही नहीं दीखा।"

"आश्चर्य है, किंजल्क! तुम्हें तृप्ति से इतना विराग क्यों है? क्या इसलिए कि वह क्षणिक है?"

"हाँ, इसलिए कि क्षणिक सत्य नहीं होता। मैं देवता हूँ, मेरा आधार सत्य है।"

"तुम गलत सोचते हो किंजल्क! सत्य की माप समय और काल की सीमाओं से नहीं होती है। तृप्ति, प्यार, मोह, वासना केवल इसलिए असत्य नहीं कहे जा सकते कि वे क्षणिक हैं।"

"तो तुम सत्य का मापदण्ड क्या मानती हो?"

"सत्य का मापदंड सम्पूर्णता है किंजल्क! यदि कोई क्षणिक आवेग अपने में जीवन की सम्पूर्णता समेट लेता है तो मैं उसी को सत्य मानने के लिए तैयार हूँ। किन्तु यदि कोई शाश्वत साधना जीवन के एक खंड को आधार बना कर दूसरे खंडों को कुचल देती

है तो मैं उसे सत्य नहीं समझ सकती। मैं मोह में विश्वास करती हूँ। मैं तृप्ति में विश्वास करती हूँ।"

किंजल्क को लगा जैसे शिंजिनी की नजरों की किरणें उसकी नसों में चुभी जा रही हैं। उसके चेहरे की चम्पई उदासी ने करवट बदल ली थी और वहाँ एक मंजुल प्रभात मुस्कुरा रहा था। शिंजिनी की बातों ने, उसके रूप ने न जाने कहाँ आघात किया था और उस मधुर घाव में एक अनोखी कली खिल रही थी जिसके मादक सौरभ से वह अनजान में ही विभोर होता जा रहा था। फिर भी उसने पूछा—"यदि तुम तृप्ति में विश्वास करती हो तो कल तुमने प्यास की शपथ क्यों ली थी ?"

"केवल तृप्ति को और मधुर बनाने के लिए किंजल्क ! तुम्हारे चरणों के समीप रह कर अपनी प्यास को जाग्रत रख कर अपनी तृप्ति के क्षण को और भी तीखा बनाने के लिए देवता !"

"किन्तु तृप्ति प्यास की तो हत्या कर देती है। तृप्ति जीवन की गति के आगे विराम-चिह्न बना जाती है शिंजिनी ! इसलिए अनंग का अस्तित्व प्यास में ही माना गया है।"

"जो तृप्ति को प्यार नहीं कर पाया वह भला प्यास को कैसे प्यार कर सकेगा ? रहा अनंग, वह तो एक कायर देवता था जो आकाश की शून्यता से घबरा कर धरती की ओर चला, किन्तु धरती की मांसलता से टकरा कर चूर-चूर हो गया।"

किंजल्क का ध्यान वार्तालाप से हट चुका था। वह नजरें बचा कर देख रहा था शिंजिनी की किरणमयी निगाहें तथा काँपते ओठ और हर बार तृप्ति शब्द पर रोमांचित हो उठने वाले अरुण कपोल। अगर इन कपोलों पर निराशा की एक हलकी-सी तरल छाया पड़ जाय तो रूप की मादकता कितनी बढ़ जाय। इसलिए उसने हठात्

कही तो दिया, "नहीं ! नहीं ! मैं तुमसे कभी सहमत हो ही नहीं सकता।"

"शाबास किंजल्क !" दूसरे कोने से आवाज आई। उसने देखा—राजपुरोहित। शिंजिनी उठ कर चली गई।

"मुझे तुमसे यही आशा थी। शिंजिनी को मैंने ही भेजा था—यह देखने के लिए कि तुम अपनी शपथ पर अटल हो या नहीं।"

किंजल्क को लगा जैसे किसी ने उसके हृदय में अभी-अभी खिली मंजुल कली को बिजली के पाटों से मसल दिया हो। उसने रुंधे गले से पूछा—

"तो शिंजिनी को आपने भेजा था ?"

"हाँ !"

"तो यह उसका अभिनय मात्र था ?"

"हाँ !"

उसे लगा जहाँ अभी एक कोमल कली खिली थी वहाँ अब एक जहरीला काँटा निकल आया है। उसकी चुभन से व्याकुल होकर वह खड़ा हो गया, बेचैनी से टहलने लगा—

"नहीं, मैं तृप्ति में विश्वास नहीं कर सकता। और वह तृप्ति भी किससे ? जहर के प्याले से ? नारी से ? वंचनामयी नारी—मैं उसे जहर समझता हूँ—मैं उससे घृणा करता हूँ।"

"प्रत्येक देवता नारी से घृणा करता है।" राजपुरोहित ने धीरे से कहा और बाहर चला गया।

किंजल्क पागल-सा हो रहा था। कुछ क्षणों पहले जीवन में पहली बार उसने नारी का प्यार पाया था और दूसरे ही क्षण उसे उस प्यार को कुचलना पड़ रहा था। घृणा से उसकी नसें फटी जा रही थीं। उसने चारों ओर पागलों की-सी निगाह डाली।

सामने एक प्रस्तर-मूर्ति के हाथों में उसकी वीणा रखी थी—फूलों से ढकी और फूलों के बीच से किरणें चमक रही थी। उसने वीणा उठाई और बजाना चाहा। घृणा के आवेग से उसकी उँगलियाँ काँप रही थी। उसने झंकार दी और एक सिसकती हुई आवाज़-सी उठी और लो, घृणा की उँगलियों के छूते ही कला मर गई तथा किरणों के तारे सहसा बुझ गए। उसने झल्ला कर वीणा पटक दी और फिर बेचैनी से टहलने लगा।

उधर शिंजिनी अपने कक्ष में पहुंची। सखियां उसकी प्रतीक्षा में थी। एक ने आगे बढ़ कर उसके वस्त्र बदले और दूसरी ने उसकी शय्या सँवार दी। वह आगे बढ़ी, शय्या के सिरहाने बने हाथीदाँत के मयूर की गर्दन में बाहें डालकर बैठ गई और शान्ति की एक साँस ली।

"कहो! आज जीवन में पहला अभिनय करने गई थीं, सफल हुई?"

"पहला अभिनय! हाँ सखी, गई तो इसी उद्देश्य से थी, किन्तु वहाँ जाकर ऐसा लगा जैसे आज तक का सारा यथार्थ जीवन, यह प्यास की साधना, यह सब केवल एक अभिनय था, एक सपना था जो किसी बहुत बड़े सत्य के आलोक में घुल गया। आज का अभिनय जैसे जीवन बन बैठा हो।"

"पागल तो नहीं हो गई हो?"

"हो सकता है।" शिंजिनी ने कहा, "किन्तु मैं जानती हूँ कि पहले वाक्य के बाद मैंने जो कुछ कहा, हृदय से कहा। उस मृग-शावक से भोले किंजल्क से प्रवंचना करने का साहस ही न हुआ।"

"यह क्या कर आई तुम?"

"मैं कुछ नही कर आई। मैं सचमुच पागल थी। अपने आपे में नही थी। न जाने किस अदृश्य शक्ति ने अभिनय को इतनी गहराई दे दी थी कि वह सत्य बन गया। उफ ! मैं उसे प्यार करती हूँ। उसने कहा था कि मुझे किंजल्क कह कर पुकारो। किंजल्क-शिंजिनी, शिंजिनी-किंजल्क।"

पास के पिंजरे में लटकी सारिका ने पंख फड़फड़ाए और बोल उठी, "······शिंजिनी-किंजल्क।"

शिंजिनी हँसी और फिर लज्जित होकर एक सखी के वक्ष में मुँह छिपा लिया और उसके गले में बाँहें डाल कर बेहोश सी पड़ रही।

पूर्व दिशा में जब नीलम की डाल पर पहला किरण-फूल फूला तो शिंजिनी किंजल्क को जगाने चली। उसने धीरे से कक्ष-पट खोला और भीतर झाँका। वह जगाने किसे चली है ? किंजल्क तो स्वयं ही बैठा है। अपलक दृष्टि से वातायन के बाहर झाँकते हुए उसकी पलकें जागरण से सूज कर पुष्प की भाँति लाल हो गई हैं।

"किंजल्क !" उसने बड़े मीठे स्वर में पुकारा—किंजल्क का ध्यान भंग हुआ। उसने इधर देखा और देखते ही फिर मुह फेर उधर देखने लगा और भारी स्वर में कहा—"बाहर जाओ शिंजिनी ! जब आवश्यकता होगी तो·········।"

शिंजिनी अवाक् रह गई और फिर धीमे-धीमे वापस आई। वह शय्या पर पड़कर सिसकने लगी। सिसकती रही······।

एक घड़ी बीती, एक दिन बीता, एक सप्ताह बीत गया। किन्तु

किंजल्क ने न बुलाया। वह व्याकुल हो गई। उठी शृंगार किया। केशों को धूपित कर मालती-माला से जूड़ा सँवारा, कानों में किरणों की कलिकाएँ लगाई और किंजल्क के भवन की ओर चली—

किंजल्क मंत्रणा-गृह से बाहर आ रहा था। शिंजिनी को देखते ही ठिठक गया, फिर अवहेलना के स्वर में कहा—"मैं राजकीय कार्यों में बहुत व्यस्त हूँ। क्या कोई विशेष कार्य है ?"

"नहीं, कोई विशेष कार्य तो नहीं।"—शिंजिनी ने रुलाई रोकते हुए कहा, "देवता युवराज स्वस्थ तो हैं ?

"हाँ स्वस्थ हूँ, अस्वस्थ रहने की कोई आवश्यकता भी नहीं समझी मैंने। अच्छा।" कह कर मंत्रणा-गृह की ओर मुड़ गया। "कैसा आडम्बर रचती हैं ये प्रवंचना की पुतलियाँ।"

शिंजिनी को जैसे किसी ने लपटों से सींच दिया। वह खड़ी न रह सकी, डगमग पैरों से अर्द्धमूर्छित-सी चल दी अपने भवन की ओर।

गंधर्व अपने राजा से बहुत सन्तुष्ट थे। चौबीस घन्टे केवल प्रजा का ध्यान—न कोई व्यक्तिगत व्यसन, न कोई अपना स्वार्थ। गन्धर्वों की रीति थी कि उनका राजा या राजपुरोहित चिकित्सक हुआ करता था। रहस्यमय वशीकरण और मन्त्रों के सहारे वह उनकी चिकित्सा करता था। दिन हो या रात, किंजल्क सदा उनकी सहायता के लिए प्रस्तुत रहता था।

एक दिन दूत ने आकर कहा, "शिंजिनी बहुत बीमार है।"

"राजपुरोहित से कहो।"

"वे असफल होकर लौट आए।"

वह असमंजस में पड़ गया। उसके दिल की हर धड़कन घृणा

कह रही थी—"मत जाओ किंजल्क ! यह भी एक नया आडम्बर है।" मगर न जाना राजमर्यादा के विरुद्ध था और वह गया।

भवन पर उदासी छाई थी। द्वार-प्रतिमाओं के हाथों में लटकती हुई स्वागत-मालाएँ मुरझा गई थी। पिंजरों में विहग अपने पंखों में मुँह छिपाए चुपचाप बैठे थे। मृगशावक चौकड़ी भरना भूल गए थे और बुझे हुए दीपों के नीचे मुँह लटकाए उदास खड़े थे। द्वार पर बिछे हुए फूल बदले नहीं गए थे और बिछे-बिछे वहीं सूख गए थे। दुग्ध-फेन से कोमल फूलों की शय्या पर घायल पंखों वाली तितली की तरह शिंजिनी लेटी थी, शान्त, मलिन, निष्प्राण सी।

किंजल्क ठिठक गया। आज भी शिंजिनी के मुख पर उसे उसी गुलाबी उदासी का आभास मिला जिसने उसे पहले आकर्षित किया था। जूड़े में बँधा हुआ मृणाल-तन्तु टूट गया था और भौंराली अलकें उसके मुख के चारों ओर बिखर गई थी। मुँह पर एक अजीब मधु-मासी पीलापन था। श्वास नहीं ठहर रहा था और हर बार के श्वास-प्रश्वास में वक्ष पर बँधी हुई मुकुल-माला का एक पुष्प टूटकर गिर पड़ता था। भाल पर रोली से बने कमल की पँखुरियाँ क्षत-विक्षत हो गई थीं।

वह चुपचाप गया और सिरहाने खड़ा होकर मंत्र पढ़ने लगा—"तुम्हारे मन की उमड़ती हुई जहरीली घटाएँ लौट जायँ। पसलियों में टकराती हुई काली आँधी शान्त हो जाय। तुम्हारे मनोविकार शान्त हों। तुम्हारी वासनाएँ शान्त हों।"

शिंजिनी ने पलकें उठाईं—यह देखने के लिए कि यह कौन कह रहा है। उसने देखा—किंजल्क निष्प्राण यंत्र की भाँति पथरीले स्वर में दुहरा रहा है—"तुम्हारी वासनाएँ शान्त हों।"—मारे दर्द के उसकी आँखों में कुछ जल-देवता छलक आए। उसने कराह

कर करवट बदली। उसे हिलते हुए देखकर सारिका बोली, "शिंजिनी !" और पर फुलाकर चहकने लगी, "शिंजिनी—किंजल्क, किंजल्क—शिंजिनी !"

शिंजिनी बेचैन हो उठी और करवट बदलकर उसने कातर निगाहों से किंजल्क की ओर देखा···। किंजल्क को लगा जैसे उसकी नजर की चिनगारी उसकी पसलियों को चीरती हुई उसके दिल में बैठ गई। जैसे किसी ने उसकी नसों को झकझोर दिया। उसके खून की बूँद-बूँद सुलग उठी। "तुम्हारी वासनाएँ········ तुम्हारी वासनाएँ अमर हों।" उसने कहा और पागलों की तरह झुककर शिंजिनी के ओठ चूम लिए। फिर मूर्छित सा उसकी अलकों में मुँह छिपाकर बैठ गया। शिंजिनी—बीमार, थकी, शिंजिनी मलयज का पहला झोंका पाकर सो गई।

सहसा दिशाओं को कँपाता हुआ भयंकर झंझावात उठा। अधर-स्थित गन्धर्व-लोक कमजोर टहनी में लगे हुए फूल की तरह हिलकोरे लेने लगा। किंजल्क उठा। वह न जाने किस मखमली नशे में चूर था। डगमग कदमों से वह अपने महल में गया। तेज़ हवा के झोंकों में दीप बुझ चुके थे। लेकिन उसने देखा कि उसकी वीणा के बुझे हुए किरण-तारों में फिर प्रकाश लौट आया है और वे चन्द्र-किरणों की तरह जगमगा रहे हैं।

वह खुशी के मारे चीख उठा और बिना तूफान की परवाह किए हुए गाना शुरू किया—"मेरी तृप्ति की रानी ! मेरी प्यास की प्रेरणा ! मैं आज से जीवन के आरोह-अवरोह का स्वागत करता हूँ। मैं साधना को प्यार करता हूँ। मैं गुनाहों की रंगीनियों को भी प्यार करता हूँ। मैंने जीवन का सत्य पहचान लिया है। जीवन की पूर्णता में प्यास भी सत्य है और तृप्ति भी। संयम भी सत्य है

और वासना भी। मैं भी सत्य हूँ और तुम भी। सत्य हम दोनों के प्यार का नाम है……।"

प्रातःकाल हुआ—सारा गन्धर्व-लोक संत्रस्त था। वे अपने देवता के पतन पर क्षुब्ध थे। राजपुरोहित ने कहा—"देवता युवराज को इसका प्रायश्चित्त करना होगा।" प्रजा अपने देवता को असीम प्यार करती थी।

"देवता का इसमें कोई अपराध नहीं है। सारा अपराध शिंजिनी का है।" एक ने कहा—

"ठीक है।" दूसरा बोला, "अपराध सदा नारी करती है। पुरुष तो अनजान है—निर्दोष है।"

और पुरुषों के उस समूह ने एक स्वर से नारी के विरुद्ध अपना निर्णय दे दिया।

शिंजिनी अपने श्वेत मयूर को सरोवर के तट पर मृणाल खिलाने जा रही थी कि लता-कुंज को चीर कर हाँफती हुई एक सखी ने कहा—

"कुछ सुना तुमने ?"

"क्या ?"

"जनता देवता पर क्षुब्ध है।"

शिंजिनी सहम गई। क्षण भर खड़ी रही। मन ही मन कुछ सोचती रही और फिर मयूर को एक ओर छोड़कर बाहर भागी। राजपुरोहित से कहा—"अपराधिनी मैं हूँ, दंड मुझे मिलेगा।"

"ठीक है।" राजपुरोहित ने कहा, "पापिनी आत्मा स्वयं अपना दोष स्वीकार कर रही है—किन्तु दण्ड का निर्णय देवता को करना होगा। तुम यहीं रहो।"

राजपुरोहित चले गए। शिंजिनी चुपचाप सोचने लगी। जिसको वह मुक्ति नहीं दे पाई उसे बन्धन देने क्यों चली थी। उसने प्यार किया किन्तु फिर देवता से सर्वस्व क्यों माँगा। सर्वस्व माँग कर फिर माँगने के अवसर को, आशा के स्पन्दन को, प्यार के सुख को सदा के लिए खो दिया। उसने निश्चय किया—अब वह प्रतिदान न लेगी—कभी न लेगी।

किंजल्क ने सुना, जनता में उमड़ता हुआ क्रोध। उसने कुछ भी ध्यान न दिया। उसे कुछ भी परवाह न थी गन्धर्व-लोक की। कल उसे शिंजिनी से जो कुछ मिला उसके सामने किरीट, राजदंड, देवत्व सब तुच्छ थे—बहुत ही तुच्छ। उसे नहीं चाहिए कुछ भी। वह शिंजिनी के प्यार के सहारे सभी कुछ सह सकता है—निर्वाण भी, दंड भी।

राजपुरोहित आया। किंजल्क सचेत हो गया। राजपुरोहित ने आगे बढ़कर कहा—"देवता युवराज को चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं। शिंजिनी ने स्वयं अपना अपराध स्वीकार कर लिया है।"

"क्या ?" किंजल्क को अपने कानों पर विश्वास न हुआ। "क्या उसने यह स्वीकार कर लिया कि उसने प्रेम करके अपराध किया है ? क्या वह अपने प्रेम को लेकर विद्रोह नहीं कर सकती ?"

"उसे केवल अपने अपराध के प्रायश्चित्त की आवश्यकता है।"

किंजल्क का विद्रोह सहसा बुझ गया। उसने कल जो प्रेम शिंजिनी से पाया था, जिसके आधार पर वह विद्रोह करने जा रहा था उसी को शिंजिनी ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया था।

तो क्या फिर वह शिंजिनी का दूसरा अभिनय था? उसका सिर फटा जा रहा था।

"देवता उसके लिए दंड का निर्णय करें।"

किंजल्क ने बेबस निर्जीव निगाहों से राजपुरोहित को देखकर कहा—"जिसने विद्रोह की प्रेरणा दी थी, अधिकार दिया था, जब उसी ने मुँह फेर लिया तो दंड किसकी शक्ति से दूँ? उसी ने इसे अपराध स्वीकार किया है। उसी से कहो दंड दे ले अपने को भी और मुझे भी।" और किंजल्क भोले बच्चे की भाँति सिसकने लगा।

राजपुरोहित शिंजिनी के पास गया और बोला—"शिंजिनी! देवता युवराज तुम्हारे अपराध पर दुःखी हैं, बहुत दुःखी। वे तुम्हारे पतन पर इतने क्षुब्ध हैं कि वे दंड का भी निर्णय नहीं करेंगे। तुम स्वयं अपने लिए दंड सोच लो।"

शिंजिनी अवाक् रह गई। वह किसी भी दंड के लिए तैयार थी यदि वह गन्धर्वों की ओर से मिलता। किन्तु किंजल्क उसे अपराधिनी समझेगा इसका उसे स्वप्न में भी ध्यान न था। यह उसका नहीं, उसके प्रेम का अपमान था। वह व्यथा से पागल होकर बोली—"तुममें शायद सचमुच देवता की आत्मा प्रवेश कर गई है किंजल्क! अन्यथा तुम इतना पथरीला निर्णय न देते। कोई बात नहीं। तुम्हारा प्यार मुझे मिला था। तुम्हारी परीक्षा भी मैं ही लूँगी। तुम्हारा दंड भी मूल्यवान है देवता! तुमने कम से कम उपेक्षा के योग्य तो समझा।"

उसने आँसू से भीगे हुए ओठ दाँतों से दबाकर कहा—"मैं जानती हूँ राजपुरोहित! जा रही हूँ गन्धर्व-लोक से मैं। स्वर्ग शायद मेरा अभिशाप न सम्हाल सकेगा। पर धरती की चट्टान की छाती पर तो अपनी व्यथा को पटक कर चूर-चूर कर सकूँगी! अच्छा, विदा! देवता, किंजल्क देवता गन्धर्वों की रक्षा करें।"

और धरती के निवासियों ने देखा—सुदूर आकाश मे एक सुधामयी तारिका टूटी और अतुलित प्यार के पंखों पर तीर की तरह मड़राती हुई धरती की मांसलता से टकराकर चूर-चूर हो गई। उस उल्कापात के क्षणों में शरद का चन्द्र अद्‌भुत उदास पीलेपन से काँप उठा। रात्रि-रानी का सौरभ सहसा सिसक कर बेसुध हो गया और कलियों के रक्त से सने हुए काँटों की नोक पर चन्द्र-किरणों के शव गिर पड़े।

कला : एक मृत्यु-चिह्न

"मैं विवश हूँ राजकुमारी ! मैं व्यक्तियों की प्रतिमा का अंकन नहीं करता।"

"व्यक्तियों की प्रतिमा का अंकन ! मैं व्यक्तिमात्र नही हूँ कलाकार, मैं सुन्दरी हूँ और सुन्दरी केवल व्यक्ति नहीं, व्यक्तित्व होती है। काली घटाओं के रेशों से बुनी हुई मेरे नयनों की कजरारी अजानता, पुरवैया के झकोरों से काँपते हुए मृणाल की भाँति मेरे अंगों की चंचलता, क्या ये कलाकार के मन को लपटों में नहीं डुबो सकतीं। प्रलय-निदाघ की अग्निमयी सुन्दरता को अपनी पँखुरियों में समेट लेनेवाली रक्त-कलिका सी मैं, क्या मैं कला की उपास्य नहीं बन सकती ?"

"नहीं, अनन्य-सुन्दरी नहीं ! तुमने कला को गलत समझा है। कला का विषय, कला का उपास्य, सौन्दर्य होता है—सुन्दरियाँ नहीं !"

"सुन्दरियाँ नहीं, यह कैसे कहते हो कलाकार ? प्रेम की काँपती हुई मध्यान्ह् बेला में जब कोई सुन्दरी चारों ओर बिखरी हुई यौवन की धूप को अपने एक अश्रु में समेट कर अपने देवता के चरणों पर चढ़ा देती है तो क्या उस एक झिलमिल बूँद में आकाश और पृथ्वी का सारा सौन्दर्य नहीं सिमट आता ? क्या कल्पना की सीपी में वह प्रेम की एक पथ-दर्शक बूँद कला का मोती नहीं बन जाती ?"

"नहीं, राजकुमारी ! कलाकार जीवन के धागे में क्षुद्र मोती नहीं, अनन्त जल-राशियों का विस्तार गूँथा करता है। कला प्रेम को, सौन्दर्य को, आधार अवश्य बनाती है, किन्तु एक व्यक्ति की रूप रेखाओं में बँधे हुए सीमित अंश को नहीं, वरन् व्यक्तिगत सीमा-बन्धनों से परे प्रेम की अनन्त समष्टि को साकार रूप देकर ही कलाकार उसकी पूजा करता है।"

"तो तुम्हारा विचार है कि एक व्यक्ति को ही अपना प्रेमास्पद बनाकर उसके चरणों में अपना सर्वस्व समर्पण कर देने वाले प्रेमी में गम्भीरता नहीं होती ?"

"गम्भीरता हो किन्तु उसमें प्रेम की जलती हुई ज्वाला नहीं होती, उसमें प्रेम की पूर्णता को आत्मसात् कर लेने वाली पूर्णता नहीं होती, राजकुमारी ! कलाकार का प्रेम तो कल्पना के मखमली पंखों पर फूल से फूल पर उड़ता हुआ, रेशमी किरणों पर विश्राम करता हुआ, सूर्य के समीप तक जा पहुँचता है। कलाकार एक प्रेमास्पद के व्यक्तित्व पर अपना सब कुछ न्योछावर नहीं कर सकता, क्योंकि वह प्रेमिका से नहीं, प्रेम से प्रेम करता है।"

"प्रेम से प्रेम करता है ! क्या कह रहे हो कलाकार ?"

"तुम नहीं समझ सकतीं राजकुमारी। कलाकार का उपास्य उसकी प्रेमिका नहीं होती, वरन् स्वयं प्रेम होता है। प्रेमिकाएँ तो वे पूजा-फूल हैं जो प्रेम के देवता के चरणों पर चढ़ा दिए जाते हैं। इस अनवरत पूजा की रीति को कला कहते हैं।"

"प्रेमिकाएँ पूजा-पुष्प हैं जो एक के बाद एक देवता के चरणों पर चढ़ा दी जाती हैं, कली के बाद कली का रस चूसकर उड़ जाने वाले भंवरे की पुरुषोचित वंचकता का ही नाम कला है न ! अपने छल, अपनी वंचना, अपने पाप को छिपाने का अच्छा बहाना ढूँढ़ निकाला है तुमने ! हम स्त्रियाँ प्रेम को साधना समझती हैं। शलभ

की भाँति जलते हुए प्रेम की लपटों को आलिंगन में समेट कर प्रेम की प्यास को निर्वाण की पूर्णता में विलीन कर देती हैं।"

कलाकार हँस पड़ा—

"तुमने अच्छी उपमा दी राजकुमारी! शलभ जैसे तुच्छ कीटों में कल्पना या पूर्णता की प्यास होती भी है या नहीं, इसमें मुझे सन्देह है। उस शलभ से अधिक जागरूक दीपशिखा है जो मृत्यु के बाद मृत्यु को अपनी ज्वाला में विलीन कर परवानों के शवों पर भी गुलाबी प्रकाश बिखेरती जाती है।"

"चुप रहो! प्रेम की गम्भीर अनन्यता की हँसी उड़ाने वाले भावनाहीन पशु!"

"पशु!" कलाकार फिर हँसा—"इस प्रशस्ति के लिए धन्यवाद राजकुमारी! मनुष्य कहकर कम से कम तुमने मेरा अपमान तो नहीं किया!"

राजकुमारी कुछ न बोली। अग्निमय दृष्टि से कलाकार की ओर देखती हुई प्रकोष्ठ की भूमि पर महावर-मंडित चरणों से जलते हुए निशान छोड़ती हुई आवेश में चली गई। कलाकार एक बार मुसकराया। फिर गम्भीरता से उन चरण-चिह्नों की ओर देखता हुआ चिन्ता-मग्न हो गया।

प्रातःकाल जब पारिजात-निकुंज में नवागत खंजनों के स्वरों पर थिरकती हुई किरणें कलाकार की पलकों से नींद की खुमारी धोने लगीं तभी प्रतिहारी ने सूचना दी—"राजकुमारी की दूतिका आई है।"

कलाकार उठ बैठा। आकाश-बेलि के तन्तुओं से बुना हुआ पर्दा हटाकर दूतिका ने प्रवेश किया। उसके आरक्त नयनों में अब भी

रात जग रही थी। जागरण के भार से पँखुरियों सी पलकें झुकी जा रही थीं। खुमारी भरे कदम पराग-सिक्त भूमि पर डगमगा रहे थे।

"आज रात भर अन्धकार की परतों में कुछ खोजती रहीं क्या देवी ?" कलाकार ने मुसकराकर पूछा।

"हाँ, कलाकार ! आज रात को हमारी राजकुमारी खो गई थीं !"

"राजकुमारी खो गई थीं ?"

"घबराओ न कलाकार ! वे इस पत्र-लेखन में खोई थीं, बार-बार लिखती थीं, बार-बार मिटा देती थीं !"

और दूती ने आगे बढ़कर चन्दन-छड़ी पर लपेटा हुआ भोजपत्र कलाकार के समीप रख दिया। कलाकार ने एक बार दूती की ओर देखा, दूसरी बार उस पत्र की ओर और फिर उसे उठाकर पढ़ने लगा।

हरसिंगार के रस से केसरिया अक्षरों में लिखा था—"कलाकार ! वर्ष भर की अवधि में तुम्हें एक आदर्श-सौन्दर्य की प्रतिमा का निर्माण करना होगा। ध्यान रहे, सौन्दर्य की प्रतिमा, सुन्दरी की नहीं। वह प्रतिमा जो पृथ्वी की प्रत्येक सुन्दरी के गर्व को चूर-चूरकर दे। किन्तु शर्त यह है कि वह सजीव हो, सस्पन्द हो, भावनामयी हो, प्राणवती हो, पत्थर की निष्प्राण मूर्ति मात्र न हो। यदि तुम उस निर्जीव सौन्दर्य में प्राण फूँक सके तो स्मरण रखना तुम्हारा भाग्य मेरे चरणों के तले होगा !"

कलाकार स्तब्ध हो गया। द्वार के समीप राजकुमारी के अरुण पद-चिह्न अभी मिटे न थे। उन पर स्वर्णिम चूर्ण बिखर जाने से उनका वर्ण रक्तिम हो गया था और वे अंगारों से धधकने लगे थे। कलाकार उनसे उठती हुई अदृश्य लपट में डूब गया।

"कुछ प्रत्युत्तर ?" दूती का प्रश्न झंकार उठा !

कलाकार की तन्द्रा टूट गई—"हाँ, राजकुमारी से कहना, बारह

पूर्णमासियों के बाद मैं उन्हें अपनी नवीन मूर्ति के उद्घाटन के लिए निमंत्रित करूँगा !"

"और कुछ ?"

"हाँ, और कह देना फूलों के रेशों से फाँसी गूँथने में राजकुमारी चतुर हैं !" दूती चली गई ।

कलाकार के अस्तित्व के सामने उसकी कला का मान आज एक प्रश्नचिह्न बन कर खड़ा हो गया था । उसने राजकुमारी की चुनौती स्वीकार कर ली थी । वह अपनी मूर्तिशाला में गया और निर्माण में तल्लीन हो गया । चैत्र-वैशाख की चन्द्रकिरणें विलास-गृह के पाटल-सौरभ को छेड़ती हुई आई किन्तु मूर्तिशाला के द्वार से ही लौट गईं ।

अषाढ़ की प्रथम घटाएँ किरणों के कमलों पर लहराने वाली भ्रमर-पाँत की भाँति आईं किन्तु रिमझिम सन्देश देकर चली गईं । उद्यान में मोर पंख फैलाकर नाच उठे, किन्तु उनके नृत्य को देखकर विह्वल हो उठने वाला कलाकार एकाग्रचित्त से निर्माण में तल्लीन रहा । बादलों से आँखमिचौनी खेलकर चन्द्रकिरणों का आँचल उलट कर, कदम्ब की भुजाओं को आलिंगन में झकझोर कर, केतकी का घूँघट हटाकर, दो-चार चुम्बन चुरा कर आने वाला मादक समीर भी कलाकार की तन्द्रा को अस्त-व्यस्त न कर पाया ।

धीरे-धीरे आकाश के सरोवर में इन्द्रधनुषी कमलों ने पलकें मूँद ली । बादलों के श्यामल कमलपत्र पवन की धारा में बह गये, मयूरों के नृत्य थककर सो गए और शरद् के निरभ्र आकाश में मधुभाषी हंसों का कूजन चन्द्रकिरणों की डोर पर झूलने लगा ।

और एक दिन कलाकार की मूर्तिशाला में उसका भोला हरिण-शावक कान उठाये, मुख में अधकुतरी शेफाली दबाए, भयभीत मुद्रा

में भागता हुआ आया और कलाकार के अंक में मुँह छिपा कर खड़ा हो गया।

कलाकार ने प्यार से उसे थपथपाते हुए पूछा—"कोई नवागन्तुक है क्या?" और वह मूर्तिशाला के बाहर निकल आया। देखा—राजकुमारी खड़ी थीं।

दोनों कंधों पर लापरवाही से डाली हुई भौंराली वेणी में मालती-कुसुम गुथे हुए थे। कानों में ओस से भीगी हुई धान की बालियाँ झूम-झूम कर गाल चूम रही थीं। कलाइयों में कलीयुक्त मृणाल लिपटे थे और गले में पड़ी हुई मणिमाला चन्दन-चर्चित वक्ष पर सर रख कर करवटें बदल रही थी।

"कलाकार, प्रतिमा प्रस्तुत हो गई?"

"अभी हृदय का निर्माण शेष है राजकुमारी!"

"वह सदा शेष रहेगा कलाकार! जिसके पास स्वयम् हृदय नहीं, वह कला में हृदय कैसे ला सकेगा!"

कलाकार चुप रहा।

"कलाकार! तुम एक व्यर्थ की आशा में जीवन खो रहे हो। पत्थर के निर्माण में तुम जीवन नहीं फूँक सकते। एक व्यक्ति के हृदय की उपेक्षा कर समष्टि के सौन्दर्य को पूजा एक आकाश-कुसुम है, उसे हम मनुष्य नहीं तोड़ सकते कलाकार! अगर तुम्हारी कला की व्याख्या सत्य है तो कला एक मौत का मँड़राता हुआ बादल है......"

"हो सकता है! कला एक मौत का मँड़राता हुआ बादल है जो पश्चिम के आकाश में बिखरे हुए रक्तिम हलाहल को पी जाता है, किन्तु उससे बरसने वाली जीवनदायिनी बूँदों का स्पर्श कर धरा पुलकित हो उठती है!"

"धरा पुलकित हो उठती है, किन्तु कलाकार के प्राण ओस की बूंद की तरह ढुलक कर धूल में खो जाते हैं!"

"खो नहीं जाते राजकुमारी! वे वन-फूलों में सौरभ बन कर दिशाओं में गमक उठते हैं। जानती हो, कलाकार जीवन का विजेता होता है!"

"हुँ—कलाकार जीवन का विजेता होता है, किन्तु मृत्यु का शिकार! और ये निष्प्राण मूर्तियाँ, जिन्हें तुम जीवन की पूर्णतम अभिव्यक्ति कहते हो, ये कलाकृतियाँ वे मुरझाए हुए फूल हैं जिन्हें कलाकार सिसक-सिसक कर अपनी मृत्यु-समाधि पर बिखेरता जाता है। कला की साधना का पहला कदम कलाकार के शव पर चरण धर कर बढ़ता है। कला की प्रतिमा का प्रथम अभिषेक कलाकार के तरुण रक्त से प्रतिपादित होता है। भूल जाओ इस पागलपन को कलाकार! पूर्णता में जीवन नहीं होता। पूर्णता में होती है मृत्यु की शांति। अपूर्णता में स्पन्दन होता है, जीवन होता है, वासना का वेग होता है, गुनाह की रंगीनियाँ होती हैं, कल्पना की उड़ान होती है कलाकार!"

कलाकार ने कुछ उत्तर न दिया—केवल मुस्करा कर चुप हो रहा।

कलाकार व्यग्र था। वह बेचैनी से प्रतिमा के सम्मुख टहल रहा था—"क्या मैं हार जाऊंगा? क्या मेरी कला जीवनमयी न बन सकेगी? बोलो मेरी प्रतिमे! तुम्हें कौन से प्राणों की अर्चना चाहिए?"

प्रतिमा निस्पन्द थी।

"बोलो मेरी पत्थर की मूरत! अपना जीवन, अपना यौवन,

अपनी वासना सब कुछ समर्पित करने के बाद भी तुम मेरा मान न बचा सकोगी ? मैं अपनी तरुणाई के फूल तुम्हें चढ़ा चुका, फिर भी तुम्हारी पत्थर की नसें अभी सूखी क्यों हैं ? उनमें अभी खून की रवानी क्यों नहीं दौड़ी ?"

प्रतिमा मौन थी, अचल थी !

कलाकार ने उस प्रकोष्ठ में मृत्यु की घुटन का अनुभव किया, उसने उठ कर वातायन का आवरण हटा दिया। शङ्ख की घंटियाँ झनझना उठीं !

दूर प्रतीची के आकाश के घायल हृदय से ताज़ा खून फैल रहा था। उसके दर्द भरे वक्ष में सान्ध्य-तारे की नोक अब भी चुभी थी।

कलाकार क्षण भर उधर देखता रहा और फिर व्यथित होकर बोला—"राजकुमारी शायद सच कहती थी, अपूर्णता में ही जीवन है। पूर्णता शायद इसी मूर्ति की भाँति निर्जीव होती है।,'

कलाकार सहसा रुक गया। क्षण भर तक वह कुछ सोचता रहा और सहसा पश्चिम के आकाश का खून उसकी आँखों में उतर आया। जलती हुई निगाहें प्रतिमा पर डाल कर वह मुड़ पड़ा। उसकी गति में किसी भयानक निश्चय का आभास था।

प्रतिमा के सामने वह तन कर खड़ा हो गया।

"अब तक मैंने तुम्हारा निर्माण किया था, किन्तु तुम जीवन-मयी न बन सकीं। अब मैं तुम्हें नष्ट करूंगा। मेरा प्रेम अब तुम्हें चूर-चूर कर देगा ! फिर भी तुम जीवित न होगी, फिर भी तुम विद्रोह न करोगी ? ओ पत्थर की पूर्णता !" उसने हथौड़ा उठाया—आवेग से उसका शरीर काँप उठा, उसने पलकें मूंद लीं और भरपूर प्रहार किया।

सहसा किसी असीम शक्तिशाली बाहु ने उसकी कलाई थाम ली। उसने चौंक कर आँखें खोलीं। प्रतिमा की फौलादी अंगुलियाँ

उसकी कलाई पर थीं और उसके अधरों पर थी पथरीली मुसकान! प्रतिमा की पुतलियों में जहर छलक रहा था।

"कलाकार!" पत्थर के स्वर गूंज उठे—"तुमने आज मुझमें प्राण फूँके हैं, किन्तु ईश्वर से समता करने का अधिकार तुम्हें किसने दिया है?"

"मेरे कलाकार ने!"

"मानवीय सीमा को अतिक्रमण करने का दंड भोगने के लिए तैयार हो?

"दंड! दंड किस बात का? मैं अपनी कला के प्रति सदा ईमानदार रहा। मैंने अपनी पूर्णता के प्रति जागरूकता को धोखा देने की चेष्टा कभी नहीं की। मैंने कला की हत्या करने का पाप कभी नहीं किया!"

"यही तो तुम्हारा अपराध है। कभी पाप न करना स्वयं एक बहुत बड़ा पाप है। संसृति का नियम इसे नहीं सह सकता!"

"मैं केवल एक नियम जानता हूँ—प्रेम का!"

"प्रेम का?"

"हाँ पत्थर की मूरत, मैं अपनी कला को प्यार करता हूँ, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ!"

पत्थर के ओठ खिल गये।

"क्या तुम मेरा प्यार सह सकोगे? तुमने अपने से अधिक पूर्णता का निर्माण किया है—मेरे स्पन्दन को तुम अपने वक्ष पर सह सकोगे?"

कलाकार ने स्वीकृति का संकेत किया।

"तो आओ!" और पत्थर की दो भुजाएँ आलिंगन के लिए फैल गईं।

कलाकार आगे बढ़ा और मूर्ति ने उसे अपने पथरीले आलिंगन

में कस लिया। उसकी नसें चरमरा उठीं—उसकी पसलियाँ तड़क गईं, उसके दिल की धड़कन बन्द होने लगी।

संगमरमर की गर्दन झुकी और मूर्ति ने अपनी जहरीली पलकें कलाकार के अधरों पर रख दीं—उसकी आँखों का जहर कलाकार के खून में गुँथ गया।

बाहर के माधवी कुंज में कोयल हृदय फाड़ कर चीख उठी! राजकुमारी चौंक उठी—"क्या चैत्र आ गया? कोयल आज प्रथम बार कूकी है!"

"नहीं राजकुमारी, आज तो फाल्गुन पूर्णिमा है। देखिए न!" क्षितिज के पास उदास पीला चन्द्रमा धीरे-धीरे उठ रहा था।

"शृंगार करो! आज कलाकार के भाग्य का निर्णय करना है। पागल! कल्पनाओं से प्यार करता है, मूर्तिमान सौंदर्य को ठुकरा कर!"

और राजकुमारी ने केशों में लगा मृणाल-तन्तु खोल दिया। घटाएँ छिटक गईं। एक सखी उन्हें अगर के धुएँ से सुवासित करने लगी। दूसरी अलकों के गुम्फन में कनेर-कलियाँ सँजोने लगी। दूती ने कुसुम का रतनार अंगराग मुँह पर मलते-मलते चुटकी काट कर पूछा—"क्या अशोक-कुंज से छिप कर कामदेव ने कोई तीर तो नहीं चला दिया है?"

"चुप रहो!" राजकुमारी ने आवेश में कहा—"आज या तो नारी का सौन्दर्य हारेगा या कला का आकर्षण!"

और राजकुमारी चल दी। प्रकोष्ठ के द्वार बन्द थे। उसने कंकण संभाल कर धीरे से पट खोले और चीख पड़ी। मूर्ति के चरणों पर कलाकार का शव पड़ा था। ओठ जहर से नीले पड़ गए थे।

राजकुमारी क्षण भर खड़ी रही और उसके बाद जोर से हँस पड़ी—अट्टहास कर उठी। दूती सहम गई—"राजकुमारी! राजकुमारी !!"

"मना मत करो! हँसने दो जी भरकर मुझे। आज मेरी विजय हुई है!"

"उफ! कितनी निष्ठुर हो तुम!"

"निष्ठुर! मैं कलाकार की मौत पर हँस रही हूँ, क्योंकि मैं उसे प्यार करती थी! प्यार केवल हँसी है—भयंकर हँसी जो हम अनजाने में करते हैं। कल तक कलाकार मुझ पर हँसता रहा, आज मैं प्रेम पर हँस रही हूँ, कल शायद दुनिया हम सब पर हँसेगी।"

दूती सहम गई!

"और···यह पत्थर की प्रतिमा! तोड़ दो इसे, चूर-चूर कर दो इसे···" राजकुमारी ईर्ष्या से चीख उठी।

दूती आगे बढ़ी—

"नहीं रहने दो! इसे कलाकार की समाधि पर स्थापित कर देना! यह पूर्णता की प्रतीक—यह मृत्यु-चिन्ह! शायद दुनिया इसे कलाकार की देन समझ कर इसकी पूजा करेगी, पागल दुनिया!"

और राजकुमारी फिर हँस पड़ी।

नारी और निर्वाण

काली भोली पुतलियों को उठाकर पलकों की कोरों से लजाती हुई दृष्टि में यशोधरा ने मना किया—"न।"

सिद्धार्थ मुसकराए और उन्होंने पेंग बढ़ाई—

यशोधरा सहम कर बोली, "झूला पृथ्वी के समानान्तर ही रखो कुमार!"

"पृथ्वी के समानान्तर ? वह झूला ही क्या जो पृथ्वी के समानान्तर रहे—अरे ! झूले में तो वह वेग हो, पेंगों की वह ऊंचाई हो कि पृथ्वी झूमने लग जाय यशोधरा !" सिद्धार्थ ने कहा और पेंग लगाई।

वायु के सहसा आघात से यशोधरा के जूड़े में बंधी हुई मृणाल-तन्तुओं की जाली अकस्मात् टूट गई और उसके केश लहरा उठे। यशोधरा ने एक हाथ से रेशम की डोर थामी और दूसरे से स्वर्णपट्ट, और अनुनय से कहा, "धीमे-धीमे झूलो कुमार ! धीमा संगीत अधिक सुखदायी होता है। संगीत का सम अधिक मधुर होता है कुमार!"

"संगीत का सम तो मधुर है किन्तु उसकी मधुरता का आनन्द आलाप की ऊंचाई और स्वरों के घुमाव के बाद ही आता है गोपा।"

झूला बढ़ता गया........

रसाल की शाखें झूमने लगीं। पास के चम्पक-तरु की डालियाँ गुँथ गई थीं रसाल की शाखाओं से। चम्पक की डालियों पर थे फूल और फूलों पर थीं वर्षा की बूँदें—शाखें झूमीं और चम्पकसौरभ से सनी हुई बूँदें सहसा चू पड़ीं। यशोधरा ने अनुनय और प्रार्थनाभरे नेत्र ऊपर उठाए और वे बूँदें चू पड़ीं उसके कपोलों पर। सिद्धार्थ ने देखी उसकी विवशता और उसके मुख पर शबनम सी चमकती हुई सुरभित बूँदें—उन्होने झूला रोक दिया—यशोधरा ने मुसकरा कर देखा उनकी ओर।

सिद्धार्थ ने चम्पक-सौरभ से भी अधिक मादकता वाणी में उड़ेल कर कहा, "नारी की मूक भंगिमाओं में भी कितने संगीत लहरा उठते हैं, उसके मौन में भी कितने स्वर ध्वनित हो उठते हैं—मुझे झूला रोकना ही पड़ा न।"

यशोधरा धीरे से उतर गई और प्रसंग को उठाते हुए कहा, "झूला तो रोकना ही पड़ता! झूला आगे बढ़े या पीछे पर उसे पृथ्वी पर आना ही पड़ता है, संगीत के सम की भाँति और नारी वह सम है आर्य, जहाँ पर घूम फिर कर पुरुष को आना ही पड़ता है।"

सिद्धार्थ अभी झूले ही पर थे, "क्या झूले को पृथ्वी पर आना ही पड़ेगा? क्या झूला आगे ही आगे बढ़ता नहीं जा सकता······?"

"नहीं, कदापि नहीं।" यशोधरा ने उत्तर दिया।

"आश्चर्य है! क्या पुरुष अपने पथ पर सीधे नहीं चला जा सकता? क्या घूम कर उसे आना ही पड़ेगा नारी के आश्रय में?"

"अवश्य।" यशोधरा ने उत्तर दिया—

"अच्छा तो देखो!" सिद्धार्थ ने उत्तर दिया, "तुम भूमि से देखो यशोधरा! झूला पृथ्वी पर नहीं लौटेगा, नहीं लौटेगा—वह आगे ही बढ़ेगा—"

सिद्धार्थ ने झूला आगे बढ़ाया—झूला बढ़ता गया, बढ़ता गया।

वह रसाल-वृक्ष से ऊँचा हो गया—सहसा रेशम की डोर टूट गई। यशोधरा स्तब्ध थी, पर आश्चर्य से उसने देखा कि स्वर्णपट्ट नीचे नहीं गिरा, ऊपर ही चढ़ता गया·········।

सहसा बरसात की काली घटाएँ फट गईं और टूटे तारे के समान सिद्धार्थ उनमें छिप गए। यशोधरा चीख उठी—"कुमार!"

काली घटाएँ हँस पड़ी और उसकी आँखें खुल गईं। भाल के स्वेद-बिन्दु उसने पोंछे और उखड़े स्वर में कहा, "बड़ा विचित्र स्वप्न था। देखूँ, आर्य कुशल से तो हैं!"

मणिदीप पर ढँका हुआ कमलपत्र उसने उठा दिया—कक्ष में धीमी हरीतिमा लहरा उठी—उसने मणिदीप उठाया और कुमार के शयनकक्ष की ओर चली।

शिशु राहुल ने प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा उसकी ओर; यशोधरा ने थपथपा कर कहा—"आती हूँ। लाल!" और चली सिद्धार्थ के शयनकक्ष की ओर। अर्धरात्रि बीत चुकी थी। शयनकक्ष के समीप जाकर उसने झाँका—शय्या शून्य थी।

विचित्र आशंका से वह सहम गई—उसने काँपते हुए स्वर से पुकारा, "कुमार!"

आकाश की घटाएँ हँस पड़ीं। वह थी महाभिनिष्क्रमण की रात्रि।

टप!

टप!!

टप!!!

वटवृक्ष के नीचे डाल से डाल, पल्लव से पल्लव पर फिसलती

हुई वर्षा की बूँदें चू पड़ीं सिद्धार्थ की अंजलि में—उनका ध्यान भंग हो गया और उन्होंने आँखें खोल दीं—पास के झुरमुट में कोयल कूक उठी—"कुहू।"

रसाल के हरे परदे में पपीहा बोला—"पीऊ।"

इस कोलाहल से घबराकर सिद्धार्थ ने आँखें बन्द कर लीं—"मुझे निर्वाण चाहिए। मैं इन बूंदों सा सूक्ष्म बन सकूं—मैं इस विहग-ध्वनि सा विस्तृत हो सकूं—मैं जीवन का सत्य देखूंगा, जीवन का सत्य।"

पर सामने के धुंधले वायु-पट में सत्य के स्थान पर चमक उठी नारी की छाया—

"दूर हटो नारी की छाया—मेरे निर्वाण-पथ में बाधक मत बनो। मुझे निर्माण चाहिए। मुझे भ्रम में न डालो नारी!" छाया और भी पास चली आई—उसके हाथ में विषपात्र है, ऐसा सिद्धार्थ को प्रतीत हुआ।

"कौन यशोधरा?"

"नहीं, मैं हूँ सुजाता—ग्रामाधिपति की कन्या—आर्य यह प्रसाद ग्रहण करें!"—और उसने खीर का पात्र सम्मुख रख दिया।

सिद्धार्थ ने सिर हिला दिया—"न!"

"क्या मेरी पूजा व्यर्थ जायगी!" सिद्धार्थ ने देखा—सुजाता के नयनों में था शहद सा वात्सल्य, चाँदनी सा स्नेह।

"ग्रहण करो न बन्धु!" सुजाता ने कहा और वट में सूत बाँधने लगी—"बन्धु!" सिद्धार्थ ने कहा, "नारी के प्रणयपाश को तोड़ा जा सकता है, पर स्नेह की इस अक्षय वात्सल्य-धारा में मनुष्य को तिनके सा बहना ही पड़ता है।" खीरपान कर सिद्धार्थ ने गहरी साँस लेकर सोचा—

सुजाता वट में सूत बाँध रही थी। "नारी!" सिद्धार्थ ने कहा,

"ममता के इन कच्चे सूतों से वट के कितने झंझावातों को बाँध डालती हो तुम !"

सुजाता अपना कार्य समाप्त कर चली गई झुरमुट की ओट में। झाड़ियों में बुद्ध ने देखी फिर यशोधरा, पर वह अकेली न थी, उसके साथ था बालक राहुल।

"यशोधरा ! यशोधरा !" यशोधरा की मूर्ति सहसा हट गई—वृक्ष के नीचे थी केवल एक हरिणी और उसके पार्श्व में एक भोला सा मृगशावक—

"क्या मुझे भ्रम हो रहा है !" सिद्धार्थ बोले और फिर उन्हें दीखी यशोधरा—पर इस बार उसके साथ अकेला राहुल न था। यशोधरा के भाल से फूट रही थीं अगणित रजत-किरणें और उसके कोमल अंचल के नीचे कोलाहल कर रहे थे अनेक शिशु। वह अपनी दृष्टि से बरसा रही थी ममता की मृदुल बूँदें—

"नारी ! माँ ! शक्ति ! तुम्हारा यह स्वरूप देवोपम है यशोधरा ! मैंने तुम्हें पहचाना न था, यशोधरा।" सिद्धार्थ उठकर चले उस ओर—पर उठते ही छाया विलीन हो गई। नीचे रसाल-वृक्ष के आँचल में लहरा रहे थे दूर्वादल और ऊपर पल्लवों से चू रही थीं वर्षा की बूँदें।

"क्या यह स्वप्न था ?"—सिद्धार्थ ने सोचा, "नहीं, यथार्थ जीवन से कल्पना का यह स्वप्न सत्य था ! नारी का यह स्वरूप—मातृत्व की यह छाया—मैं आज तक इससे अनजान था ! नारी ! तुम नारी बनकर इस संसार में बहा देती हो प्रेम की धारा और प्यारे शिशु उसमें जलक्रीड़ा करते हैं। जीवन दुःखमय है पर प्रेम की यह छाया उसमें भर देती है सुख की ज्योति—मुझे निर्वाण नहीं चाहिए। मैं मनुष्य को सुनाऊँगा यह प्रेम का संदेश—मैं बसाऊँगा प्रेम का, करुणा का वह देश जहाँ के कण-कण में निर्वाण बसेगा—मझे निर्वाण नहीं चाहिए।"

सिद्धार्थ उठ खड़े हुए। सहसा उनके सामने चमक उठा एक असीम ज्योति-पुञ्ज।

"मैं हूँ निर्वाण।" आकाशवाणी हुई।

"मुझे निर्वाण नहीं चाहिये!" बुद्ध ने उत्तर दिया।

"मैं तुम्हारे आश्रय में हूँ बुद्ध!"

"मुझे निर्वाण नहीं चाहिए।" और बुद्ध चल पड़े।

"बुद्ध! जो मनुष्य संसार को आश्रय देने जा रहा हो वह मुझे आश्रय नहीं दे सकता?"

बुद्ध रुक गए, शान्त स्वर में बोले—"तो निर्वाण मेरे चरणों में शक्ति दे कि मैं द्वार-द्वार पर जाकर बजा सकूँ करुणा की वंशी—सुना सकूँ करुणा का संदेश!"

और वह ज्योति-पुञ्ज समा गया उनकी नख-ज्योति में—पर बुद्ध निर्वाण पाकर भी आकाश की ओर जाने के स्थान पर चल पड़े पृथ्वी की ओर—

सिद्धार्थ थे अब बुद्ध, तथागत, भगवान्! सङ्घ की एक विशाल सभा में उपदेश प्रारम्भ होने वाला था।

सहसा गौतमी ने आकर कहा, "देव!" बुद्ध ने मुड़ कर देखा—माता गौतमी—उन्होंने प्रणाम किया और पूछा, "यह तेजस्वी बालक किसका है माता?"

"यह बालक तुम्हारा—नहीं, यह यशोधरा का बालक है सिद्धार्थ!" गौतमी ने उत्तर दिया।

"कौन राहुल?" झुक कर बुद्ध ने उसके मस्तक को चूमा—"इसके भाल पर स्वर्ग की छाया है गौतमी—इसके नयनों में करुणा की डोर है—मैं इसे भिक्षु बनाऊँगा—"

"यह आपकी सम्पत्ति नहीं है, यह यशोधरा की सम्पत्ति है आर्य !" आनन्द ने कहा—

बुद्ध बोले—"कहाँ है यशोधरा ? बुलाओ, मैं उससे आज्ञा ले लूँ !"

"वह नहीं आयगी !" गौतमी ने उत्तर दिया, "पिपासित जलधार के पास जाता है, जलधार पिपासित के पास नहीं आती।"

"मैं स्वयं चलूँगा..........!" बुद्ध ने उत्तर दिया।

अमा की घोर रात्रि में दूर रसाल-वृक्ष के उस उपवन में दिन का सा प्रकाश हो रहा था। अपने कक्ष के द्वार पर यशोधरा शून्य दृष्टि से देख रही थी उस ओर। उन्ही पल्लवों में उलझी है उसके जीवन की ज्योति जिसने उसके हृदय में इतना अँधेरा भर दिया है।

उसने गहरी साँस ली और सामने देखा बुद्ध—वह चकित रह गई। जल्दी से गले में आँचल डालकर उसने चरणस्पर्श किया—

दोनों ने एक दूसरे को देखा और स्तब्ध रह गए।

सहसा बुद्ध ने अनुभव किया कि जैसे उनके हृदय में कोई कुछ बोला—"कौन निर्वाण ?"

"हाँ, तथागत ! मैं तुम्हारी साधना की तीव्रता सहने में असमर्थ हूँ। मैं जाना चाहता हूँ नारी के स्नेह की कोमल छाया में।"

"जाओ।" बुद्ध ने उत्तर दिया।

जिस समय यशोधरा ने अपना शीश बुद्ध के चरणों पर रखा, उसने अनुभव किया अपने हृदय में झिलमिलाती हुई ज्योति का।

"मैं निर्वाण हूँ—यशोधरा को बुद्ध की एकमात्र भेंट।" ज्योति बोली।

"यह देवता की भेंट मेरे भाल पर सुशोभित हो।" यशोधरा ने कहा।

और यशोधरा के भाल का सुहाग-बिन्दु ज्योति से झिलमिला उठा। बुद्ध ने देखा और मुसकरा दिया।

यशोधरा ने देखा और सचेत हो गई।

"यशोधरा ! मैं तुमसे एक भीख माँगने आया हूँ।" बुद्ध ने कहा। यशोधरा मुसकराई। "अन्त में स्वर्ग को भी जीत कर भूले को पृथ्वी पर आना पड़ा न ?" उसने पूछा।

"क्या ! कैसा भूला ?" बुद्ध ने पूछा।

"ओह ! मैं भूल गई—वह तो केवल स्वप्न था !" यशोधरा ने कहा।

"जीवन ही स्वप्न है देवि ! पर उस स्वप्न ही में तो सत्य है।" बुद्ध बोले।

"मैं भी उस स्वप्न में सत्य का आभास ढूँढ़ रही हूँ तथागत ! मेरा तात्पर्य है—अन्त में निर्वाण को नारी के सामने झुकना पड़ा न आर्य।

"नारी ! हाँ कह सकती हो ! पर निर्वाण प्रणयिनी गोपा के सामने नहीं झुका, वह झुका है राहुल की माता के सामने। निर्वाण नारी के सामने झुका अवश्य—पर तब जब मातृत्व की साधना ने नारी को निर्वाण से भी ऊँची बना दिया।"

यशोधरा हँस पड़ी। "तो मुझे भिक्षा देती हो देवि ?"—बुद्ध ने राहुल की ओर संकेत किया।

यशोधरा के अधरों की विद्युत् लुप्त हो गई और आँखों में छा गईं सजल घटाएँ—रुँधे कंठ से बोली, "ले जाओ।"

"मैं इस भिक्षा के लिए तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ देवि ! तुम्हारा सुहाग, तुम्हारा निर्वाण अचल रहे।"

और यशोधरा के सिन्दूर-बिन्दु में झिलमिला उठा बुद्ध का निर्वाण।

तारा और किरण

वह विस्मित होकर रुक गया। नील जलपटल की पारदर्शक दीवारों से निर्मित शयन-कक्ष-द्वार पर झूलती हुई फुहारों की झालरें और उन पर रंगीन इन्द्रधनुष की धारियाँ। सीपी की रंग-बिरंगी आभा वाली कोमल शय्या और उस पर आसीन मुक्ता-सी स्वच्छ और प्रकाशमयी वरुण-बालिका। उसका गीत सहसा रुक गया और वह असीम विस्मय से निर्निमेष पलकों से देखने लगा सौन्दर्य की वह नवनीत ज्योति........

वरुणा ने अपनी अलसाई पलकें उठाईं। आगन्तुक की ओर एक कुतूहल की दृष्टि डालकर वह सजग हो गई। बिजली की कोर वाले सुरमयी बादल के आँचल को उसने लापरवाही से कंधों पर डाल लिया और जूड़े से गिरे हुए जलफूलों पर वह कोहनी टेक कर बैठ गई।

"उर्मि—क्या यही तुम्हारी नवीन खोज है?" आगन्तुक की ओर इंगित करते हुए वरुणा बोली "हाँ रानी"—उसके साथ की मत्स्यबाला लहरों-सी लहरा कर बोली—

"कल संध्या को अन्तिम किरणें बटोरने हम लोग स्थल तट पर गई थीं रानी? किन्तु सहसा जल-वीचियों के नृत्य के साथ पवन के झकोरों में कुछ स्वर-लहरियाँ नृत्य कर उठीं—उनमें कुछ अभिनव आकर्षण था। कुछ विचित्र टीस थी। हम लोग किरणों बटोरना

भूल गईं और उन्हीं स्वरों में बँध कर खिंची चली गईं एक सैकत-राशि के पास जहाँ यह वंशी बजा रहा था और निर्निमेष पलकों से देख रहा अस्तप्राय सूर्य की ओर—हम लोग मंत्रमुग्ध-सी खड़ी रहीं—स्तम्भित, मौन, निश्चल—हमारी चेतनाएँ जैसे इसके स्वरों के साथ बिखरती जा रही थीं पवन के झकोरों में—इसने हमको बाँध लिया था अपने स्वरों में·········वंशी का स्वर गूँजता रहा—गूँजता रहा—गूँजता रहा—जब हमें चेतना हुई तो देखा गायक अचेत था। हमें वह बन्दी बना चुका था। और हम उसे बन्दी बना लाईं। रानी की सखियों पर भ्रम और संज्ञाहीनता का आवरण डालने के अपराध में इसे दंड मिलना चाहिये?"

"अच्छा तुम जाओ। मैं बाद में इसका निर्णय करूँगी।"

आगन्तुक मौन था। उसे यह सभी कार्य मायाजाल प्रतीत हो रहा था। दिवस के घनघोर श्रम के बाद बैठा था सागर तट पर अपनी वंशी लेकर अपने थके मन से विषाद का भार हलका करने, और पहली ही फूँक के बाद उसने देखीं चारों ओर नाचती हुई मत्स्यबालिकाएँ। उनके शरीर से सौरभ की इतनी तीखी लहरें उड़ रही थीं कि वह उनकी मादकता में बेसुध हो गया। और नयन खुलने पर अपने को पाया एक विचित्र प्रासाद में जो नील जलपटल से बना था। जिसके अन्दर परियाँ संगीत-भरी गति से घूम रही थीं—उसके पश्चात् ही अपने को पाया रानी के सम्मुख। विस्मय ने उसके शब्दों की शक्ति हर ली थी और वह अथक आश्चर्य से देख रहा था ये जादू के खेल—

"लो इस पर आसीन हो अतिथि!" माया देश की रानी ने स्वयम् उठ कर कोमल मृणाल-तन्तुओं से बुना हुआ एक आसन डाल दिया—वह उस पर बैठ गया।

"अतिथि !", पंचम स्वर में वरुणा बोली—"सुनती हूँ इन नील लहरों के वितान के पार कोई दूसरा लोक है। जहाँ उन्मुक्त आकाश है, जहाँ स्वच्छन्द पवन के झकोरे कलियों को अनजाने में चूम लेते हैं। जहाँ सूर्य की किरणें बादलों को सजल रंगों में रँग जाती हैं। तुम तो उसी लोक से आए हो न ?"

"हाँ रानी !" शान्त स्वर में आगन्तुक ने उत्तर दिया।

"अतिथि ! मेरी कितनी इच्छा होती है कि मैं भी अपनी सखियों के साथ उस विशाल सिकता-राशि पर किरणें बुनने जाऊँ। किन्तु मुझ पर रानीत्व का अभिशाप है न। चिरकाल से इन जलप्राचीरों में सीमित रहने से अब मैं लहरों की तीव्रता सहने में असमर्थ हूँ अतिथि ! फिर भी तुम्हें देख कर ही उस लोक के वैभव का अनुमान करूँगी। तुम मुझे वहाँ की कथाएँ सुनाओगे न ?"

"अवश्य, पर रानी ! तुम वहाँ की कथाओं को समझ न पाओगी। वहाँ की परम्पराएँ—वहाँ का वातावरण वहाँ के निवासी यहाँ से भिन्न हैं—"

"तुम यहाँ भी उस वातावरण का निर्माण करो अतिथि !—मेरी उत्कट इच्छा है उसे समझने की। मैं यहाँ की नित्यता से अब ऊब चुकी हूँ। मुझे कुछ नवीन चाहिए—कुछ जिसमें परिवर्तन की गति मिल सके—जिसकी ओट से जीवन का स्पन्दन झाँक कर विहँस पड़े—तुम इसमें मुझे सहयोग दो अतिथि ! यह वरुण-लोक की रानी की आज्ञा नहीं प्रार्थना है"—

"मुझे स्वीकार है रानी !"

रानी के उदास नेत्रों में बिजली चमक उठी। और वह दोनों करों से जल-पराग उड़ाती हुई चल पड़ी सखियों को परिवर्तन का नवीन संदेश सुनाने--अतिथि ने अपनी वंशी उठाई और उसके गम्भीर उच्छ्वासों से वातावरण भर गया।

वरुण-लोक में चञ्चल लहरों पर परिवर्तन लहराने लगा था। संध्या होते ही जब सागर-तल की श्यामता में तम का प्रगाढ़ आवरण छा जाता था और दीपित पंखोंवाली मत्स्यबालाएँ जल-प्रवाह में प्रकाश बिखेरने लगती थीं उसी समय साँझ की उदासी चीर कर गूञ्ज उठता था आगन्तुक की वंशी का जादूभरा स्वर–लहरें निश्चेष्ट और निष्पन्द हो जाती थीं। जल-फूल नयन मूँद कर डूब जाते थे आनन्द में और चारों ओर छा जाती थी एक रहस्यमयी तन्मयता—वरुणा रानी बेसुध होकर वंशी के स्वरों पर नाच उठती थी। कल्पना का साम्राज्य छा जाता था और उसमें बुन जाता था रेशमी तानों का स्वर्ण वितान—

एक दिन जब नीलोत्पल अलसा कर अपनी पलकें मूँद रहे थे तब मृणालों में एक गम्भीर वंकिमता सिहर उठी थी। और जब जल-तितलियाँ फीकी मुस्कानों से मुँदते फूलों से बिदा माँग रहीं थीं तो अतिथि का मन न जाने कैसी उदासी से छा उठा। उसने अपनी वंशी एक ओर रख दी और करुण स्वर में गुनगुना उठा एक अपना देश-गीत। करुण स्वर नील जलप्राचीरों से टकरा कर टूटने लगे। धीरे-धीरे सारा वातावरण एक अज्ञात वेदना से सिसकने लगा।

व्याकुल रानी बोल उठी—रुँधे कंठ में-भर्राए स्वर में—"बस बन्द करो आगन्तुक। तुम्हारा यह गीत जैसे एक विचित्र घुटते हुए वातावरण की सृष्टि कर रहा है—मुझसे यह सहा नहीं जाता।"

आगन्तुक धीमे से एक उदास हँसी हँस कर बोला—"यह हमारे देश की कृषक बालाएं गाती हैं रानी। जब बरसात की पहली घटाएं नन्हीं बौछारों से उनके तन-मन को लहरा जाती हैं। और उस सिहरन को अनुभव करने वाली उनके प्रिय की विशाल भुजाएं उनसे दूर होती हैं तब उनके हृदय का प्रेम अवरुद्ध झरनों की

भाँति कठोर शिलाओं से टकरा कर करुण स्वरों में आर्तनाद कर उठता है—और तब हरे भरे कुंजों में—पनघटों पर और लहराते खेतों में गूँज उठते हैं ये सिसकते गीत—"

"ठहरो अतिथि ! तुम्हारे शब्द कभी-कभी बहुत गूढ़ हो जाते हैं। बरसात की घटाएँ उमड़ती हैं, कृषक-बालाएँ गाती हैं; ठीक ! पर उनके मन का प्रेम उमड़ता है—प्रेम क्या आगन्तुक ?" नितान्त भोलेपन से वरुण-बालिका ने प्रश्न किया—

आगन्तुक के मस्तक पर चिन्ता की उलझन की दो चार रेखाएँ खिंच गईं—"प्रेम क्या ? बड़ा ही गूढ़ प्रश्न है रानी ! इसका उत्तर देना असम्भव है।"

"तब क्या मेरी जिज्ञासा अतृप्त ही रहेगी ?" कुतूहल और नैराश्यभरे स्वरों में रानी ने पूछा—

"अच्छा रानी क्या तुमने भी किसी उदासी भरी बेला में अनुभव किया है अपने हृदय में गूँजता हुआ कोई दर्दीला स्वर—क्या तुम्हारे हृदय में कभी अनजाने अकारण ही कोई पीड़ा कसक उठी है और तुमने सुना किया है अपने मौन हृदय के खंडहरों में किसी अव्यक्त अभिलाषा का करुण वंशी-रव।"

"अतिथि ! तुम बड़ी रहस्यमयी बातें बता रहे हो—मैं कुछ नही समझ पा रही हूँ।"

"हूँ ! तुम समझ भी नहीं सकती रानी ! हम मानव में ही इस प्रेम की अभिलाषा का अनुभव करने के लिए जीवित स्पन्दित हृदय चाहिए रानी—यह प्रेम अलौकिक होते हुए भी वास करता है हम लौकिक नश्वर प्राणियों के ही हृदय में। यह तुम्हारे मायालोक से अपरिचित है—"

"तो क्या मैं प्रेम से अपरिचित ही रहूँगी ? मैं कितनी भाग्य-हीन हूँ। इस असीम जलराशि में रहकर भी मैं अतृप्त तृष्णा से

जलती ही रहूँगी—मैं कितनी दुःखी हूँ। अतिथि ! मेरा रानीत्व मेरे नारीत्व के स्वच्छन्द विकास को चूर-चूर कर रहा है—यह असीम वैभव, यह अनन्त यौवन क्या यों ही........" रानी का गला भर आया और उसके सीपी के समान नेत्र में नाच उठे दो बड़े-बड़े मोती—

अतिथि उद्विग्न हो उठा—उसने अनजाने रानी को व्यथित कर दिया था—उसने रानी की ओर क्षमाप्रार्थी की दृष्टि से देखा। रानी करुणा और याचना भरे स्वरों में बोली—"तुम मुझे प्रेम न सिखलाओगे अतिथि ? मैं मानवी नहीं हूँ पर न जाने क्यों यह शब्द मुझे कुछ विस्मृत युगों का स्मरण दिला रहा है। प्रतीत होता है जैसे जन्म जन्मान्तर की विस्मृति को चीर कर कोई अव्यक्त शब्दों में मुझे सुना रहा हो प्रेम के उदास गीत, क्यों मेरे ही हृदय के रहस्यों से मुझे अपरिचित रक्खोगे अतिथि........" और टप-टप दो आँसू चू पड़े रानी के आँचल पर—

अतिथि ने जैसे प्रायश्चित का मार्ग ढूँढ़ लिया। एक विचित्र मादकता से—रानी के नयनों में नयन डालकर वह मृदुल-दुलार-शब्दों में बोला—"मैं तुम्हें प्यार सिखाऊँगा मेरी रानी !—"

रानी के उदासी के बादल फट गए और उनमें से झाँक पड़ीं दो चार उज्ज्वल हास की रेखा-किरणें—

पथिक प्रासाद के झरोखे से देख रहा था—चारों ओर फैली हुई असीम जलराशि। चुपके से लहरों को लहरें चूमती थीं और झिझक कर पीछे हट जाती थीं। एक विचित्र आशंका से त्रस्त सी होकर, बेसुध पथिक को पता नहीं था कब रानी उसके पार्श्व में आकर खड़ी हो गई—रानी के चंचल करों ने चुने कुछ जल-पाटल

और उन्हें राशि-राशि बिखेर दिया अतिथि—भावमग्न अतिथि-पर। अतिथि ने चौंककर मुड़कर देखा—वरुण-लोक की रानी उसके हृदय-लोक की रानी—उसने वे कोमल जल-पाटल उठाए और उन्हें मस्तक से लगा लिया—

"किन्तु इनमें सौरभ तो है ही नहीं रानी।"

"पर इनमें अनन्त यौवन तो है, अबाध विकास तो है, अमर सौन्दर्य तो है—क्या तुम्हारे लोक में फूलों में सौरभ भी होता है अतिथि? विचित्र है तुम्हारा लोक—सौन्दर्य तो रूप का गुण है—पर सौरभ तो नहीं—फिर भी तुम्हारे लोक में फूलों में भी सौरभ होता है।"

"हाँ! हमारे फूलों में सौरभ होता है रानी! हमारे लोक की पार्थिवता में ऐसे ही अलौकिक गुण रहते हैं रानी! रूपवान फूलों में सौरभ, कठोर लौह-तारों में मधुर स्वर और मादक यौवन में अलौकिक प्रेम—"

"तो प्रेम यौवन-सुमन का सौरभ है—लेकिन अतिथि! मत्स्य-बालाओं से सुनती हूँ कि इन्हें कभी-कभी तटों पर बहकर एकत्र हुए राशि-राशि फूल मिलते हैं जो निरन्तर जल में रहने से गल जाते हैं। उनका रंग उड़ जाता है और उनसे निकलने लगती है कड़ी दुर्गन्ध—कभी-कभी श्मशान घाटों पर भस्म के ढेरों में दबी मिलती हैं फूल-मालाएँ, जो जलकर शुष्क हो जाती हैं और जो हल्के स्पर्श से चूर-चूर होकर बिखर जाती हैं। कैसा दर्द भरा वर्णन है अतिथि! क्या इन्हीं फूलों की भाँति तुम्हारे देश का यौवन भी अस्थिर है? क्या वहाँ का प्रेम भी इतना नश्वर है—बोलो।"

"हाँ रानी! यौवन के आश्रित रहने वाला प्रेम भी इतना ही नश्वर है।"

"अतिथि !" रानी चीख पड़ी। "प्रेम नश्वर है, यौवन अस्थिर है। नहीं-नहीं अतिथि ! ऐसा मत कहो।"

किन्तु रानी !"

"किन्तु परन्तु नही अतिथि ! प्रेम नश्वर है, यौवन अस्थिर है। आहा ! मेरे हृदय में जैसे ज्वालामुखी तप रहा है—मेरी चेतना में जैसे तूफान गरज रहे हैं। मेरे मस्तिष्क में जैसे भूचाल आ रहे हैं अतिथि ! प्रेम नश्वर है !"

रानी अर्ध-विक्षिप्त सी अपने शयन-कक्ष की ओर लड़खड़ाते पाँवो से भागी—अतिथि स्तम्भित था—चकित था—वह सान्त्वना देने के लिए पहुँचा रानी के पास, पर शयन-कक्ष के पट बन्द थे। साँझ हुई, वे पलक मूँदकर सो गए। सात बार कमल फूले और मुरझाए पर रानी के पट पूर्ववत् बन्द थे—

अतिथि अधीर हो गया। रानी का अभाव उसे व्याकुल किए दे रहा था। वह पहुँचा और फुहारों की झालरें हटाकर उसने झाँका कक्ष के अभ्यन्तर में—शय्या पर अधलेटी रानी सिसक रही थी। वह अपने पर नियंत्रण न कर सका।

"रानी !" आकुल स्वरों में उसने पुकारा।

रानी सिसकते हुए बोली "आओ अतिथि !"

अतिथि भीतर गया—

रानी के आँसू थमे और वह संयत स्वरों में बोली—"अतिथि ! मैं युगयुगों से प्रेम की प्रतीक्षा में जीवित थी। मेरी जन्म-जन्मान्तर की साधनाओं का उद्देश्य प्रेम था—मैं अपने अनन्त यौवन का साफल्य प्रेम में पाना चाहती थी। तुमने प्रेम की नश्वरता का चित्र खींचकर मेरी गति का आधार मुझसे छीन लिया। अतिथि ! तुमने मेरी अन्तिम आशा को एक कठोर प्रहार से धूल में मिला

दिया है—तुमने मेरे अन्तिम प्रदीप को एक निर्मम झोंके से बुझा दिया है और मुझे छोड़ दिया है घोर तिमिर में भटकने के लिए एकाकी—यह किस जन्म के कृत्यों का बदला तुम मुझसे ले रहे हो आगन्तुक ? बोलो, इसका उत्तर दो।"

पथिक आश्चर्यचकित था। उसने कुछ कहना चाहा पर उसके शब्द ओठों पर ही घुटकर रह गए। उद्विग्न, व्याकुल और अधीर होकर उसने काँपते करों से थाम ली रानी की मृणाल भुजाएँ और उन पर चू पड़े दो तप्त आँसू।

रानी चोट खाई हुई नागिन की भाँति बल खाकर उठ बैठी—"यह क्या किया अतिथि ? उसने आग्नेय नेत्रों से पथिक की ओर देखा—"यह तुम्हारा प्रथम स्पर्श जैसे मुझे भस्म कर रहा है—मेरे तन का कण-कण जैसे जल उठा है—शायद तुमने प्रेम के करो से मुझे स्पर्श कर लिया है और तुम्हारे नश्वर मृत्युलोक की प्रेम की छाया मेरे अनन्त यौवन पर भी पड़ गई—आह ! मेरे हिम से अंग गल रहे हैं इसमें······अतिथि······"

अतिथि प्रयत्न कर रुँधे गले से बोला—"रानी ! हम मनुष्यों का प्रेम मनुष्य ही समझ सकते हैं—यौवन का आश्रित प्रेम नश्वर होता है—पर प्रेम का आश्रित प्रेम अमर—हम नश्वर जानते हुए भी पलकें मूँद कर प्रेम करते हैं—क्योंकि हमारा प्रेम आत्मदान होता है—याचना नहीं—तुमने प्रेम को यौवन की तुला पर तौलना चाह रानी ! और प्रेम के भीषण ताप में गल रही हो। तुम्हारी वासनाएँ और तुम्हारा नश्वर यौवन—और मैं। तुम अनन्त शून्य मे झाँककर देखना। रानी ! मैं प्रेम की जलन में जलकर भी तुमसे प्रेम करूँगा। प्रेम की जलन मेरे हृदय में तुम्हारी कांचन-प्रतिमा को और भी चमका देगी रानी ! मेरा प्रेम मलिन न होगा—बिदा।"

पर इस कथन के पूर्व ही रानी का हिम-तन गल चुका था

रह गई थीं कुछ जल की लहरें जो प्रबाल के फर्श पर चूर-चूर होकर बिखर गईं।

सुदूर क्षितिज में जहाँ आकाश और समुद्र मिलकर एक रहस्य-मय देश का सृजन करते हैं—वहाँ साँझ होते ही आता है एक चम-कीला तारा—लहरें उसे चूमने का व्यर्थ प्रयास करती हैं। दो चार बादल आकर दुलराते हैं और वह अपना मुँह छिपाकर उनके विशाल वक्ष पर रो लेता है।

प्रातर्वेला में सूर्य की दो किरणें किसी की विशाल भुजाओं की भाँति आगे बढ़ती हैं उसे आलिंगन में भरने के लिए, पर उनके समीप आने के पहले ही वह अरुणिमा में मुँह छिपाकर लौट जाता है अपने निराशा के देश को। व्याकुल किरणें निराशा से चूर-चूर होकर बिखर पड़ती हैं सिकताराशि पर—

मत्स्यबालाएँ आती हैं। उन स्वर्ण किरणों को बीन कर ले जाती हैं वरुण-लोक। उनका कहना है कि यह है उनकी अदृश्य रानी का प्रेम जो तारे के रूप में चमकते अतिथि के पास जाता है पर उसके ताप से निस्तेज होकर बिखर जाता है पृथ्वी पर और वे उसे बीन लाती हैं अपनी रानी की स्मृति में—

वरुण-लोक में अब प्रेम करना मना है।

कुबेर

उस समय :—

प्रकृति में—

शस्यश्यामला घाटियाँ भी थीं और रूखे-सूखे मरुस्थल भी। पर उन मरुस्थलों की नीरसता में भी जो वनफूल अंकुरित हो उठते थे, वे अपने सौरभ में अद्वितीय थे। वसन्त भी था और पतझड़ भी। किन्तु पतझड़ के पीले पत्तों में तेजोमयी कान्ति रहती थी जो वसन्त के रंगीन फूलों में छा जाती थी।

मनुष्य में—

सुख भी था और दुःख भी। किन्तु उसके दुःख में भी एक उल्लास था क्योंकि वह दुःख को दुःख न मानता था। उसकी वेदना में भी एक आनन्द था क्योंकि वह जीवन की सम्पूर्णता को पहचानता था। उसकी मृत्यु में भी एक दृढ़ता थी क्योंकि वह आत्मा की अमरता पर विश्वास करता था।

मनुष्य और प्रकृति में—

साहचर्य था। मनुष्य स्वयं प्रकृति के एक पारिजात-कुसुम की भाँति जीवन की डाल पर सहसा पल्लवों का आवरण हटाकर खिल

पड़ता था। रात्रि की नीरवता को अपने सौरभ से गुदगुदाकर, प्रभात की प्रथम किरण के साथ ही डाल की गोद से उछलकर भूमि को चूम चूम लेता था। प्रकृति अपनी सद्यःविकसित तरुण कलिकाओं के समीर के शीतल झकोरे और चंचल जल-लहरियाँ मनुष्य को समर्पित कर देती थी और मनुष्य अपनी मानवीय भावनाओं से प्रकृति पूर्ण कर देता था। वह फूलों के सौरभ में अपने स्वरों के सहारे बिखेर देता था चाँदनी और चाँदनी में अपने उच्छ्वासों से भर देता था भीना-भीना सौरभ। तरुणियों के स्पर्श से कलिकाएँ खिल जाती थीं और कलिकाओं के शृङ्गार से निखर आता था तरुणियों का यौवन। प्रकृति मनुष्य की शक्ति थी और मनुष्य प्रकृति का सहचर स्वामी।

दूर तक फैले हुए सुनहले परिपक्व खेतों के बीच में थी एक हरी-भरी अमराई। नीचे की नरम दूब पर अधलेटी हुई एक कृषक युवती दिवास्वप्नों में उलझ रही थी। बरसात की घटाओं से केशपाश मलयसमीर में लहरा रहे थे। सहसा वसन्त के नए चमकीले आम्र-पत्रों की झिलमिल जालियों को कँपाती हुई गूँज उठी मदमाती कोयलिया की मनभावनी कूक।

युवती के दिवास्वप्न भंग हो गए। किंचित् रुष्ट होकर उसने ऊपर की ओर देखा। कोयल फिर मुसकराकर गा उठी—"कुहू !"

"उँह ! न जाने कब तक मुझे स्वरों का अभ्यास करना पड़ेगा" युवती झल्लाकर बोली—"देख ऐसे........" और उसने स्वर को पंचम पर साध कर एक गीत गाया। गीत के स्वर मधुभरी चाँदनी के समान अमराई को उन्मत्त करने लगे। गीत के समाप्त होते-होते कोयल फिर नटखट स्वरों में कूक उठी, "कुहू।"—युवती ने हारकर

गीत बन्द कर दिया। कोयल और भी उल्लसित होकर कूकने लगी। सहसा पीछे से किसी ने युवती के दृग मींच लिए—

"कौन छाया ?"

'न।'

"चाँदनी ?"

"फिर से सोचो।"

"ओ ! तुम हो।"—युवती के कपोलों पर सन्ध्या छा गई।

अपना हाथ हटा कर युवक बोला—"आज कितना सुन्दर दिन है। जी चाहता है इस सघन रसाल की शीतल छाया में निरुद्देश्य बैठ कर कभी तुम्हें और कभी बादलों को देखते हुए दिन बीत जाय।

"नहीं, यह तो अकर्मण्यता है !"—युवती बोली।

पवन का एक झोंका रसाल को झकझोरता हुआ आया और उसके आँचल को अस्तव्यस्त करता हुआ चला गया। उसने लजा कर आँचल सम्हाला और हँस कर बोली—"आओ, पवन के इन झोंकों के संग उड़ चलें—किसी नवीन प्रान्तर में…।"

दोनों हँसते हुए चल पड़े।

"अब ?"—सहसा युवक ने हँस कर पूछा।

बालिका ने आँख उठा कर देखा सामने के ऊँचे पर्वत को और आकाश में मध्याह्न के सूर्य को।

"अभी दिन शेष है। चलो, देखें क्या है इन ऊँची शैली-मालाओं के पार !" मचलते हुए अर्द्ध-स्वर में युवती बोली।

"न" पुरुष ने दृढ़ता से कहा—"आज तक कोई नहीं गया है उस घाटी में। कोई गम्भीर रहस्य है उसमें। उसे अछूती ही रहने दो।"

"बड़े कायर प्रतीत होते हो।" नारी ने भर्त्सना की। "यदि आज तक कोई नहीं गया है तो हम लोग क्यों जाने से वंचित रहें। आओ, देखें तो उधर क्या है।"

नारी ने पुरुष का हाथ पकड़ कर आगे पग रखा। युवक मंत्र-मुग्ध-सा चल पड़ा उसके पीछे।

कुछ दूर चलने के पश्चात् हरियाली समाप्त हो गई। चारों ओर शैलमालाओं की नग्न कालिमा जैसे दोनों की गति को अवरुद्ध करने लगी। युवक फिर रुक गया। "अब भी लौट चलो।" उसने अपनी संगिनी से कहा।

"इतनी दूर आकर फिर लौटने से क्या लाभ ? क्या थक गए ? लाओ, तुम्हारे स्वेदकण पोंछ दूँ।" अपने आँचल से नारी ने पुरुष का भाल पोंछा। युवक हार कर चल दिया नारी के पीछे।

अब हवा के झकोरे भी बन्द हो गए थे। वातावरण में एक अव्यक्त नीरवता छा गई थी। पेड़, पशु, पक्षी कोई नहीं, केवल कठोर नंगी चट्टानें। "उफ ! इस नरक में एक क्षण भी रहना कठिन है।" पुरुष बोला।

"क्या तुम थक गए ?" नारी ने प्रेम से पूछा।

"नहीं, नहीं ! चलो, अभी मैं इससे दुगना अन्तर पार कर सकता हूँ।" पुरुष ने विवश होकर कहा।

सहसा नारी को ठोकर लगी और वह आह करके बैठ गई। पुरुष ने झुक कर देखा, "ये तो किसी की अस्थियाँ हैं।"

"कुछ चिन्ता नहीं, आओ चलो !" नारी उठकर फिर चलने लगी। पुरुष नारी के इस असीम उत्साह पर विस्मित था। मौन होकर वह भी चला।

"सम्हल कर आओ !" आगे चलती हुई नारी बोली। "यहाँ अस्थियाँ ही अस्थियाँ हैं—पथ पर।"

"यह मृत्यु का देश है रानी ! चलो अब भी लौट चलें।" पुरुष ने सहम कर कहा।

"मृत्यु का देश ? पर तुम तो हो मेरे साथ मेरे जीवन ! फिर मुझे किसका भय ?" नारी ने हँस कर कहा। पुरुष ने अनुभव किया जैसे विद्युत् उसकी शिराओं में दौड़ रही हो। वह चुपचाप फिर चल पड़ा। पार्वत्य-पथ समाप्त हो चुका था—आगे थी एक घाटी।

"इधर देखो।" नारी ने सहसा दक्षिण में एक चट्टान की ओर संकेत किया। चट्टान पर मनुष्य की एक विशाल मूर्ति थी। चौड़ा वक्ष, उन्नत भाल, गठे हुए अंग पर लहराती हुई लट। आँखों में एक विचित्र चमक और केशों में कालिमा के स्थान पर सुनहली कान्ति।

"कितनी सुन्दर मूर्ति है।" पुरुष ने कहा—"काश ! इसमें जीवन भी होता, प्राण भी होते।"

"जीवन !" नारी ने मुस्कराकर कहा—"यह कौन-सी बड़ी बात है। यदि मेरे स्पर्श से वृक्ष कुसुमित हो सकते हैं और यदि मेरे कंठ से शून्य मुखरित हो सकता है तो क्या मूर्ति जीवित नहीं हो सकती ?"

नारी ने आगे बढ़कर उसके केशों को छूआ। सहसा वे कोमल बन कर लहरा उठे।

"देखा !" नारी ने विजयी नेत्रों से निहारा पुरुष की ओर। पुरुष आश्चर्य-विस्फारित नेत्रों से देखने लगा जादू की क्रीड़ा। सहसा मूर्ति ने गहरी साँस ली और उठ बैठी। उसने एक अँगड़ाई ली और जैसे युगयुगों की तन्द्रा से जाग कर खड़ी हो गई। नारी इस परिवर्तन से सहम-सी गई और पुरुष भयभीत हो गया।

मूर्ति ने देखा—नीचे खड़े हुए काँपते नरनारी को। वह चट्टान

से भूमि पर कूद पड़ी, भूमि काँप गई। नारी के मुँह से हलकी चीख निकल पड़ी।

"भयभीत मत हो शुभे ! मैं कुबेर हूँ, धन का देवता, स्वर्ण का देवता, भूख का देवता !"

"देवता ! तुम देवता हो ! फिर हरे-भरे संसार को छोड़ कर इस उजाड़ खंड में पत्थर बन कर क्यों निवास करते हो कुबेर ?" पुरुष ने पूछा।

"तुम नहीं समझ सकते पुरुष।" कुबेर बोला और नारी की ओर मुड़ कर उसने पूछा—"तुमने मुझे स्पर्श किया था नारी ?"

"हाँ देवता !" नारी ने स्वीकार किया।

"अब मैं जीवित हूँ।" कुबेर हँसा। उसकी हँसी शिला-खंडों से भी कठोर थी—"अब मैं मनुष्य से बदला ले सकूँगा। मनुष्य ने प्रेम के सामने मेरी उपेक्षा की थी। उसकी असह्य उपेक्षा ने मुझे जड़ बना दिया था। आज मैं नारी का आश्रय लेकर मनुष्य से प्रतिशोध लूँगा।" उसने मन में सोचा।

"नारी, मैं मनुष्य से घृणा करता हूँ !" उसने प्रकट में कहा।

नारी कुछ न बोली।

"नारी, मैं देवता हूँ ! प्रत्येक देवता मनुष्य से घृणा करता है।"

"घृणा किसे कहते हैं कुबेर ?" पुरुष ने जिज्ञासा की।

उस समय मनुष्य घृणा से अनभिज्ञ था।

"तुम अबोध हो पुरुष, नारी से पूछो।" कुबेर बोला।

"घृणा किसे कहते हैं नारी ?" पुरुष ने अपना प्रश्न दुहराया।

"घृणा ! घृणा का अर्थ है प्रेम ! क्यों ठीक है न देवता ?"—नारी ने पूर्ण आत्मविश्वास से कहा।

"ठीक है, घृणा या प्रेम—मैं मनुष्य से घृणा करता हूँ, इसका अर्थ है, मैं मनुष्य से प्रेम करता हूँ। समझे मनुष्य ?"

कुबेर एक कुटिल हँसी हँस कर बोला।

"तुम हमसे प्रेम करोगे ! धन्य-धन्य कुबेर, तुम सचमुच देवता हो।" नारी ने श्रद्धा से हाथ जोड़ कर कहा।

कुबेर गर्व से फूल उठा—"क्या वरदान चाहती हो नारी ?"

नारी और पुरुष हाथ जोड़ कर बोले—"हमारे खेतों में सदा धान्य रहे। हमारे आकाश में समय-समय पर मेघ लहराएँ। हमारे वृषभ, हमारी गायें सदा हृष्ट-पुष्ट रहें देवता !"

"बस—यह तो कुछ भी नहीं है।"—कुबेर ने कहा—"लो ! मैं तुम्हें नवीन वस्तु देता हूँ।"

नारी ने कर फैला दिया। कुबेर ने उस पर रख दिया धातु-खंड पीला-पीला।

"यह क्या है ?" नारी ने पूछा।

"स्वर्ण।"

"स्वर्ण !" पुरुष चौंक उठा—"नारी ! 'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् !' स्वर्ण के आवरण से सत्य की साँसें घुट जाती हैं। हमारे पूर्वज सदा इससे दूर रहे हैं नारी।"

"बड़े कायर हो।" नारी बोली। "देखो कैसी सुन्दर कांति है मानो सूर्य की प्रभातकालीन किरणों से निर्मित हो।"

"जाने भी दो !" पुरुष बोला। "इससे अधिक सुन्दर आभा हमारे पके खेतों में है। सुनहरी जौ की बालें क्या इससे कम सुन्दर होती हैं ?

"तुम मूर्ख हो पुरुष !" कुबेर ने कहा। "तुम इसका उपयोग क्या जानो। इस एक स्वर्णखंड से तुम सैकड़ों पके खेत क्रय कर सकते हो।"

"क्रय क्या ?" पुरुष ने पूछा।

"क्रय! तुम इस स्वर्णखंड को देकर इसके बदले में धान्य ले सकते हो।" कुबेर ने समझाया।

"नहीं, नहीं, वह पाप है—दूसरे के श्रम के फल में हमारा भाग केवल प्रेम द्वारा ही हो सकता है।" पुरुष ने उत्तर दिया।

"प्रेम द्वारा ही नहीं, अधिकार द्वारा भी।"

"देश के सारे धान्य पर हमारा अधिकार होगा, देश के सब पशु हमारे होंगे, देश के समस्त वैभव के स्वामी हम होंगे। क्या तुम इस स्वामित्व के इच्छुक नहीं ?" नारी ने पुरुष से पूछा। उसने उसके मृदुतम स्थान को पहिचान लिया था।

पुरुष ने क्षण भर अपने विशाल वक्ष और पुष्ट बाहुओं को देखा। वह समर्थ है, सृष्टा है, स्वामी भी बनेगा। उसने स्वीकारात्मक दृष्टि से देखा नारी की ओर। नारी अपनी सफलता पर हँसी। उसकी हँसी देखकर पुरुष की दृष्टि में न जाने क्यों अविश्वास आ गया।

"इतना स्वर्ण तो अपर्याप्त होगा देवता।" पुरुष ने कहा।

"इस शिलाखंड को हटाकर तुम यथेष्ट स्वर्णखंड ले सकते हो।"—कुबेर अपनी सफलता पर हँसा।

पुरुष ने अपना उष्णीष खोल कर उसमें स्वर्ण भरा और चल पड़ा। नारी ठिठकी, उसने कुबेर से बिदा लेनी चाही। पुरुष ने सन्देह की दृष्टि से देखा नारी की ओर और उसे आगे की ओर खींच कर कहा—"तुम पर मेरा अधिकार है समझीं ?" पुरुष अधिकार का प्रयोग सीख गया था—और उसने अपना पहला प्रयोग किया नारी पर।

नारी कुछ न समझी, चुपचाप साथ चल पड़ी। थोड़े ही अन्तर के बाद वह थक गई। उससे स्वर्णभार नहीं सम्हलता था।

"अब मैं नहीं चल सकती," उसने कहा।

"क्या? तुम्हें मेरे साथ चलना होगा—अभी चलना होगा," पुरुष ने कहा।

नारी ने विचित्र भय से देखा पुरुष की ओर। पुरुष की आँखों से स्नेह लुप्त था—थी केवल कटुता। वह सहम गई, कुछ न बोली। थोड़ी दूर चल कर, हार कर, थक कर बैठ गई—"अब मुझमें शक्ति नहीं रही।" नारी हाँफ रही थी।

पुरुष ने मुड़ कर कहा—"रुक जाओ यहीं—अपने देवता से शक्ति की भिक्षा माँग लेना और तब आ जाना। मैं तुम्हें खूब समझता हूँ—प्रवंचना की प्रतिमा।"

नारी इस कठोर व्यंग से तिलमिला उठी। उसका डर घृणा में परिणत हो गया—"निष्ठुर?" उसने पैर पटक कर कहा—"जाओ, मैं अब मर जाऊँगी। तुमसे आश्रय की याचना न करूँगी—पत्थर।" पुरुष रुका नहीं, बढ़ता ही चला गया। नारी ने क्षण भर उसकी ओर देखा और फिर तड़प उठी। सोना फेंक दिया और पत्थर पर सिर पटकने लगी लेकिन कहा एक शब्द भी नहीं।

सहसा उसने सुना—"कुहू।"

सिर उठाकर देखा—पास की एक शिला के छिद्र में एक कोयल का नीड़ था। कोयल उड़ कर आ रही थी। उसकी चोंच में सुनहली बाल थी। नीड़ से झाँक कर बच्चे उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। कोयल ने उन बच्चों की ओर देखकर प्रेमभरी कूक भरी—"कुहू।"

नारी सभी प्रतारणा भूल मातृत्व की उस कूक में खो गई—सो गई।

पुरुष ने पर्वत-पथ पार कर लिया और विश्राम की एक साँस

ली। पर यह क्या ? यह तो उसके ग्राम का पथ नहीं—क्या वह पथ भूल गया है ? रात हो गई थी। कोई हानि नहीं, वह प्रातःकाल अपना पथ ढूँढ़ लेगा। आज नहीं तो कल वह सारे देश का स्वामी होगा। वह विश्राम करेगा। उसने शीश से स्वर्ण उतार कर भूमि पर धर दिया और भूमि पर धरते ही उसने देखे—दूर वृक्षों की ओट में झिलमिलाते हुए ग्राम-दीप।

"आह, ग्राम तो पास ही है," उसने सोचा—और बढ़ने के लिए स्वर्ण उठाया। पर स्वर्ण उठाते ही ग्राम अदृश्य हो गया। आकाश में तारे हँस पड़े। मनुष्य चलता ही गया। इस भयानक मृगतृष्णा के इस दयनीय शिकार की इस अवस्था को तारे न सह पाए। उन्होंने पलकें मूँद लीं। सबेरा हो गया।

मनुष्य ने थक कर स्वर्ण रख दिया और देखा······वह सामने पेड़ों के झुरमुटों में ग्राम।

"आहा।" वह प्रसन्नता से हँस पड़ा। पैर भर गए थे, शरीर थक गया था, मुँह सूख गया था, आँखें जल रही थीं, पर उसने स्वर्ण उठाया और चल पड़ा। ग्राम फिर अदृश्य हो गया।

वह चलता ही गया।

मध्याह्न का सूर्य तप रहा था, पेड़ों की पत्तियाँ सूख कर गिर रही थीं, जल के स्रोत सूख रहे थे। रह जाता था केवल ताप, भीषण ताप, श्मशान की लपटों-सा भयंकर !

वह प्यास से विकल था, क्षुधा से आर्त।

"भूख !"—क्षीण स्वर में उसने कहा।

"प्यास !"—मन्द स्वर में उसने कहा।

किन्तु तरु पत्र-विहीन हो गये थे और सरिताएं निर्जल। उसकी आंखों के सम्मुख अंधेरा छा गया। वह मूर्छित होकर गिर पड़ा। अर्ध-मूर्छा में अस्फुट स्वर में बोला—"भूख !"

एक स्वर्णखंड उसने दाँतों से तोड़ा पर असह्य पीड़ा से कराह उठा।

"भूख! भूख!" वह कराहा—चीख उठा—"प्रेम मिथ्या है, नारी प्रवंचना है, सत्य है भूख—केवल भूख।"

"भूख सत्य है, किन्तु अधिकार की या प्रेम की?" असह्य ताप से झुलसते हुए एक दूर्वादल ने पूछा।

मनुष्य निरुत्तर था।

हाँ—इसके उत्तर में पास के ठूँठ के कोटर से एक गिद्ध चीखता हुआ उड़ा और चारों ओर मँडराने लगा। उसकी चोंच में मांस का एक टुकड़ा था। टुकड़े से खून की दो बूँदें मनुष्य के अधरों पर चू पड़ीं। मनुष्य ने सूखी जीभ से उसे चाटा—पर उसकी प्यास न बुझी। उसने भूखी आँखों से देखा मांसखंड की ओर—गिद्ध ने प्यासी आँखों से देखा मनुष्य की ओर।

आकाश में से झाँक कर कुबेर ने देखा और अट्टहास कर उठा।

मंज़िल

सृष्टि बना कर ईश्वर ने संतोष की साँस ली और निरीक्षण की दृष्टि से संसार को देखा।

विस्तृत धरा थी, धरा पर मखमली घास थी, घास के घूँघट को हटा कर फूल शरमा कर झाँक रहें थे और फूलों की गोद में तितलियाँ अपने रंगीन परों को समेट कर सो रही थीं।

किन्तु इस कोमल प्रणय को देखने वाला कोई भी न था।

ईश्वर ने एक अभाव का अनुभव किया।

उन्मुक्त नीला आसमान था, जिसमें रात को रुपहली चाँदनी हंसती थी, दिन को सुनहली धूप लहराती थी, सुबह को शबनम झरती थी, रात को तारे जगमगाते थे।

किन्तु तारों को गिन-गिन कर रात बिताने वाला कोई न था।

ईश्वर ने एक अभाव का अनुभव किया।

आसमान की सतह पर स्वर्ग था। स्वर्ग में अप्सराएँ थीं। अप्सराओं के साथ देवता थे। केसर के तीर चलाने वाला अनंग था। मादकता बिखेर देने वाली रति थी। वैभव था, रूप था, रंग था, मादकता थी, विस्मृति थी।

किन्तु इन वैभवों से आकर्षित होकर स्वर्ग पाने की साधना करने वाला कोई भी न था।

ईश्वर ने अभाव का अनुभव किया।

ईश्वर के वैभव के सामने नतमस्तक होने वाला कोई भी न था......। ईश्वर असन्तुष्ट हो गया।

अभाव ! अभाव !! अभाव !!

और तब ईश्वर ने अभाव को दूर करने के लिए एक भाव की सृष्टि की ! वह भाव आकाश सा विस्तृत था, फूल सा ताज़ा था, दूब सा कोमल था, अप्सराओं सा लजीला था, स्वर्ग सा आकर्षक था। संसार में जहाँ जो भी कुछ सुन्दर था, आकर्षक था, सब को मिला कर उस भाव की रचना हुई। उस भाव का नाम ईश्वर ने रखा—मनुष्यत्व। मनुष्यत्व में अनंग की चंचलता थी, रति की मादकता थी, धूप की गर्मी थी, दूब की नमी थी, शबनम की चमक थी, तितली का निखार था।

ईश्वर ने मनुष्यत्व का निर्माण किया और धरा पर उसे उतार दिया।

लेकिन उसकी इच्छा पूरी नहीं हुई।

ईश्वर ने सोचा, मनुष्यत्व उसके सामने सिर झुकाएगा—लेकिन वह अभी केवल भाव था। असीम भाव, अनन्त कल्पना। और उसकी वह सीमाहीन कल्पना केवल धरा से सन्तुष्ट न हुई। ईश्वर के सामने नतमस्तक न हुई। उसने आकाश के तारे तोड़ने शुरू किये, अनंग के तीर चुरा लिए, रति की मादकता लूट ली और नए स्वर्ग का निर्माण शुरू कर दिया।

ईश्वर सहम गया। उसने क्षण भर सोचा—अच्छा मनुष्यत्व को सीमित कर दो। धरा की कारा में मनुष्यत्व को बन्दी बना दो। उसने दो मुट्ठी धूल उठाई और असीम भाव को सीमित देह में आबद्ध कर दिया। मनुष्यत्व अब मनुष्य बन गया।

लेकिन मनुष्य ने भी हार न मानी। उसके तन के सौरभ से आकर्षित होकर तितलियाँ चारों ओर उड़ने लगी, फूल उसके पैरों के नीचे बिछ गये, शबनम उसके पैरों को चूमने लगी। मनुष्य इन सब के स्नेह से तृप्त होकर हँस पड़ा और उसकी हँसी आसमान में किरणें बन कर छिटक गईं, किन्तु मनुष्य झुका नहीं।

ईश्वर असफल रहा।

उसने सोचा, मनुष्य अभी शबनम, तितली सभी को प्यार करता है। अभी उसका प्यार असीम है, इसलिए उसकी सत्ता भी असीम है, उसकी शक्ति भी असीम है—क्योंकि प्यार का ही दूसरा नाम अस्तित्व है और अस्तित्व रखने की सामर्थ्य का नाम शक्ति है। अतः उसने सोचा—उसके प्यार को भी सीमित कर दो।

और तब ईश्वर ने निर्माण किया नारी का।

सौरभ सी कोमलता, पुष्प की पार्थिवता के संयोग से नारी का निर्माण हुआ। और एक दिन पुरुष ने देखी—फूलों से लदी हुई वसन्ती झाड़ियों के बीच में लाज से सकुची हुई नारी। पुरुष को एक नया साथी मिला। वह हँसती थी तो फूल झरते थे। पुरुष फूलों को भूल गया। उसकी आँखों में चाँदनी छिटकती थी। वह चाँद को भूल गया। नारी की गति में ईश्वरत्व की शान थी। और पुरुष ईश्वर को भूल गया।

और ईश्वर फिर हार गया।

घने पेड़ों की शीतल छाँह में, हरी मखमली दूब पर पुरुष और नारी कलियों को उछाल-उछाल कर खेलते थे। एक दिन पुरुष के मन में नया विचार उठा। वह उठ खड़ा हुआ। उसने नारी से कहा —"संगिनी! आओ, हम तुम कुछ निर्माण करें।" और नारी बाँहें फैला कर उसकी ओर बढ़ी—

ईश्वर काँप उठा ! यह क्या ! पुरुष ईश्वर से सृजन का अधिकार भी छीन लेगा ? उसने फौरन नारी और पुरुष के बीच में व्यवधान उत्पन्न कर दिया। वह व्यवधान था एक जलता हुआ प्रकाश-चिह्न ! पुरुष ने पूछा—"मेरी मंजिल क्या है ? केवल नारी ! नारी ! केवल नारी ! कदापि नहीं !" वह उत्तेजित होकर उठ गया।

"मेरी मंजिल क्या है ?" उसने चीख कर शून्य से पूछा और नारी को छोड़ कर चल दिया अपनी मंजिल की खोज में। उसने बिजली से चपलता ली, आँधियों से गति ली, जल से अथक साधना का वरदान लिया और चल पड़ा, चलता गया।

ईश्वर ने उसे बढ़ते देखा और पृथ्वी गोल कर दी, ताकि वह जन्म भर चक्कर ही लगाता रहे और आगे न बढ़ने पावे।

पुरुष इस षड़यन्त्र से अनभिज्ञ था। वह पृथ्वी का चक्कर लगाता गया। यहाँ तक कि उसी स्थान पर पहुँच गया, जहाँ नारी थी।

वह खड़ा हो गया। इसका क्या अर्थ ? पृथ्वी का चक्कर लगाकर फिर वहीं पहुँचा जहाँ नारी थी। तो क्या नारी ही उसकी मंज़िल है ?

नारी ने अलसौंही लजीली पलकें उठा कर पुरुष की ओर देखा और मुट्ठी भर कर फूल उधर फेंक दिए। पुरुष विह्वल हो उठा और उसने दो काँपते हुए ओठों पर दो जलते हुए ओठ रख दिये।

और ! और ! जैसे किसी जादू से दोनों खंड-खंड हो गए। असंख्य मनुष्य; पुरुष और स्त्रियाँ।

ईश्वर हँस पड़ा—अब मनुष्य विभक्त है। वह मेरे सामने झुक जायगा।

लेकिन ईश्वर का अभाव ही तो। उस विभक्त आदम पुरुष की मूलभूत एकता ने उस विभाजन की बेहोशी में भी आवाज दी—

"मेरी मंज़िल कहाँ है ?" और असंख्य कण्ठों से यह प्रतिध्वनि उठी, "हमारी मंज़िल कहाँ है ?"

ध्वनि-प्रतिध्वनि जब स्वर्ग पहुँची तो स्वर्ग की नींवें हिल गईं। ईश्वर का सिंहासन डोल उठा।

और उसके बाद असंख्य चरण आगे बढ़े। "हम आगे बढ़ेंगे, अपनी मंज़िल ढूँढ़ेंगे," उन्होंने एक स्वर से कहा।

धरती काँप उठी। पर्वत चूर-चूर हो गए। उन्होंने गरजते हुए तूफ़ानों पर अपनी आवाज तैराई—"हम नहीं रुकेंगे। हम आगे बढ़ेंगे। हमारी मंज़िल कहाँ है ?"

उन्होंने क्रोध से पैर पटके। स्वर्ग चूर-चूर हो गया। उनकी गति के कारण उड़ती हुई गर्द में ईश्वर छिप गया। वे बढ़ते ही गए। ईश्वर डर कर धरती पर गिर पड़ा। टूट कर धरती पर बिखर गया। नारियाँ रुक गईं कुतूहल से। आकाश से गिरे हुए उन टुकड़ों पर उन्होंने पुरुष के चरण की धूल देखी और रुक कर उसकी पूजा में लग गईं। पथरीले ईश्वर के वे टुकड़े पुरुष के चरणों की धूलि से सने थे, इसी से नारी के उपास्य बन गए।

पुरुषों ने नारियों को रुकते हुए देखा। क्या वे भी रुकें ? एक ने पूछा—"क्यों रुकें ? क्या नारी हमारी मंज़िल है ?"

"नारी हमारी मंज़िल है ? असम्भव ! नारी बहुत दुर्बल है !" दूसरे ने कहा।

"नारी तो स्वयं पुजारिन है। उसमें पूजा ग्रहण करने की शक्ति कहाँ ?"

"नारी पथ हो सकती है, मंज़िल नहीं ! साधन हो सकती है, साध्य नहीं !"

और वे फिर बढ़ चले। हजार, लाख, करोड़, असंख्य बार वे पृथ्वी के चारों ओर घूमे, रुके नहीं। नारी पूजा में संलग्न रही। पुरुष बढ़ते रहे।

अन्त में पुरुष के पैर न थके—संसार की पगडंडियाँ थक गईं। वे बोलीं—"बस करो! मुसाफिरों हम हार गईं। सच तो यह है पुरुष कि तुम खुद अपनी मंज़िल हो, विश्व की पगडंडियाँ कोने-कोने से चल कर तुम्हारी ही परिक्रमा करती हैं। पुरुष! मंजिल तो तुम खुद हो। हम तो तुम तक पहुँचने का यत्न करती हैं।"

पर फिर भी पुरुष नहीं रुके। थकी म्लान पगडंडियाँ उन्होंने हाथों में उठा लीं और आसमान को पैरों के नीचे बिछा कर चल दिए।

और तब से आज तक—

नारी पूजा करती है। पुरुष चलता है—इसलिए नहीं कि उसे किसी मंजिल तक पहुँचना है। मंजिल तो वह खुद है। वह बढ़ता है इसलिए कि चलने से पैरों की ताकत बढ़ती है और मंजिल खुद दिन पर दिन मजबूत होती जाती है।

आसमान पर उसके पैरों के निशान रात को तारे बनकर चमक उठते हैं।

कलंकित उपासना

मनुष्य ईश्वर से पूर्णता का वरदान माँगने गया।

ईश्वर अपने कुटिल ओठ दबा कर मुसकराया और बोला—"मेरी उपासना करो, मैं तुम्हें पूर्णता का वरदान दूँगा।"

मनुष्य ने असीम श्रद्धा से पुलकित होकर भगवान के चरणों पर अपना रजत-मस्तक रख दिया और देर तक उपासना करता रहा। थोड़ी देर बाद मनुष्य ने सर उठाया और भगवान की ओर प्रार्थना भरी निगाहों से देखा।

भगवान ने अपनी नील कमल सी पलकें उठाईं और मौत के रेशों से बुनी हुई मुसकराहट बिखेर कर मनुष्य के मस्तक पर लगी हुई अपनी चरण रज की ओर संकेत कर कहा—"देखो तुम्हारे मस्तक पर कलंक है। अभी तुम पूर्ण नहीं हो सकते, और उपासना करो।"

मनुष्य ने फिर चरणों पर सर रखा। चरणरज का चिह्न और भी गहरा हो गया। उसने फिर सर उठाया;

भगवान ने फिर कहा—"तुम्हारा कलंक तो और गहरा हो गया।"

उसने फिर पैरों पर सर रख दिया।

तब से आज तक उपासना की अनन्यता और कलंक के गहरे होते जाने का क्रम बदस्तूर जारी है।

परिशिष्ट

पिछली भूमिकाएँ

कहानियों से पहले ![1]

एक कहानी है !
कहानी है ऐतरेय उपनिषद की।

'ईश्वर ने देवताओं की रचना की और सोचने लगा—"अस्तित्व? अस्तित्व के लिये आवश्यकता है प्रगति की; प्रगति के लिए आवश्यकता है पार्थिवता की; पार्थिवता के लिए आवश्यकता है रूप की, भौतिक शरीर की !"

और उसने एक गौ का शरीर निर्मित किया। किन्तु देवता उसमें प्रवेश के लिए प्रस्तुत न हुए।

फिर, उसने एक अश्व का शरीर निर्मित किया किन्तु देवताओं ने उसे भी अस्वीकार कर दिया।

अन्त में, उसने एक मनुष्य का शरीर निर्मित किया। वह शरीर इतना तेजवान था, इतना रूपवान था, इतना शक्तिवान था, इतना प्राणवान था कि देवता बरबस उसकी ओर खिंच कर उसमें स्थित हो गये।

उस शरीर के तेज, रूप, शक्ति और प्राण के पोषण के लिए आवश्यकता थी एक तत्त्व की। और तब; ईश्वर ने रचना की अन्न की।

आकाश के ऊदे-ऊदे बादलों को चीर कर बरसात की रिमझिम फुहारों में लपेट कर उसने मोतियों से दूधिया अन्न के दाने हरी-भरी वसुन्धरा पर बिखेर दिये।

मनुष्य उनकी ओर बढ़ा : किन्तु वे अन्न के गर्वीले दाने मनुष्य से भाग कर पृथ्वी में छिप गये। और मनुष्य के सामने जीवन की पहली समस्या आ खड़ी हुई ! वह अन्न कैसे ग्रहण करे ?

वाणी से ? किन्तु केवल अन्न शब्द का उच्चारण कर कौन संतुष्ट हो सकता है ?

[1] द्वितीय खण्ड की भूमिका, 'मुर्दों का गाँव' (१९४६) में प्रकाशित।

नेत्र से ? किन्तु केवल अन्न देख कर कौन संतुष्ट हो सकता है ?

मन से ? किन्तु केवल अन्न का मन में ध्यान कर कौन सन्तुष्ट हो सकता है ?

अन्त में उसने वाणी, दृष्टि, बल, संकल्प, विचार, कर्म, सबको एक विन्दु पर केन्द्रित कर अखण्ड साधना की।

और अन्न के हरे अंकुर पत्थरों को फोड़ कर मनुष्य को अमर अस्तित्व का वरदान देने ऊपर उभर आये। इस तरह पृथ्वी की छाती को फोड़ कर निकले हुए अन्न को मनुष्य अपनी छाती फाड़कर ही ग्रहण कर सका।

तब ? फिर ?

वह जाति जिसमें अपने प्राणों को हथेली पर रख कर पृथ्वी के स्तरों को ठोकरों से चूर-चूर कर पाताल से अन्न ऊपर खींच लाने की शक्ति है केवल उसी जाति को अस्तित्व का, जीवन का, आज़ादी का, संस्कृति का, साहित्य-सृजन का अधिकार है।

और जो जाति इतनी निर्वीर्य है कि उसके बलिष्ठ हाथ अपने श्रम की उपज की स्वयं रक्षा न कर सकें—जिसकी आँखों के सामने भुखमरे पटरियों पर दम तोड़ देते हों और फिर भी उनकी भुजाएँ नहीं फड़क उठतीं, उनके प्राणों में घोर मन्थन नहीं मच जाता, उनके संकल्प में विद्रोह नहीं भभक उठता—ऐसी जाति—जाति नहीं मुर्दों की टोली है—सड़ती हुई; घृणित !

अन्न जीवन की प्रथम आवश्यकता है; अन्न संस्कृति की प्रथम आवश्यकता है; अन्न काव्य की प्रथम आवश्यकता है। जौ की सुनहली बालों की छाया में चिन्तना, कल्पना, गीत, प्रेम और रोमांस के सपने भूलते हैं।

प्राणो वा अन्नम्—शरीरम् अन्नादम् !
आपो वा अन्नम्—ज्योतिरन्नादम् !!
पृथ्वी वा अन्नम्—आकाशोऽन्नादः !!! (तैत्तिरीय)

अन्न वह शृङ्खला है जिससे आकाश पृथ्वी से बँधा हुआ है। बाइबिल में कहा गया है कि मनुष्य ने पृथ्वी से आकाश पर पहुंचने के लिए एक सीढ़ी बनाई।

हर देश में, हर काल में, हर युग में, हर मौसम में; जौ की, गेहूं की, धान की डंठलें गूँथ कर कृषक वह कोमल सीढ़ी बनाते हैं जिन पर मृदुल पद धर कर हंसगामिनी कवि-कल्पना आकाश के तारे तोड़ कर पृथ्वी पर ले आती है। किन्तु जब कल्पना पृथ्वी का आश्रय छोड़ देती है; अन्न की सीढ़ियों से सम्बन्ध तोड़ देती है तब वह आकाश की नीली झाड़ी में चाँदी के काँटों में बिंध कर ऊपर ही उलझी रह जाती है—भूखी, प्यासी, दुर्बल, निकम्मी, व्यर्थ !

और हमारे हिन्दी के कलाकारों की आज यही दशा है। कलकत्ते की सड़कों पर भूखी लाशें सड़ती रहीं और हम भिनभिनाती हुई मक्खियों की तरह कवि-सम्मेलन में उनकी छाती पर प्रेम के गीत पढ़ते रहे।

क्यों ? क्योंकि हम भूल गये थे कि ग़ुलाम भुखमरों की कोई भी संस्कृति नहीं होती। हम भूल गये थे कि अन्न की साधना, जीवन की साधना, सभ्यता की साधना, कला की साधना है। हममें वह ताक़त मर चुकी थी जिससे उस मांस के लोथड़े—दिल—में भूख से आग सुलगने लग जाती है—हमारी ज़िन्दगी मर चुकी थी।

और इसीलिए—अद्यतेऽत्ति च भूतानि—जो अन्न को नहीं भोग सकता—अन्न उसे खा जाता है। यदि हम भूख में अंगारे चबा जाने की शक्ति नहीं रखते तो हम इसी लायक़ हैं कि हमारी लाशें नाबदानों में सड़ें, और उन पर घिनौनी मक्खियाँ भिनभिनाएं।

शुभास्ते पन्थानः[1]

कहानी के रूप में भारती ने जीवन में पहली बार अपना सजग चरण अस्तित्व की अटपटी भूमि पर रक्खा। मेरी साध है कि दूसरा चरण और चरण प्रति-चरण उसका उसी लक्ष्य की ज्वाला और मेघमाला के सँवारने में जा सके तो जावे। कहानी में आकलन कुछ अधिक सतर्कता, श्रमशीलता और समर्पण की जागरूकता माँग रहा है, किन्तु समय कह रहा है कि राहगीर रेखाओं में काफी आगे आ गया है।

चारों खूँट का भूगोल और चारों खूँट की कल्पना दोनों उसके लिए सुलभ हैं। अतः सोने के सपने और जागने के सपने में भारती को चाहे जिस दिशा, चाहे जिस समय और चाहे जिस वस्तु का नाम पुकारने दिया जाय। एक चीज सदैव मानो। वह अपने अन्तर की आग की अवतारणाओं का पूजक है। उसका दुख और सुख उसके बाहर नहीं है। साथ ही अपने अनन्त उल्लासों और अपनी भारी से भारी उसाँसों में भी वह अपने अभिमत के सम्मुख नन्हें बच्चे जैसा निर्मल, उद्दण्ड किन्तु जागरूक है।

भारती की अँगुलियों ने एक जीवन के अनेक टुकड़े कर जहाँ-जहाँ जिस-जिस रूप में सँवारने का उपक्रम साधा है, सब बड़े प्यार से पढ़ा जाता है। खूब दूर तक भारती की दृष्टि जीवन के परमत्व को छू गई है।

समय की लाँबी दूरी है और तारुण्य के अरमानों की चहल-पहल। भारती को सिद्ध करना है कि मेरी पंक्तियाँ मेरा पक्षपात नहीं हैं। घास के कलम से नहीं, साँस की कलम से।

माखनलाल चतुर्वेदी

---

[1] तृतीय खण्ड की पूर्व प्रकाशित भूमिका।

भारती की
अन्य कृतियाँ

●

उपन्यास	गुनाहों का देवता
	सूरज का सातवाँ घोड़ा
नाटक	नदी प्यासी थी
दृश्य-काव्य	अंधा युग (यन्त्रस्थ)
काव्य-संग्रह	तीन गीतवर्ष (यन्त्रस्थ)
	ठण्डा लोहा
समीक्षा	सिद्ध साहित्य (यन्त्रस्थ)
	प्रगतिवाद : एक समीक्षा
अनुवाद	पाश्चात्य नयी कविता (यन्त्रस्थ)
	आस्करवाइल्ड की कहानियाँ

किताब महल
से प्राप्य